मैनफल, सेंधानमक, गूगल, गेरू, घी, शहद, राल, गुड इन सब को पीस कर एकत्र कर के चरणों पर लेप करें तो फटे हुए दोनों चरण भी खिले हुए कमल पत्र के समान सुन्दर होजाते हैं ॥ ३ ॥

अथ कदरस्य चिकित्सा—**दहेत्कदरमुद्धृत्य तैलेन दहनेन वा ॥ १ ॥**

कदर को छीलकर गरम तेल से वा अग्नि से जला देवे ॥ १ ॥

अथालसस्य चिकित्सा—**पादौ सिक्त्वाऽऽरनालेन लेपनं त्वलसे हितम्। पटोलकुनटीनिम्बरोचनामरिचैस्तिलैः ॥ १ ॥**

कांजी से पैरों को सींचकर पटोलपत्र, मनसिल, नीम, वंशरोचन, गोल मिरच तथा तिल इन सबको पीसकर लेप करे तो लाभ होता है ॥ १ ॥

क्षुद्रास्वरससिद्धेन कटुतैलेन लेपयेत्।
ततः कासीसकुनटीतिलचूर्णैर्विचूर्णयेत् ॥ १ ॥

अथवा छोटी कटेली के स्वरस से सरसों का तेल पका लेवे उस तेल को लेप करे, फिर कासीस, मनसिल तथा तिल इन सबके चूर्ण को उस पर छिड़क देवे २

करञ्जबीजरजनीकासीसं पद्मकं मधु।
रोचना हरितालं च लेपोऽयमलसे हितः ॥ ३ ॥

करंज के बीज, हल्दी, कसीस, पद्माख तथा शहद, वंशरोचन, हड़ताल इन सबको पीसकर अलस पर लेप करे ॥ ३ ॥

अथेन्द्रलुप्तस्य चिकित्सा—**इन्द्रलुप्तापहो लेपो मधुना बृहतीरसः। गुञ्जामूलं फलं वाऽपि भल्लातकरसोऽपि वा ॥१॥**

बड़ी कटेली के रस में शहद मिलाकर लेप करें तो इन्द्रलुप्त रोग नाश होता है। रत्तियों की जड़ वा रत्तियों का फल अर्थात् रत्तियां पीसकर लेप करे अथवा भिलांवें के स्वरस का लेप करे ॥ १ ॥

लेपः सनवनीतो वा श्वेताश्वखुरजा मषी।
हस्तिदन्तमषीं कृत्वा छागदुग्धं रसाञ्जनम्।
रोमाण्येतेन जायन्ते लेपात्पाणितलेष्वपि ॥ २ ॥

अथवा मक्खन के साथ श्वेत घोड़े के खुर की अन्तर्धूम भस्म करके बनाई हुई मसी या स्याही के साथ मिलाकर लेप करे। अथवा हाथी दांत को अन्तर्धूम भस्म करके उसकी मसी या स्याही को रसौंत तथा बकरी के दूध में पीसकर लेप करें तो बाल हथेलियों में भी निकल आते हैं ॥ २ ॥

तिक्तपटोलीपत्रस्वरसैर्घृष्टा शमं याति।
चिरकालजाऽपि निरुजा नियतं दिवसत्रयेणैव ॥ ३ ॥

कड़वे परवल के पत्तों के स्वरस से इन्द्रलुप्त को घिसें तो तीन दिन में ही पुराना पीड़ा रहित इन्द्रलुप्त रोग नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

गोक्षुरस्तिलपुष्पाणि तुल्ये च मधुसर्पिषी।
शिरः प्रलेपितं तेन केशैः समुपचीयते ॥ ४ ॥
जातीकरञ्जवरुणकरवीराग्निपाचितम्।
तैलमभ्यञ्जनाद्धन्यादिन्द्रलुप्तं न संशयः ॥ ५ ॥

गोखरु, तिल के फूल, तथा घी और शहद प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर सिर पर लेप करें तो केशों से सिर भर जाता है अर्थात् इन्द्रलुप्त स्थान में केश उग जाते हैं ॥ चमेली के पत्ते, करञ्ज के पत्ते, वरुण की छाल, कनेर तथा चीता इन सबके कल्क से तिल का तेल पकाकर लगावें तो इन्द्रलुप्त रोग निस्सन्देह अच्छा हो जाता है और बाल उग जाते हैं ॥ ५ ॥

अथ स्नुह्यादि तैलम्-स्नुहीपयः पयोऽर्कस्य मार्कवो लाङ्गली विषम्।
अजामूत्रं सगोमूत्रं रक्तिका सेन्द्रवारुणी ॥ ६ ॥

अथ स्नुहीदुग्धादितैलम्—थोहर का दूध, आक का दूध, भांगरा, लांगली, वत्सनाभविष, रत्तियां, बकरी का मूत्र, गौ का मूत्र, इन्द्रायण ॥ ६ ॥

सिद्धार्थकस्तीक्ष्णगन्धा सम्यगेभिर्विपाचितम्।
तैलं भवति नियमात्खालित्यव्याधिनाशनम् ॥ ७ ॥

श्वेत सरसों, बच इन सबको समभाग लेकर कल्क करके तेल पकावें और इसकी नियम से प्रतिदिन मालिश करे तो खालित्य रोग अर्थात् गंजापन दूर होता है ॥७॥ इति स्नुहिदुग्धादितैलम्।

अथ दारुणस्य चिकित्सा-कार्यो दारुणके मूर्ध्नि प्रलेपो मधुसंयुतः।
प्रियालबीजमधुककुष्ठमाषैः ससैन्धवैः ॥ १ ॥

दारुणकरोग में पियाल के बीज, मुलठी, कूठ, उड़द, सेधानमक कांजी तथा शहद मिलाकर सिर पर लेप करें ॥ १ ॥

काञ्जिकैस्तु त्रिसप्ताहं लेपो दारुणकापहः।
आम्रबीजस्य चूर्णं तु शिवाचूर्णं समं द्वयम्।
दुग्धपिष्टप्रलेपोऽयं दारुणं हन्ति दारुणम् ॥ २ ॥

तो तीन सप्ताह में दारुणकरोग नष्ट हो जाता है। आम के बीजों का चूर्ण तथा हरड़ का चूर्ण समभाग लेकर दूध में पीसकर प्रलेप करें तो दारुणक रोग का नाश होता है ॥ २ ॥

अथ भृङ्गराजतैलम्-भृङ्गराजरसेनैव लोहकिट्टं फलत्रिकम्।
सारिवां च पचेत्कल्कैस्तैलं दारुणनाशनम्।
अकालपलितं कण्डूमिन्द्रलुप्तं च नाशयेत् ॥ १ ॥

भांगरे का स्वरस ४ सेर, तिल का तेल एक सेर, लोहे की मैल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, शारिवा इन सबको समभाग लेकर कल्क करके एक पाव लेवे। सबको एकत्र करके तेल पाक कर ले। उस तेल की मालिश से दारुणरोग, अकाल

में हुआ २ पलितरोग, खुजली तथा इन्द्रलुप्त रोग का नाश होता है ॥ २ ॥

अथ गुञ्जातैलम्—गुञ्जाफलैः शृतं तैलं भृङ्गराजरसेन च।
कण्डूदारुणहृत्कुष्ठकपालव्याधिनाशनम् ॥ १ ॥

रत्तियां एक पाव लेकर कल्क करे, तिल का तेल एक सेर लेवे, भांगरे का स्वरस ४ सेर ले। सबको मिलाकर तेल पाक करे। इसके लगाने से कण्डू, दारुण रोग, कुष्ठ तथा कपाल की व्याधियें नष्ट होती हैं ॥ १ ॥

दुग्धेन खाखसं बीजं प्रलेपाद्दारुणं हरेत्।
कण्टकारीफलरसैस्तुल्यं तैलं विपाचयेत्।
जपापुष्पद्रवैर्वाऽथ तल्लेपो दारुणप्रणुत् ॥ २ ॥

खसखस के बीज को दूध में पीसकर लेप करे तो दारुणरोग का नाश होता है। कटेली के फलों के स्वरस से तिल का तेल पकावे, अथवा जपा के फूलों के स्वरस से तिल का तेल पकावे तो दारुणरोग का नाश होता है ॥ २ ॥

अथारुंषिकायाश्चिकित्सा—नीलोत्पलस्य किञ्जल्को धात्रीफलसमन्वितः।
यष्टीमधुकयुक्तश्च लेपाद्धन्यादरुंषिकाम् ॥१॥

नीले कमल का केसर, आंवले, मुलठी इन सबको पीसकर लेप करें तो अरुंषिका नाश होता है ॥ १ ॥

अथ त्रिफलाद्यं तैलम्—त्रिफलाया रजो यष्टी मार्कवोत्पलसारिवाः।
सैन्धवं पक्वमेतैस्तु तैलं हन्यादरुंषिकाम् ॥१॥

हरड़, बहेड़ा, आंवला, मुलठी, भांगरा, नीलाकमल, शारिवा, सेंधानमक इन सबका कल्क करके इस कल्क से चौगुना तिल का तेल और तेल से चौगुना जल डालकर तेल पका लें। इस तेल के मलने से अरुंषिका रोग का नाश होता है१

अरुंषिकायां रुधिरेऽवसिक्ते शिराव्यधेनाथ जलौकया वा।
निम्बाम्बुसिक्ते शिरसि प्रलेपो देयश्च वर्चोरससैन्धवाभ्याम् २॥

अरुंषिकारोग में शिरा बींधकर वा जौंक से खून निकलवा देवे। फिर नीम के पत्तों के क्वाथ से सिर को धोवें फिर गोबर के रस तथा सेंधानमक से मिला कर लेप करें तो अरुंषिका का नाश होता है ॥ २ ॥

पुराणमथ पिण्याकं पुरीषं कुक्कुटस्य च।
मूत्रपिष्टः प्रलेपोऽयं शीघ्रं हन्यादरुंषिकाम् ॥ ३ ॥

पुरानी तिल की खली, कुक्कुड़ की बीठ इन दोनों को पीसकर सिर पर लेप करें तो शीघ्र ही अरुंषिका का नाश होता है ॥ ३ ॥

अथ हरिद्राद्यं तैलम्—हरिद्राद्वयभूनिम्बत्रिफलारिष्टचन्दनैः।
एतत्तैलमरुंषीणां सिद्धमभ्यञ्जने हितम् ॥ १ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, चिरायता, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नीम की छाल, लाल

चन्दन इन सब को समभाग लेकर कल्क करे । इस कल्क से चौगुना तिल का तेल, इस तेल से चौगुना जल डालकर तैल पकावे । तो इस तेल को सिर में लगाने से अरुंषिकारोग का नाश होता है । कहीं २ पर इसी का नाम द्विहरिद्रादि तैल भी है ॥ १ ॥

खदिरारिष्टजम्बूनां त्वग्भिर्वा मूत्रसंयुतैः ।
कुटजत्वक् सैन्धवं वा लेपाद्धन्यादरुंषिकाम् ॥ २ ॥

खैर की छाल, नीम की छाल, जामुन की छाल इन सब को गोमूत्र से पीसकर लेप करें तो अरुंषिकारोग का नाश होता है । कुड़े की छाल तथा सेंधा नमक पीसकर लेप करें तो अरुंषिका का नाश होता है ॥ २ ॥

अथ पलितस्य चिकित्सा—**अयोरजो भृङ्गराजस्त्रिफला कृष्णमृत्तिका ।**
स्थितमिक्षुरसे मासं लेपनात्पलितं जयेत् ॥१॥

लोहे का चूर्ण, भांगरा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, काली मिट्टी इन सब को पीसकर ईख के रस में डालकर एक मास तक रखे रहें और फिर निकाल कर सिर पर लेप करें तो पलितरोग का नाश होता है ॥ १ ॥

धात्रीफलद्वयं पथ्ये द्वे तथैकं विभीतकम् ।
पञ्चाम्रमज्जो लोहस्य कर्षैकं च प्रदीयते ॥ २ ॥

आंवले दो नग, हरड़ दो नग, बहेड़ा एक नग, आम की गुठली की गिरी ५ कर्ष ले, लोहे का चूर्ण १ कर्ष ले ॥ २ ॥

पिष्ट्वा लोहमये भाण्डे स्थापयेदुषितं निशि ।
लेपोऽयं हन्ति नचिरादकालपलितं महत् ॥ ३ ॥

सब को पीसकर लोहे के पात्र में डालकर जल से मिलाकर रात को पड़ा रहने देवे । इस का प्रातःकाल बालों पर लेप करें तो महान अकाल पलितरोग को शीघ्र ही नाश कर देता है ॥ ३ ॥

निम्बस्य तैलं प्रकृतिस्थमेव नस्यं विधेयं विधिना यथावत् ।
मासेन गोक्षीरभुजो नरस्य चिरात्प्रभूतं पलितं निहन्ति ॥ ४ ॥

केवल नीम के असली तेल की ही विधिपूर्वक नस्य लेने से और केवलमात्र गौ का दूध पीने से एक मास में ही बहुत देर के हुए २ श्वेत बाल अधिक भी हों तो भी नष्ट होकर काले निकलते हैं ॥ ४ ॥

काश्मर्यं मूलमादौ सहचरकुसुमं केतकस्यापि मूलं
लौहं चूर्णं सभृङ्गं त्रिफलजलयुतं तैलमेभिः पचेयुः ।
कृत्वा लोहस्य भाण्डे क्षितितलनिहितं स्थापयेन्मासमेकं
केशाः काशप्रकाशा अपि मधुपनिभा अस्य योगाद्भवन्ति ॥५॥

गंभारी की जड़ ऋतु के आरंभ में ही निकले हुए आम के फूल या मौर,

केतकी की जड़, लोहे का चूर्ण, भांगरा इन सब को समभाग लेकर कल्क करे, इस कल्क से चौगुना तिल का तेल और तेल से चौगुना त्रिफला का जल ले। सब को मिलाकर तेल पका लेवे। इस तेल को लोहे के पात्र में डालकर एक महीनाभर धरती के नीचे गाड़कर रखे। फिर निकाल कर सिर पर लगावें। इस से कास के फूल के समान श्वेत रंग के केश भी काले भौंरे के समान हो जाते हैं॥ ५॥

केशकृष्णीकरलेपः—त्रिफला नीलिकापत्रं भृङ्गराजो ह्ययोरजः।
अविमूत्रेण संपिष्टं लेपात्कृष्णीकरं परम्॥ २॥

त्रिफला, नील के पत्ते, भांगरा तथा लोहे का चूर्ण सबको मिलाकर भेड़ के मूत्र से पीस लें और इसका सिर पर लेप करें तो यह बालों को काला करता है॥२॥

अथ यौवनपिटिकान्यच्छमुखव्यङ्गनीलिकाचिकित्सामाह—

यौवनपिटिकान्यच्छनीलिकाव्यङ्गशर्कराः।
शिरावेधैः प्रलेपैश्च जयेदभ्यञ्जनैस्तथा॥ १॥

यौवनपिड़िका, न्यच्छ, नीलिका, व्यङ्ग, शर्करा इन रोगों को शिराबेध करके प्रलेप करके तथा तेल आदि की मालिश करके जीत लेवे॥ १॥

जातीफलं चन्दनं च मरिचैः सह पेषितम्।
मुखलेपेन हन्त्याशु पिटिकां यौवनोद्भवाम्॥ २॥

जायफल, लालचन्दन, काली मिरच इन सबको पीसकर मुख पर लेप करे तो यह योग यौवनपिड़िका को शीघ्र ही नाश कर देता है॥ २॥

लोध्रधान्यवचालेपस्तारुण्यपिटिकापहः।
तद्वद्गोरोचनायुक्तं मरिचं मुखलेपनात्॥ ३॥

लोध, धनियां तथा बच इन सबको पीसकर लेप करें तो तारुण्यपिड़िका नष्ट होती हैं। गोलोचन तथा मिरच दोनों को पीसकर मुंह पर लेप करें तो भी यौवनपिड़िका का नाश होता है॥ ३॥

सिद्धार्थकवचालोध्रसैन्धवैश्च प्रलेपनम्।
गव्येन चार्जुनत्वग्वा मञ्जिष्ठा वा समाक्षिका॥ ४॥

श्वेतसरसों, बच, लोध तथा सेंधानमक सबको मिलाकर लेप करे। गौ के दूध से अर्जुन की छाल को पीसकर लेप करे अथवा मंजीठ को पीसकर शहद से मिलाकर लेप करे॥ ४॥

कण्टकैः शाल्मलीयैश्च क्षीरपिष्टैः प्रलेपयेत्।
मुखे तस्यापि पिटिकाः संक्षयं यान्त्यसंशयम्॥ ५॥

सीमल के कांटों को दूध में पीसकर मुख पर लेप करे तो यौवनपिड़िका

शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाती हैं ॥ ५ ॥

त्रिभुवनविजयापत्रं मूलं स्थविरस्य शिंशपा चैभिः ।
उद्वर्तनं विरचितं न्यच्छव्यङ्गापहं सिद्धम् ॥ ६ ॥

भांग के पत्ते, विधारे की जड़ तथा शीशम की जड़ वा पत्ते सबको पीसकर उबटना बनाकर मलें तो न्यच्छ तथा व्यङ्ग को नाश करने में यह सिद्धयोग है॥६॥

वटाङ्कुरा मसूराश्च प्रलेपाद्व्यङ्गनाशनाः ।
व्यङ्गे मञ्जिष्ठया लेपः प्रशस्तो मधुयुक्तया ॥ ७ ॥

बड़ के अंकुर तथा मसूर की दाल इनको पीसकर प्रलेप करें तो व्यङ्ग का नाश होता है। व्यङ्ग में मंजीठ को पीसकर शहद से मिलाकर लेप करें तो लाभ होता है ॥ ७ ॥

व्यङ्गेषु चार्जुनत्वक्च मञ्जिष्ठावृषमाक्षिकैः ।
लेपः सनवनीतो वा श्वेताश्वखुरजा मषी ॥ ८ ॥

व्यङ्गरोग में अर्जुन की छाल, मंजीठ, बांसा इन सबको चूर्ण करके शहद से मिलाकर लेप करें। अथवा श्वेत घोड़े के खुर को अन्तर्धूम जलाकर उसकी मसी या स्याही बना लें उसमें मक्खन मिलाकर लेप करें तो व्यङ्ग का नाश होता है॥८॥

व्यङ्गानां लेपनं शस्तं शशस्य रुधिरेण वा ।
वरुणस्य कषायेण मुखं प्रक्षाल्य लेपयेत् ॥ ९ ॥

शशक के खून से व्यङ्गों पर लेप करें तो भी व्यंग का नाश होता है। अथवा वरुण की छाल के क्वाथ से मुंह को धोकर ॥ ९ ॥

वटस्य पाण्डुपत्राणि मालती रक्तचन्दनम् ।
कुष्ठं कालीयकं लोध्रमेभिर्लेपं प्रयोजयेत् ॥ १० ॥

ऊपर से बड़ के पीले पत्ते, चमेली के पत्ते, लालचन्दन, कूठ, अगर, लोध इन सबको पीसकर लेप कर दे ॥ १८ ॥

यौवनपिटिकानां तु व्यङ्गानां च विनाशनम् ।
मातुलुङ्गजटा सर्पिः शिला गोशकृतो रसः ॥ ११ ॥

इससे यौवनपिड़िका तथा व्यगों का नाश होता है बिजौरें नीबू की जड़, घी, मनसिल, गोबर का रस ॥ ११ ॥

मुखकान्तिकरो लेपः पिटिकाव्यङ्गकालजित् ।
जातीफलस्य लेपस्तु हरेद्व्यङ्गं च नीलिकाम् ॥ १२ ॥

इन सबको मिलाकर मुख पर लेप करें तो पिड़िका तथा व्यंग का नाश होता है और मुख की कान्ति बढ़ती है। जायफल का लेप करें तो मुख की नीलिका और व्यंग नष्ट होते हैं ॥ १२ ॥

अर्कक्षीरहरिद्राभ्यां मर्दयित्वा प्रलेपयेत् ।

मुखकार्ष्ण्यं शमं याति चिरकालोद्भवं ध्रुवम्॥ १३॥

आक का दूध और हल्दी को पीसकर लेप करें तो मुख का कालापन चाहे कितनी ही देर का हो शान्त हो जाता है इसमें सन्देह नहीं॥ १३॥

मसूरैः क्षीरसंपिष्टैर्लिप्तमास्यं घृतान्वितैः।
सप्तरात्राद्भवेत्सत्यं पुण्डरीकदलोपमम्॥ १४॥

मसूर की दाल को दूध में पीसकर घी मिलाकर लेप करें तो सात दिन में सचमुच ही मुख कमल पत्र के समान निर्मल हो जाता है॥ १४॥

अथ कुङ्कुमाद्यं तैलम्–**कुङ्कुमं चन्दनं लोध्रं पतङ्गं रक्तचन्दनम्।**
कालीयकमुशीरं च मञ्जिष्ठा मधुयष्टिका॥१॥

कश्मीरी केसर, श्वेत चन्दन, लोध, पतंग, लालचन्दन, अगर, खस, मंजीठ, मुलठ्ठी॥ १॥

पत्रकं पद्मकं पद्मं कुष्ठं गोरोचनं निशा।
लाक्षा दारुहरिद्रा च गैरिकं नागकेशरम्॥ २॥

तेजपात, पद्माख, कमल, कूठ, गोरोचन, हल्दी, लाख, दारुहल्दी, गेरु, नागकेसर॥ २॥

पालाशकुसुमं चापि प्रियंगुश्च वटाङ्कुराः।
मालती च मधूच्छिष्टं सर्षपाः सुरभिर्वचा॥ ३॥

ढाक के फूल, प्रियंगू, बड़ के अंकुर, चमेली के पत्ते या फूल, मोम, सरसों, शिलारस, बच॥ ३॥

चतुर्गुणपयःपिष्टैरेतैरक्षमितैः पृथक्।
पचेन्मन्दाग्निना वैद्यस्तैलं प्रस्थद्वयोन्मितम्॥ ४॥

इन सबको समभाग लेकर मिलित आधा प्रस्थ ले कल्क करे तिल का तेल दो प्रस्थ ले, और जल ८ प्रस्थ लेकर मन्द २ अग्नि से तेल पका लेवे॥ ४॥

वदनाभ्यञ्जनादेतद्व्यङ्गं नीलिकया सह।
तिलकं माषकं न्यच्छं नाशयेन्मुखदूषिकाम्॥ ५॥

इस तेल को मुंह पर मलें तो व्यंग, नीलिका, तिलक, माषक अर्थात् मस्से, न्यच्छ, मुखदूषिका॥ ५॥

पद्मिनीकण्टकं वाऽपि हरेज्जतुमणिं तथा।
विदध्याद्वदनं पूर्णचन्द्रमण्डलसुन्दरम्॥ ६॥

पद्मिनी कण्टक, जतुमणि ये सभी रोग नष्ट होते हैं। इसकी मालिश से मुख पूर्ण चन्द्र मण्डल के समान सुन्दर हो जाता है॥६॥ इति कुंकुमाद्यं तैलं भावप्रकाशात्॥

अथ मञ्जिष्ठाद्यं तैलं योगतरङ्गिण्याः—

मञ्जिष्ठं मधुकं लाक्षा मातुलुङ्गं सयष्टिकम्।
कर्षप्रमाणैरेतैस्तु तैलस्य कुडवं तथा॥ १॥

मंजीठ, मुलठ्ठी, लाख, बिजौरे नीबू की जड़, मुलठ्ठी इन में से प्रत्येक द्रव्य एक २ कर्ष लेकर कल्क करे। इसमें एक कुड़व तिल का तेल और दो कुड़व बकरी का दूध डालकर पकावे॥ १॥

आजं पयस्तु द्विगुणं शनैर्मृद्वग्निना पचेत्।
नीलिकापिटिकाव्यङ्गानभ्यङ्गादेव नाशयेत्॥ २॥

इस तेल के मलने से नीलिका, यौवनपिड़िका, व्यंग इन सबका नाश रहता है॥२॥

मुखं प्रसादोपचितं वलीपलितवर्जितम्।
सप्तरात्रप्रयोगेण भवेत्कनकसंनिभम्॥ ३॥

मुख प्रसन्न तथा फूला रहता है तथा बलियें और पलित रोग दूर होते हैं। सात रात में मुंह सोने के समान चमकदार तथा सुन्दर हो जाता है॥ ३॥

अथ पद्मिनीकण्टकचिकित्सा—

पद्मिनीकण्टके रोगे छर्दयेन्निम्बवारिणा।
तेनैव सिद्धं सक्षौद्रं सर्पिः पातुं प्रदापयेत्॥ १॥

पद्मिनी कण्टकरोग में नीम के क्वाथ से वमन करावे। और नीम से पकाया हुआ घी, शहद मिलाकर पिलावे॥ १॥

निम्बारग्वधकल्कैर्वा मुहुरुद्वर्तनं हितम्।
चतुर्गुणेन निम्बोत्थपत्रक्वाथेन गोघृतम्॥ २॥

नीम, अमलतास के पत्तों को कूटकर बार २ उबटना करना भी हितकारी है॥ नीम के पत्तों का क्वाथ चार भाग, गौ का घी एक भाग॥ २॥

पचेत्ततस्तु निम्बस्य कृतमालस्य पत्रजैः।
कल्कैर्भूयः पचेत्सिद्धं तत्पिबेत्पलसंमितम्।
पद्मिनीकण्टकाद्रोगान्मुक्तो भवति नान्यथा॥ ३॥

नीम के पत्ते तथा अमलतास क पत्त समभाग लेकर सबका कल्क घी से चौथाई भाग लेके एकत्र कर मन्दाग्नि स घी को पका लेवें। इस घी को एक पल पिलावें तो पद्मिनी कण्टक रोग नष्ट हो जाता है। यह प्रयोग व्यर्थ नहीं जाता॥३॥ इति निम्बादिघृतम्।

अथ तिलकालकमाषजतुमणीनां चिकित्सा—

चर्मकीलं जतुमणिं माषकांस्तिलकालकान्।
उत्कृत्य शस्त्रेण दहेत्क्षाराग्निभ्यामशेषतः॥ १॥

चर्मकील, जतुमणि, माष तथा तिलकालक को शस्त्रों से उखाड़कर क्षार तथा अग्नि से सर्वथा जला देवे॥ १॥

अथ परिवर्तिकाचिकित्सामाह—

स्वेदोपनाहौ परिवर्तिकायां कृत्वा समभ्यज्य घृतेन पश्चात्।
प्रवेशयेच्चर्म शनैः प्रविष्टे माषैः सुपिष्टैरुपनाहयेत्तम्॥ १॥

परिवर्तिकारोग में पहले स्वेद देवे फिर उपनाह करे फिर घी चुपड़कर चमड़े को धीरे २ प्रवेश करावे । जब प्रविष्ट हो जाये तो खूब पिसी हुई उड़दों की पीठी से उपनाह या टकोर करे ॥ १ ॥ इति वृन्दात् ।

भावप्रकाशात् परिवर्त्तिकाचिकित्सामाह—

परिवर्तिं घृताभ्यक्तां सुस्विन्नामुपनाहयेत् ।
त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा वातघ्नैः शाल्वणादिभिः ॥ १ ॥

परिवर्त्तिका को घी लगाकर खूब स्वेद देवे फिर वातनाशक शाल्वण स्वेदादि से तीन रात वा पांच रात उपनाह करे ॥ १ ॥

ततोऽभ्यज्य शनैश्चर्म वेशयेत्पीडयेन्मणिम् ।
प्रविष्टे चर्मणि मणौ स्वेदयेदुपनाहयेत् ।
दद्याद्वातहरान्बस्तीन्स्निग्धान्यन्नानि भोजयेत् ॥ २ ॥

फिर घी से चुपड़कर मणि का दबाकर चमड़े को प्रवेश करा देवे । चमड़े के मणि में प्रविष्ट हो जाने पर स्वेदन करे तथा उपनाह करे । वातनाशक द्रव्यों की वस्ति देवे तथा स्निग्ध अन्नों का भोजन करावे ॥ २ ॥

अथावपाटिकाचिकित्सा—**स्नेहस्वेदैरिमां वैद्यश्चिकित्सेदवपाटिकाम् ॥१॥**

स्नेह तथा स्वेद देकर अवपाटिका की चिकित्सा वैद्य करे ॥ १ ॥

अथ निरुद्धप्रकशस्य चिकित्सा—

निरुद्धप्रकशे नाडीं लौहीमुभयतोमुखीम् ।
दारवीं वा जतुकृतां घृताक्तां संप्रवेशयेत् ॥ १ ॥

निरुद्धप्रकषरोग में लोहे की वा लकड़ी की वा लाख की बनी हुई दोनों ओर मुख वाली नाड़ी (जिसे आजकल कैथेटर कहा जाता है) को घी से चुपड़ कर अन्दर मूत्रस्थान में प्रवेश करे ॥ १ ॥

परिषिञ्चेद्वसां मज्जां शिशुमारवराहयोः ।
चुक्रतैलं तथा योज्यं वातघ्नद्रव्यसंयुतम् ॥ २ ॥

और शिशुमार अर्थात् नाके की वा सूअर की वसा वा मज्जा उस पर डालता रहे । अथवा वातघ्न द्रव्यों से युक्त कर के चुक्रतैल का प्रयोग करे ॥२॥

त्र्यहास्थूलतरां सम्यङ् नाडीं गर्भे प्रवेशयेत् ।
स्रोतो विवर्धयेदेवं स्निग्धमन्नं च भोजयेत् ।
भित्त्वा वा सीवनीं मुक्त्वा सद्यः क्षतवदाचरेत् ॥ ३ ॥

ऐसा तीन दिन करे । चौथे दिन पहली नाड़ी से मोटी नाड़ी (कैथेटर) को मूत्रगर्भ में प्रवेश करे । इस प्रकार से क्रमशः बड़े २ कैथेटर से धीरे २ स्रोत को खोलता जावे । स्निग्ध अन्न को खिलावे । अथवा सीवनी को छोड़कर शस्त्र से भेदन करे और सद्यःव्रण के समान चिकित्सा करे ॥ ३ ॥

अथ संनिरुद्धगुदस्य चिकित्सा—

संनिरुद्धगुदे तैलैः सेको वातहरैर्हितः ।
तथा निरुद्धप्रकशक्रिया वा कथिता हिता ॥ १ ॥

संनिरुद्ध गुदरोग में वातनाशक तैलों से गुदा को सिंचन करे । तथा निरुद्ध प्रकश के समान शेष क्रिया करे ॥ १ ॥

अथाहिपूतनचिकित्सा—तत्र संशोधनैः पूर्वं धात्रीस्तन्यं विशोधयेत् ।
त्रिफलाखदिरक्वाथैर्व्रणानां क्षालनं हितम् ॥ १ ॥

पहले संशोधन की औषधियां देकर दूध पिलानेवाली स्त्री के दूध को शुद्ध करे । फिर त्रिफला तथा खैर का क्वाथ कर के व्रणों को धोवे ॥ १ ॥

शङ्खसौवीरयष्ट्याह्वैर्लेपः कार्योऽहिपूतने ।
पटोलपत्रत्रिफलारसाञ्जनविपाचितम् ।
पीतं घृतं नाशयति कृच्छ्रमप्यहिपूतनम् ॥ २ ॥

शंख, सौवीराञ्जन, मुलहठी इन सब को पीसकर अहिपूतन में लेप करना चाहिये । पटोलपत्र, हरड़, बहेड़ा, आंवला, रसौंत इन सब के कल्क से पकाया हुआ घी पिलावें तो यह कष्ट साध्य अहिपूतन को भी नाश कर देता है ॥ २ ॥

अथ वृषणकच्छूचिकित्सा—

सर्जाम्बुकुष्ठसैन्धवसितसिद्धार्थैः प्रकल्पितो योगः ।
उद्वर्तनेन नियतं शमयति वृषणस्य कण्डूतिम् ॥ १ ॥

राल, कूठ, सेंधानमक, श्वेत सरसों इन को समभाग लेकर पीसकर उबटन करें तो वृषणकच्छू अर्थात् अण्डकोषों की कच्छु को नाश करता है ॥ १ ॥

भिषग्वृषणकच्छूं तु चिकित्सेत्पामरोगवत् ।
अहिपूतननिर्दिष्टक्रिययाऽपि च तां हरेत् ॥ २ ॥

वैद्य वृषणकच्छु की पामा के समान चिकित्सा करे । अहिपूतनरोग नाश करने की क्रिया से भी इस वृषणकच्छु को अच्छा करे ॥ २ ॥

कासीसरोचनातुत्थहरितालरसाञ्जनैः ।
अम्लपिष्टैः प्रलेपोऽयं मुष्ककण्डूवहिपूतने ॥ ३ ॥

कसीस, गोलोचन, नीलाथोथा, हड़ताल तथा रसौंत इन सब को समभाग लेकर कांजी से मिलाकर पीसलें और लेप करें तो वृषणकण्डू अर्थात् अण्डकोषों की खुजली तथा अहिपूतना का नाश होता है ॥ ३ ॥

अथ गुदभ्रंशे—गुदभ्रंशे गुदं स्विन्नं स्नेहाक्तं प्रवेशयेत् ।
प्रविष्टं रोधयेद्यत्नाद्गव्यसच्छिद्रचर्मणा ॥ १ ॥

गुदभ्रंशरोग में गुदा को स्वेदन कर के घी से चुपड़ कर अन्दर को प्रवेश करावे । प्रविष्ट हो जाने के पीछे गौ के चमड़े में एक छिद्र कर के गुदा पर रख कर बांध देवे ॥ १ ॥

पद्मिन्याः कोमलं पत्रं यः खादेच्छर्करान्वितम्।
एतन्निश्चित्य निर्दिष्टं न तस्य गुदनिर्गमः ॥ २ ॥

कमलिनी के कोमल पत्तों को जो मनुष्य खांड मिलाकर खावे तो निश्चय जानो कि उस की गुदा फिर बाहर नहीं निकलती है ॥ २ ॥

मूषिकाणां वसाभिर्वा गुदभ्रंशे प्रलेपयेत्।
स्विन्नमूषकमांसेन अथवा स्वेदयेद्गुदम् ॥ ३ ॥

अथवा चूहे की वसा से गुदभ्रंश को लीप देवे। अथवा स्विन्न चूहे के मांस से गुदा को स्वेदन करे ॥ ३ ॥

चाङ्गेरीकोलदध्यम्लनागरक्षारसंयुतम्।
घृतमुत्कथितं पेयं गुदभ्रंशरुजापहम् ॥ ४ ॥

चाङ्गेरी बूटी, बेर, दही, कांजी, सोंठ तथा यवक्षार इन सब के कल्क से पकाया हुआ घी पिलावें तो गुदभ्रंशरोग की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ४ ॥

वृक्षाम्लानलचाङ्गेरीबिल्वपाठायवाग्रजम्।
तक्रेण शीलयेत्पायुभ्रंशार्तोऽनलदीपनम् ॥ ५ ॥

अथवा वृक्षाम्ल या अम्बलकुटा, चीता, चाङ्गेरी बूटी, बिल, पाठा, यवक्षार इन सब के चूर्ण को तक्र से मिलाकर सेवन करें तो गुदभ्रंश रोगी का रोग दूर होता है तथा अग्निवृद्धि होती है ॥ ५ ॥

अथ मूषकतैलम्—मूषकान्दशमूलानि गृह्णीयादुभयं समम्।
तयोः क्वाथेन कल्केन पचेत्तैलं यथोदितम् ॥ १ ॥
अभ्यङ्गात्तस्य तैलस्य गुदभ्रंशो विनश्यति।
विनश्यन्ति तथा तेन गुदशूलभगंदराः ॥ २ ॥

मूषक अर्थात् चूहे का मांस एक भाग लें, दशमूल मिलित एक भाग ले। दोनों का कल्क करे। इस कल्क से चौगुना तिल का तेल ले, तथा तेल से चौगुना उन्हीं कल्क द्रव्यों का क्वाथ लेकर सब को एकत्र मिलाकर पाक करे। इस मूषक तैल के लगाने से गुदभ्रंशरोग नष्ट होता है। गुदा का शूल तथा भगन्दर भी इस तैल के लगाने से नाश होता है ॥ २ ॥

गुदं च गव्यपयसा वेशयेदविशङ्कितः।
दुष्प्रवेशो गुदभ्रंशो विशत्याशु न संशयः।
रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम् ॥ ३ ॥

गौ के दूध से गुदा को निःशंक होकर प्रवेश करावे। इस से दुष्प्रवेश गुदभ्रंश भी शीघ्र ही प्रविष्ट हो जाता है। विशेष कर के रसौत को पिलावें तथा लेप करे इस से भी गुदभ्रंश का नाश होता है ॥ ३ ॥

अथ शूकरदंष्ट्रस्य चिकित्सा—भृङ्गराजकमूलस्य रजन्या सहितस्य च।
चूर्णं तु सहसा लेपाद्धाराहद्विजनाशनम् १

भांगरे की जड़, हल्दी के साथ समभाग लेकर चूर्ण करे इसे लेप करें तो शीघ्र ही वराहदंष्ट्र का नाश हो जाता है ॥ १ ॥

राजीवमूलकल्कः पीतो गव्येन सर्पिषा प्रातः।
शमयति शूकरदंष्ट्रं दंष्ट्रोद्भूतं ज्वरं घोरम् ॥ २ ॥

कमल की जड़ का कल्क गौ के घी से प्रातःकाल पिलावें तो शूकरदंष्ट्र और उससे हुआ २ घोर ज्वर भी नष्ट होता है ॥ २ ॥

रजनी मार्कवं मूलं पिष्टं शीतेन वारिणा।
तल्लेपाद्धन्ति वीसर्पं वाराहदशनाह्वयम् ॥ ३ ॥

हल्दी तथा भांगरे की जड़ शीतल जल से पीसकर लेप करे तो वीसर्प तथा वराहदंष्ट्र का नाश होता है ॥३॥ इति शूकरदंष्ट्रस्य चिकित्सा।

अथ पथ्यापथ्यम्—**क्षुद्ररोगेषु सर्वेषु नानारोगानुकारिषु।**
दोषान्दूष्यानवस्थां च निरीक्ष्य मतिमान्भिषक् ॥१॥

सभी क्षुद्र रोगों में जो नाना रोगों के पीछे प्रायः होजाया करते हैं, दोष तथा दूष्यों को देख कर और रोगी तथा रोगी की अवस्था देखकर विद्वान वैद्य ॥ १ ॥

तस्य तस्य च रोगस्य पथ्यापथ्यानि सर्वशः।
यथादोषं यथादूष्यं यथावस्थं प्रकल्पयेत् ॥ २ ॥

उन २ रोगों के पथ्यापथ्य दोषानुसार, दूष्यानुसार तथा अवस्थानुसार सर्वथा सेवन करावे ॥ २ ॥ इति क्षुद्ररोगचिकित्सा।

इति हरद्वारीय गुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेणायुर्वेद-शास्त्रिणा लवपुरीय श्रीमद्दयानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीय वैद्यकविराजोपाधिधारिणा राजयक्ष्मचिकित्सकेन जलचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योगरत्नाकरस्य रत्नगर्भानाम्निटीकायां क्षुद्ररोगचिकित्साप्रकरणं समाप्तम्।

अथ मुखरोगाणां निदानान्याह—

तत्र मुखस्य स्वरूपमाह—

ओष्ठौ च दन्तमूलानि दन्ता जिह्वा च तालु च।
गलो गलादि सकलं सप्ताङ्गं मुखमुच्यते ॥ १ ॥

दोनों होंठ, दांतों के मूल अर्थात् जबड़े, दांत, जीभ, तालु और गला। ये सातों अंग मिलकर मुख कहाता है ॥ १ ॥

आनूपपिशितक्षीरदधिमाषादिसेवनात्।
मुखमध्ये गदान्कुर्युः क्रुद्धा दोषाः कफोत्तराः ॥ २ ॥

अनूपदेश का मांस, दूध, दही तथा उड़द आदि के सेवन करने से क्रुद्ध हुए २ कफादिदोष मुख में रोगों को कर देते हैं ॥ २ ॥

अथ मुखरोगाणां संख्यामाह—

स्युरष्टावोष्ठयोर्दन्तमूलेषु दश षट् तथा ।
दन्तेष्वष्टौ च जिह्वायां पञ्च स्युर्नव तालुनि ॥ ३ ॥

ओठों के रोग ८ होते हैं, दन्तमूलों में १६, दांतों में ८, जीभ में ५, तालु में नौ ३

कण्ठे त्वष्टादश प्रोक्तास्त्रयः सर्वसराः स्मृताः ।
एवं मुखामयाः सर्वे सप्तषष्टिर्मता बुधैः ॥ ४ ॥

कण्ठ में १८, और शेष ३ रोग सारे मुख में विचरने वाले होते हैं । इस प्रकार से मुख के सब रोग मिलाकर ६७ होते हैं ॥ ४ ॥

तत्रौष्ठरोगांस्तेषां निदानपूर्विकां संख्यां चाऽऽह—

पृथग्दोषैः समस्तैश्च रक्तजो मांसजस्तथा ।
मेदोजश्चाभिघातोत्थ एवमष्टौष्ठजा गदाः ॥ १ ॥

वातज ओष्ठरोग, पित्तज ओष्ठ, तथा कफज ओष्ठ, सन्निपातज ओष्ठ रोग, रक्तज ओष्ठ, मांसज ओष्ठ, मेदोज ओष्ठ, अभिघातज ओष्ठरोग इस प्रकार से कुल आठ प्रकार के ओष्ठरोग होते हैं ॥ १ ॥

अथ तत्र वातिकस्य लक्षणमाह—

कर्कशौ परुषौ स्तब्धौ कृष्णौ तीव्ररुजान्वितौ ।
दाल्येते परिपाट्येते ह्योष्ठौ मारुतकोपतः ॥ २ ॥

वात से दूषित हुए ओष्ठ कर्कश अर्थात् शाकपत्र के समान खरखरे, परुष अर्थात् रूखे, स्तब्ध अर्थात् निश्चल, काले तथा तीव्र पीड़ा युक्त होते हैं दो भागों में होंठ फट जाते हैं तथा उनकी कुछ त्वचा भी फट जाती है ॥ २ ॥

अथ पैत्तिकमाह—चीयते पिटिकाभिस्तु सरुजाभिः समन्ततः ।
सदाहपाकपिटिकौ पीताभासौ च पित्ततः ॥ ३ ॥

पित्तसे दूषित हुए २ ओष्ठ पीड़ा वाली फुंसियों से चारों ओर से भर जाते हैं। अथवा दाह तथा पाक वाली पिड़िकाओं से पीले २ दीखते हैं ॥ ३ ॥

अथ श्लैष्मिकमाह—सवर्णाभिस्तु चीयेते पिटिकाभिरवेदनौ ।
कण्डूमन्तौ कफाच्छ्वेतौ शीतलौ पिच्छिलौ गुरू ॥ ४ ॥

कफ से दूषित हुए २ ओष्ठ थोड़ी २ पीड़ा सहित, त्वचा के सदृश रंगवाली पिड़िकाओं से भर जाते हैं । उनमें खुजली होती है, श्वेत रंग होता है, वे शीतल पिच्छिल तथा भारी होते हैं ॥ ४ ॥

अथ सांनिपातिकमाह—सकृत्कृष्णौ सकृत्पीतौ सकृच्छ्वेतौ तथैव च ।
संनिपातेन विज्ञेयावनेकपिटिकाचितौ ॥ ५ ॥

कभी काले, कभी पीले कभी श्वेत रंग के तथा अनेक रंग की काली पीली

श्वेत दाह, खुजली तथा शूलवाली पिड़िकाओं वाले होंठ सन्निपात से होजाते हैं ॥५॥

अथ रक्तजमाह—**खर्जूरफलवर्णाभिः पिटिकाभिर्निपीडितौ।**

रक्तोपसृष्टौ रुधिरं स्रवतः शोणितप्रभौ ॥ ६ ॥

खजूर के समान रंगवाली पिड़िकाओं से पीड़ित हुए २ होंठ खून के समान लाल रंग के होते हैं तथा उन में से खून बहता है। ये रक्त से दूषित हुए २ ओष्ठ होते हैं ॥ ६ ॥

अथ मांसजमाह—**मांसदुष्टौ गुरुस्थूलौ मांसपिण्डवदुद्गतौ।**

जन्तवश्चात्र मूर्च्छन्ति नरस्योभयतो मुखात् ॥ ७ ॥

मांस से दुष्ट हुए २ ओष्ठ भारी तथा मोटे हो जाते हैं, मांस के पिण्ड के समान उठे रहते हैं। मुख के दोनों ओर से जन्तु अर्थात् कीड़े भी निकलते हैं॥७॥

अथ मेदोजमाह—**सर्पिर्मण्डप्रतीकाशौ मेदसा कण्डुरौ मृदू।**

स्वच्छं स्फटिकसंकाशमास्रावं स्रवतो भृशम् ॥ ८ ॥

मेद से दूषित हुए २ होंठ घी के ऊपर के स्वच्छ भाग के समान होते हैं, खुजली से युक्त होते हैं, तथा कोमल होते हैं। स्वच्छ स्फटिक के समान स्राव को निरन्तर स्रवित करते रहते हैं ॥ ८ ॥

अथाभिघातजमाह—**क्षतजाभौ विदीर्येते पीड्येते चाभिघाततः।**

मथितौ च समाख्यातावोष्ठौ कण्डूसमन्वितौ ॥९॥

अभिघात अर्थात् चोटादि के लगने से होंठ रक्त के समान होते हैं, फट जाते हैं तथा पीड़ित होते हैं मथित होजाते हैं और खुजली से युक्त होते हैं ॥९॥

उक्तं भोजेन—**क्षतावभिहतौ चापि रक्तावोष्ठौ सवेदनौ।**

भवतः सपरिस्रावौ रक्तपित्तप्रदूषितौ ॥ १० ॥

क्षत से युक्त वा चोट से युक्त लाल रंग के वेदनायुक्त होंठ होजाते हैं। इस में से परिस्राव निकलता रहता है। ये रक्तपित्त से प्रदूषित हुए होते हैं ॥१०॥

इत्योष्ठरोगनिदानम् ॥

अथ दन्तवेष्टरोगाः।

तत्र दन्तवेष्टरोगाणां नामानि संख्यां चाऽऽह—

शीतादो गदितः पूर्वं दन्तपुप्पुटकस्ततः।

दन्तवेष्टः सौषिरश्च महासौषिर एव च ॥ १ ॥

अब दन्तवेष्टरोगों के नाम तथा संख्या लिखते हैं। शीताद, दन्तपुप्पुटक, दन्तवेष्ट, सौषिर, महासौषिर ॥ १ ॥

ततः परिकरः प्रोक्तस्ततस्तूपकुशः स्मृतः।

वैदर्भश्च ततः प्रोक्तः खलिवर्धन एव च ॥ २ ॥

परिकर, उपकुश, वैदर्भ, खलिवर्धन ॥ २ ॥

अधिमांसकनामा च दन्तनाड्यश्च पञ्च च।

दन्तविद्रधिरप्यत्र दन्तवेष्टेषु षोडश ॥ ३ ॥

अधिमांसक, पांच दांत की नाडियां, दन्तविद्रधि ये सब दन्तवेष्टों के अर्थात् मसूढों के सोलहरोग होते हैं ॥ ३ ॥

तत्र शीतादस्य लक्षणमाह—शोणितं दन्तवेष्टेभ्यो यत्राकस्मात्प्रवर्तते ।
दुर्गन्धीनि सकृष्णानि प्रक्लेदीनि मृदूनि च ॥४॥
दन्तमांसानि शीर्यन्ते पचन्ति च परस्परम् ।
शीतादो नाम स व्याधिः कफशोणितसंभवः ॥५॥

जिस रोग में मसूढों से अकस्मात् ही खून निकलने लगे, दांतों के मांस में से दुर्गन्धि आवे, काला रंग हो जावे, सदा गीले रहते हों तथा कोमल रहते हों मसूढों का मांस फटकर गिरता हो तथा एक दूसरे को पकाता हो इस कफ तथा रक्त से हुए २ रोग को शीताद कहते हैं ॥ ५ ॥

अथ दन्तपुप्पुटकमाह—दन्तयोस्त्रिषु वा यत्र श्वयथुर्जायते महान् ।
दन्तपुप्पुटको नाम स व्याधिः कफरक्तजः ॥६॥

दो वा तीन दान्तों के मसूढों में जब महान सूजन होजाये तो उसे दन्तपुप्पुटकरोग कहते हैं यह कफ तथा रक्त से उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥

अथ दन्तवेष्टमाह—स्रवन्ति पूयं रुधिरं चला दन्ता भवन्ति च ।
दन्तवेष्टः स विज्ञेयो दुष्टशोणितसंभवः ॥ ७ ॥

मसूढों मे से पीप और खून निकलता है, दांत हिलते हैं, इसे दन्तवेष्टरोग कहते हैं । यह दूषित रक्त से उत्पन्न होता है ॥

अथ सौषिरमाह—श्वयथुर्दन्तमूलेषु रुजावान्कफवातजः ।
लालास्रावी सकण्डूश्च स ज्ञेयः सौषिरो गदः ॥ ८ ॥

मसूढों में सूजन हो जाये, और पीड़ा होती हों, लारें बहती रहती हों, खुजली होती हो इसे सौषिररोग कहते हैं । यह कफवात से उत्पन्न होता है ॥८॥

अथ महासौषिरमाह—दन्ताश्चलन्ति वेष्टेभ्यस्तालु चाप्यवदीर्यते ।
यस्मिन्स सर्वजो व्याधिर्महासौषिरसंज्ञकः ॥९॥
सप्तरात्रान्मारकश्चायं ।

यत आह भोजः—सदाहो दन्तमूलेषु शोथः पित्तकफानिलात् ।
महासौषिर इत्येष सप्तरात्रान्निहन्त्यसून् ॥ १० ॥

मसूढों से दांत हिल जायें, तालु फट जाये, ऐसा रोग महासौषिर कहाता है यह सन्निपातज होता है । इस रोग से मनुष्य सात रात में ही मर जाता है।जैसा कि भोज ने कहा है—"दांतों की जड़ अर्थात् मसूढों में दाहयुक्त शोथ होजाता है, यह पित्त कफ तथा वात से होता है, इसे महासौषिर कहते हैं, सात रात में इस से मृत्यु होजाती है ॥ १० ॥

अथ परिदरमाह—दन्तमांसानि शीर्यन्ते यस्मिन्स्रवति चाप्यसृक् ।

पित्तासृक्कफजो व्याधिर्ज्ञेयः परिदरो हि स ॥ ११ ॥

दांतों के मांस अर्थात् मसूढ फटजांयें और उनमें से खून निकले, इसे परिदर रोग कहते हैं यह पित्तरक्त तथा कफ से उत्पन्न होता है ॥ ११ ॥

अथोपकुशमाह—**वेष्टेषु दाहः पाकश्च ताभ्यां दन्ताश्चलन्ति च।**

अल्पार्दिताः प्रस्रवन्ति शोणितं मन्दवेदनम् ॥ १२ ॥

मसूढों में दाह हो और पाक हो, इसी कारण दांत हिलने लग जांये, बहुत पीड़ा दें तथा मन्द २ पीड़ा करते हुए खून को निकालें ॥ १२ ॥

आध्मायन्ते स्रुते रक्ते मुखं पूति च जायते।

यस्मिन्नुपकुशः स स्यात्पित्तरक्तसमुद्भवः ॥ १३ ॥

रक्त के निकल जाने पर मसूढ फूल जायें और मुख दुर्गंधित होजायें, इस रोग को उपकुश कहते हैं। यह पित्तरक्त से उत्पन्न होता है ॥ १३ ॥

अथ वैदर्भमाह—**घृष्टेषु दन्तमूलेषु संरम्भो जायते महान्।**

चलन्ति च रदा यस्मिन्स वैदर्भोऽभिघातजः ॥ १४ ॥

मसूढों को दातुन आदि से घिसने पर महान शोथ अथवा पीड़ा तथा पाक उत्पन्न होजाता हो और दांत हिलने लग पड़ें उसे वैदर्भरोग कहते हैं। यह रोग अभिघातज है ॥ १४ ॥

अथ खलिवर्धनमाह—**मारुतेनाधिको दन्तो जायते तीव्रवेदनः।**

खलिवर्धनसंज्ञोऽसौ संजाते रुक्प्रशाम्यति ॥ १५ ॥

वायु से एक दांत अधिक उत्पन्न होजाता है, इसके उत्पन्न होते समय तीव्र वेदना होती है। परंतु जब यह दांत उत्पन्न होकर निकल आता है फिर पीड़ा भी शान्त होजाती है। इसे खलिवर्धन कहते हैं ॥ १५ ॥

अथाधिमांसकमाह—**हानव्ये पश्चिमे दन्ते महान् शोथो महारुजः।**

लालास्रावी कफकृतो विज्ञेयः सोऽधिमांसकः ॥१६॥

हनु के कोने में अन्तिम दांत में महान शोथ तथा महान पीड़ा उत्पन्न होजाती है, उस में से लारें टपकती हैं, इसे अधिमांसक कहते हैं। यह कफ से होता है ॥ १६ ॥

अथ पञ्च दन्तनाडीराह—

दन्तमूलगता नाड्यः पञ्च ज्ञेया यथेरिताः ॥ १७ ॥

दांतों की जड़ों में पांच नाड़ियें सुश्रुत के नाड़ी निदान में कहीं हैं, जो वातज पित्तज, कफज, सन्निपातज तथा आगन्तुज होती हैं। उनके लक्षण भी नाड़ीव्रण के समान ही होते हैं। उनमेंसे सन्निपातज नाड़ी असाध्य होती है ॥ १७ ॥

अथ दन्तविद्रधिमाह—**दन्तमांसमलैः सास्रैर्बाह्यतः श्वयथुर्महान्।**

सदाहरुक्स्रवेद्भिन्नः पूयास्रं दन्तविद्रधिः ॥ १८ ॥

मसूढों की मैल से अथवा मसूढों के अन्दर स्थित वातादि दोषों के साथ रक्त

मिलकर कुपित होकर बाहर की ओर महान सूजन को कर देता है । उसमें दाह तथा पीड़ा होती है, उसके फूटने पर रक्त तथा पीप निकलती है । इसे दन्तविद्रधि कहते हैं ॥ १८ ॥ इति दन्तवेष्टरोगाः ।

अथ दन्तरोगाः ।

तत्र दन्तरोगाणां नामानि संख्यां चाऽऽह—

दालनः कथितः पूर्वं कृमिदन्तक एव च ।
प्रोक्तो भञ्जनको दन्तहर्षो वै दन्तशर्करा ॥ १ ॥

दालन, कृमिदन्तक, भञ्जनक, दन्तहर्ष, दन्तशर्करा ॥ १ ॥

कपालिकाऽत्रकथिता श्यावदन्तक एव च ।
करालसंज्ञा इत्यष्टौ दन्तरोगाः प्रकीर्तिताः ॥ २ ॥

कपालिका, श्यावदन्तक, कराल । ये आठरोग दांतों में होते हैं ॥ २ ॥

तत्र दालनस्य लक्षणमाह—**दीर्यमाणेष्विव रुजा यत्र दन्तेषु जायते ।**
दालनो नाम स व्याधिः सदागतिनिमित्तजः ३॥

दांतों को फाड़ने के समान जब दांतों में पीड़ा होती हो तब उस रोग को दालन कहते हैं, यह रोग वायु से उत्पन्न होता है ॥ ३ ॥

अथ कृमिदन्तमाह—**कृष्णच्छिद्रश्चलः स्रावी ससंरम्भो महारुजः ।**
अनिमित्तरुजो वातात्स ज्ञेयः कृमिदन्तकः ॥ ४ ॥

दांत में काले रंग का छेद हो जाये, मसूढों में से स्राव बहता हो, शोथ हो तथा अति पीड़ा हो । बिना ही कारण के पीड़ा होवे ऐसा रोग कृमिदन्तक कहाता है यह वात से उत्पन्न होता है ॥ ४ ॥

अथ भञ्जनकमाह—**वक्त्रं वक्रं भवेद्यस्य दन्तभङ्गश्च जायते ।**
कफवातकृतो व्याधिः स भञ्जनक उच्यते ॥ ५ ॥

जिस रोग में मुंह टेढा हो जाये और दांत टूट जांय वह रोग कफवात से उत्पन्न होता है उसे भञ्जनक कहते हैं ॥ ५ ॥

अथ दन्तहर्षमाह—**शीतरूक्षप्रवाताम्लस्पर्शानामसहा द्विजाः ।**
यत्र स्युर्वातपित्ताभ्यां दन्तहर्षः स कीर्तितः ॥ ६ ॥

ठण्डा, रूखा भोजन, तेज वायु तथा खट्टा रस छूने में जिस के दांत समर्थ न हों, और इनके छूने से दांत हर्षित होजाते हों । उस रोग को दन्तहर्ष कहते हैं । यह रोग वात पित्त से होता है ॥ ६ ॥

अथ दन्तशर्करामाह—**मलो दन्तगतो यस्तु कफश्चानिलशोषितः ।**
शर्करेव खरस्पर्शा सा ज्ञेया दन्तशर्करा ॥ ७ ॥

दांतों में लगा हुआ मैल कफ तथा वायु से सूखकर शर्करा अर्थात् रेता के

समान खरस्पर्श हो जाता है इसे दन्त शर्करा कहते हैं (कहीं "शर्करेवखरस्पर्शा" के स्थान में " सा दन्तानां गुणाहरी ऐसा भी पाठ है । अर्थात् यह दन्तशर्करा दांतों की सफेदी तथा दृढ़तादि गुणों को हर लेती है) ॥ ७ ॥

अथ कपालिकामाह—**कपालेष्विव दीर्यत्सु दन्तेषु समलेषु च ।**
कपालिकेति विज्ञेया दन्तच्छिद्दन्तशर्करा ॥ ८ ॥

दांतों के मैल से युक्त होने पर, उस मैल से हुए २ दांतों के कठिन अवयवों के अर्थात् कपालों के से भागों के टूटने पर दन्तशर्करा हो जाती है उसे कपालिका कहते हैं, इससे दांत नष्ट होते रहते हैं ॥ ८ ॥

अथ श्यावदन्तकमाह—**योऽसृङ्मिश्रेण पित्तेन दग्धो दन्तस्त्वशेषतः ।**
श्यावतां नीलतां वाऽपि गतः स श्यावदन्तकः ९॥

जो दांत खून से युक्त पित्त के बिगड़ जाने से सर्वथा दग्ध होकर काला, सांवला या नीले रंग का हो गया हो वह रोग श्यावदन्तक कहाता है ॥ ९ ॥

अथ करालमाह—**शनैः शनैः प्रकुपितो यत्र दन्ताश्रितोऽनिलः ।**
करालान्विकटान्दन्तान्सकरालो न सिध्यति ॥ १० ॥

जब दांतों में आश्रित हुआ २ वात धीरे २ प्रकुपित होकर दांतों को कराल तथा बिकट कर देता है अर्थात् विषम और भयंकर कर देता है तब उस रोग को कराल कहते हैं । यह रोग ठीक नहीं होता है ॥ १० ॥

अथ हनुमोक्षमाह—**वातेन तैस्तैर्भावैस्तु हनुसंधिर्विसंहतः ।**
हनुमोक्ष इति ज्ञेयो व्याधिरर्दितलक्षणः ॥ ११ ॥

वात के प्रकोप करने वाले कारणों से हनु की सन्धि ढीली हो जाती है इस रोग को हनुमोक्ष कहते हैं । यह रोग अर्दित के समान लक्षणों वाला होता है ११

तन्त्रान्तरे—**भाराभिघाताज्जन्तोश्च हनुसंधिर्विमुच्यते ।**
निरस्तजिह्वः कृच्छ्रेण भाषितुं तत्र गच्छति ॥
सकृच्छ्रमनिलव्याधिं हनुमोक्षं विनिर्दिशेत् ॥ १२ ॥

भार से अथवा अभिघात से मनुष्य की हनुसन्धि ढीली होकर छूट जाती है, तब जिह्वा काम नहीं करती तथा मनुष्य कठिनता से बात कर सकता है । उस कष्टदायक वातरोग को हनुमोक्षरोग कहते हैं ॥१२॥ इत्येवमष्टौ दन्तरोगाः ।

अथ जिह्वारोगाः ।

तत्र जिह्वारोगाणां निदानं नामानि संख्यां चाऽऽह—

वातजः पित्तजश्चापि कफजोऽलाससंज्ञकः ।
उपजिह्विका च गदा जिह्वायां पञ्च कीर्तिताः ॥ १ ॥

वातज जिह्वा, पित्तज जिह्वा, कफज जिह्वा, अलास तथा उपजिह्विका ये पांच रोग जिह्वा में होते हैं ॥ १ ॥

अथ वातजमाह—

जिह्वाऽनिलेन स्फुटिता प्रसुप्ता भवेच्च शाकच्छदनप्रकाशा ॥

बातज जिह्वा रोग में जीभ फट जाती है, सोई सी रहती है अर्थात् रसों का ज्ञान नहीं करती । तथा शाक के पत्तों के समान खरखरी या कांटेदार सी हो जाती है॥

अथ पित्तजमाह—

पित्तात्सदाहैरनुचीयते च दीर्घैः सरक्तैरपि कण्टकैश्च ॥ २ ॥

पित्तज जिह्वा दाहयुक्त, लम्बे तथा लालरंग के कांटों से भरी होती है ॥ २ ॥

अथ कफजमाह—

कफेन गुर्वी बहुलान्विता च मांसोच्छ्रयैः शाल्मलिकण्टकाभैः ॥ ३ ॥

कफ से कुपित हुई २ जिह्वा भारी होती है, स्थून होती है तथा सीमल के कांटों के समान मांस के अंकुरों से युक्त होती है ॥ ३ ॥

अथालासमाह—

जिह्वातले यः श्वयथुः प्रगाढः सोऽलाससंज्ञः कफरक्तमूर्तिः ।
जिह्वां स तु स्तम्भयति प्रवृद्धो मूले च जिह्वा भृशमेति पाकम् ॥४॥

जिह्वा के नीचे जो भयंकर सूजन कफ रक्त से उत्पन्न हो जाती है उसे अलास कहते हैं । वह जीभ को स्तम्भित अर्थात् गति हीन कर देती है, तथा इस रोग में जीभ अपनी जड़ से पक जाती है ॥ ४ ॥

अथोपजिह्विकामाह—

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुर्हि जिह्वामुन्नम्य जातः कफरक्तयोनिः ।
प्रसेककण्डूपरिदाहयुक्तः प्रकथ्यते सा उपजिह्विकेति ॥ ५ ॥

जीभ के अगले भाग में कफ रक्त से उत्पन्न हुआ २ सूजन जीभ को ऊंचा उठाकर रखता है (अर्थात् जीभ के नीचे सूजन होता है तभी वह ऊंची रहती है) उस में से थूक आता है, खुजली होती है, दाह होता है, उसे उपजिह्विका कहते हैं ॥ ५ ॥ इति जिह्वारोगाः ॥

अथ तालुरोगाः ।

तत्र तालुरोगाणां नामानि संख्यां चाऽऽह—

गलशुण्डीतुण्डिकेर्यध्रुषाः कच्छप एव च ।
ताल्वर्बुदश्च कथितो मांससंघात एव च ॥ १ ॥

गलशुण्डी, तुण्डिकेरी, अध्रुष, कच्छप, ताल्वर्बुद, मांससंघात ॥ १ ॥

तालुपुप्पुटनामा च तालुशोषस्तथैव च ।
तालुपाकश्च कथितास्तालुरोगा अमी नव ॥ २ ॥

तालुपुप्पुट, तालुशोष, तालुपाक ये नौ रोग तालु के होते हैं ॥ २ ॥

तत्र गलशुण्डीलक्षणमाह—

श्लेष्मासृग्भ्यां तालुमूलात्प्रवृद्धो दीर्घः शोफो ध्मातबस्तिप्रकाशः ।

तृष्णाकासश्वासकृत्तं वदन्ति व्याधिं वैद्याः कण्ठशुण्डीति नाम्ना॥३॥

कफ तथा रक्त से उत्पन्न हुई २ तालु के मूल से उठकर बढ़ी हुई लंबी सूजन जो वायु से भरी हुई चमड़े की कुप्पी के समान हो उसे गलशुण्डी या कण्ठशुण्डी कहते हैं, उस से तृष्णा, श्वास तथा कास उत्पन्न होजाता है ॥ ३ ॥

अथ तुण्डिकेरीमाह—

शोथः शूलस्तोददाहप्रपाकी प्रागुक्ताभ्यां तुण्डिकेरी मता तु ॥

कफ तथा रक्त से उत्पन्न हुई २ सूजन तालु के मूल से उठकर बढ और उस में शूल, दाह तथा प्रपाक हो तो उसे तुण्डकेरी कहते हैं। (तुण्डकेरी का अर्थ है जंगली कपास का फल, क्योंकि इस में गले में सूजन वैसी ही आकार की होती है इसलिये इस रोग को भी तुण्डकेरी कहते हैं। इस में शूल दाह तथा पाक होने के कारण वात पित्त का भी अनुबन्ध होता है।) ॥

अथाध्रुषलक्षणमाह—

शोथः स्तब्धो लोहितः शोणितोत्थो ज्ञेयोऽध्रुषः सज्वरस्तीव्ररुक्च४॥

रक्त के कोप से हुआ २ तालु का सूजन अध्रुष कहाता है। यह सूजन स्तब्ध होता है तथा लाल रंग का होता है। इस में ज्वर तथा तीव्र पीड़ा होती है४

अथ कच्छपमाह—

कूर्मोत्सन्नोऽवेदनोऽशीघ्रजन्मा रोगो ज्ञेयः कच्छपः श्लेष्मणा च ॥

कफ से उत्पन्न हुआ २ कछुवे के समान उठा हुआ, पीड़ारहित, तथा देर में उत्पन्न होनेवाला तालु का रोग कच्छप कहाता है ॥

अथ तालवर्बुदमाह—

पद्माकारं तालुमध्ये तु शोथं विद्याद्रक्तादर्बुदं प्रोक्तलिङ्गम् ॥ ५ ॥

तालु के अन्दर कमल के समान आकारवाले शोथ को जिस के लक्षण पूर्वलिखित रक्तार्बुद के समान हों उसे तालवर्बुद जानो। यह रक्त से उत्पन्न होता है इसी कारण इस का रंग भी लाल होता है। (भोज ने भी लिखा है, "उपर्येव भवेन्मध्ये यथा पद्मस्यकर्णिका। पार्श्वतश्चाङ्कुरैर्दीर्घैर्नासा चाप्यवसीदति श्लेष्मरक्तसमुत्थानं तालुन्यर्बुद संज्ञितम् ॥") ॥ ५ ॥

अथ मांससंघातमाह—

दुष्टं मांसं श्लेष्मणा नीरुजं च तालवन्तःस्थं मांससंघातमाहुः ॥

कफ के कोप से तालु के मध्य में सूजा हुआ दुष्ट मांस मांससंघात रोग कहाता है इस में पीड़ा नहीं होती है ॥

अथ तालुपुप्पुटमाह—

नीरुक्स्थायी कोलमात्रः कफात्स्यान्मेदोयुक्तात्पुप्पुटस्तालुदेशे ॥६॥

कफ तथा मेद से तालु के अन्दर उत्पन्न हुआ २ पुप्पुट या गोला पीड़ारहित

स्थिर तथा बेर के बराबर होता है, उसे तालुपुप्पुटक कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ तालुशोषमाह—

शोषोऽत्यर्थं दीर्यते चापि तालु श्वासो वातात्तालुशोषोऽयमुक्तः ॥

तालु अत्यन्त फट जाता है तथा सूखता है तथा श्वास उत्पन्न होजाता है यह तालुशोष रोग वात से उत्पन्न होता है ॥

अथ तालुपाकमाह—

पित्तं कुर्यात्पाकमत्यर्थघोरं तालुन्येवं तालुपाकं वदन्ति ॥ ७ ॥

तालु में पित्त के कोप से घोर पाक उत्पन्न होजाता है इसे तालुपाक कहते हैं ॥ ७ ॥ इति तालुरोगाः ॥

अथ गलरोगाः ।

तत्र गलरोगाणां नामानि संख्यां चाऽऽह—

रोहिणी पञ्चधा प्रोक्ता कण्ठशालूक एव च ।
अधिजिह्वश्च वलयोऽलासनामैकवृन्दकः ॥ १ ॥

पांच प्रकार की रोहिणी, कण्ठशालूक, अधिजिह्व, वलय, अलास, एकवृन्दक ॥

ततो वृन्दं शतघ्नी च गिलायुः कण्ठविद्रधिः ।
गलौघश्च स्वरघ्नश्च मांसतानस्तथैव च ॥
विदारी कण्ठदेशे तु रोगा अष्टादश स्मृताः ॥ २ ॥

वृन्द, शतघ्नी, गिलायु, कण्ठविद्रधि, गलौघ, स्वरघ्न, मांसतान, विदारी । ये १८ रोग कण्ठ में होते हैं ॥ २ ॥

अथ तत्र पञ्चानामपि रोहिणीनां सामान्यां संप्राप्तिमाह—

गलेऽनिलः पित्तकफौ च मूर्च्छितौ प्रदूष्य मांसं च तथैव शोणितम् ।
गलोपसंरोधकरैस्तथाङ्कुरैर्निहन्त्यसून्व्याधिरयं तु रोहिणी ॥ ३ ॥

गले के अन्दर वायु पित्त तथा कफ मूर्च्छित होकर अर्थात् बिगड़ कर मांस तथा रक्त को प्रदूषित करके गले को रोक देने वाले अंकुरों को उत्पन्न करके प्राणों को नष्ट कर देते हैं । इस रोग को रोगिणी कहते हैं ॥ ३ ॥

अथ तत्र वातजालक्षणमाह—

जिह्वासमन्ताद्भृशवेदनास्तु मांसाङ्कुराः कण्ठनिरोधनाः स्युः ।
सा रोहिणी वातकृता प्रदिष्टा वातात्मकोपद्रवगाढजुष्टा ॥ ४ ॥

जीभ के चारों ओर अत्यन्त पीड़ा दायक मांस के अंकुर कण्ठ को रोकने वाले उत्पन्न हो जाते हैं । इसमें वात के सभी कम्प विनाम स्तम्भादि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं । इस रोग को वातज रोहिणी कहते हैं ॥ ४ ॥

अथ पित्तजामाह—

क्षिप्रोद्गमा क्षिप्रविदाहपाका तीव्रज्वरा पित्तनिमित्तजाता ॥

पित्तज रोहिणी में कण्ठ को रोकने वाले मांस के अंकुर शीघ्र ही उत्पन्न हो जाते हैं, शीघ्र ही विदाह उत्पन्न कर देते हैं तथा शीघ्र ही पक जाते हैं और तीव्र ज्वर को भी उत्पन्न कर देते हैं ।

अथ श्लेष्मजामाह—

स्रोतोनिरोधिन्यपि मन्दपाका गुरुः स्थिरा सा कफसंभवा तु ॥५॥

कफज रोहिणी में कण्ठ के स्रोत रोकने वाले मांस के अंकुर भारी तथा स्थिर होते हैं तथा देर में पकते हैं ॥ ५ ॥

अथ संनिपातजामाह—

गम्भीरपाकिन्यनिवार्यवीर्या त्रिदोषलिङ्गा त्रिभवा भवेत्सा ॥

त्रिदोषज रोहिणी में मांसांकुर गम्भीर अर्थात् अन्दर तक गहरे पक जाते हैं, इस रोग की सामर्थ्य रोगी सह नहीं सकता अर्थात् तुरन्त मृत्यु हो जाती है और त्रिदोषों के लक्षण इसमें दिखाई देते हैं । इसे त्रिदोषज रोहिणी कहते हैं ॥

अथ रक्तजामाह—

स्फोटैश्चिता पित्तसमानलिङ्गाऽसाध्या प्रदिष्टा रुधिरात्मिका तु ॥६॥

रक्तज रोहिणी में सभी चिन्ह पित्तज रोहिणी के समान होते हैं । तथा फुंसियों फोड़ों से गला भर जाता है । यह भी असाध्य होती है ॥ ६ ॥

असाध्यत्वमाह—**सद्यस्त्रिदोषजा हन्ति त्र्यहात्कफसमुद्भवा ।**
पञ्चाहात्पित्तसंभूता सप्ताहात्पवनोत्थिता ॥ ७ ॥

त्रिदोषजा रोहिणी तुरन्त ही मनुष्य को मार देती है, कफजा रोहिणी तीन दिन में मनुष्य को मार देती है । पित्तजा रोहिणी पांच दिन में मनुष्य को मार देती है । तथा वातजा रोहिणी सात दिन में मनुष्य को मार देती है ॥ ७ ॥

अथ कण्ठशालूकमाह—

कोलास्थिमात्रः कफसंभवो यो ग्रन्थिर्गले कण्टकशूकभूतः ।
खरः स्थिरः शस्त्रनिपातसाध्यस्तं कण्ठशालूकमिति ब्रुवन्ति ॥ ८ ॥

बेर की गुठली के समान कफ से उत्पन्न हुई २ गांठ गले में उत्पन्न होकर कांटे या जल शूक कीड़े के समान गले को रोक लेती है । वह कठिन तथा स्थिर होती है और शस्त्र से साध्य होती है । इस रोग को कण्ठशालूक कहते हैं । (शालूक जल में उत्पन्न हुए २ कन्द को कहते हैं) ॥ ८ ॥

अथाधिजिह्वमाह—

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुः कफात्तु जिह्वोपरिष्टादसृजैव मिश्रात् ।
ज्ञेयोऽधिजिह्वः खलु रोग एष विवर्जयेदागतपाकमेनम् ॥ ९ ॥

जीभ के अगले भाग में रक्त तथा कफ से सूजन हो जाती है, वह जीभ के ऊपर होती है । इस रोग को अधिजिह्व कहते हैं । इसे पकने पर त्याग देवे अर्थात्

असाध्य समझकर चिकित्सा न करे ॥ ६ ॥

अथ वलयमाह—

बलास एवाऽऽयतमुन्नतं च शोथं करोत्यन्नगतिं निवार्य ।
तं सर्वथैवाप्रतिवार्यवीर्यं विवर्जनीयं वलयं वदन्ति ॥ १० ॥

कफ ही अन्नवह स्रोत अर्थात् अन्न की नाली के मार्ग को रोककर वहां पर फैला हुआ तथा ऊंचा उठा हुआ शोथ उत्पन्न कर देता है। उस रोग की सामर्थ्य कोई रोगी नहीं सह सकता है इस लिये वह असाध्य होता है। इस रोग का नाम वलय है ॥१०॥

अथालासमाह—

गले तु शोथं कुरुतः प्रवृद्धौ श्लेष्मानिलौ श्वासरुजोपपन्नम् ।
मर्मच्छिदं दुस्तरमेनमाहुरलाससंज्ञं भिषजो विकारम् ॥ ११ ॥

बढे हुए कफ तथा वात गले में सूजन को कर देते हैं। साथ में श्वासरोग भी उत्पन्न होजाता है अर्थात् श्वास में कष्ट होता है। इस से हृदयादिमर्म छिन्न होते हैं, इस कष्टसाध्यरोग को विद्वान वैद्य अलास कहते हैं ॥ ११ ॥

अथैकवृन्दमाह—

वृत्तोन्नतोऽन्तःश्वयथुः सदाहः सकण्डुरोऽपाक्यमृदुर्गुरुश्च ।
नाम्नैकवृन्दः परिकीर्तितोऽसौ व्याधिर्बलासक्षतजप्रसूतः ॥ १२ ॥

कफ तथा रक्त से उत्पन्न हुआ २ सूजन गले के अन्दर मध्य भाग में उत्पन्न होजाता है वह सूजन गोल तथा उठा हुआ होता है, उस में दाह तथा खुजली होती रहती है। वह पकता नहीं तथा वह शोथ कोमल स्पर्श भी नहीं होता है, भारी होता है। इस रोग का नाम एक वृन्द है ॥ १२ ॥

अथ वृन्दमाह—**समुन्नतं वृत्तममन्ददाहं तीव्रज्वरं वृन्दमुदाहरन्ति ।**
तच्चापि पित्तक्षतजप्रकोपाद्विद्यात्सतोदं पवनात्मकं तु ॥ १३ ॥

वह गले की सूजन यदि अधिक उभरी हुई हो, गोल हो तथा अधिक दाहयुक्त हो तथा तीव्र ज्वर से युक्त हो तो उसे वृन्द कहते हैं। यह पित्त रक्त से उत्पन्न होता है। परन्तु यदि इस में शूल हो तो इस में वात का भी संबंध होता है ॥१३॥

अथ शतघ्नीमाह—

वर्तिर्घना कण्ठनिरोधिनी या चिताऽतिमात्रं पिशितप्ररोहैः ।
अनेकरुक्प्राणहरा त्रिदोषाज्ज्ञेया शतघ्नीसदृशी शतघ्नी ॥ १४ ॥

जो बत्ती घनी हो, कण्ठ को रोक देती हो तथा मांस के अंकुरों से अत्यन्त घिरी हुई हो। तथा उस से अनेक प्रकार की तोद, दाह, कण्ड्वादि पीडायें हों, वह शतघ्नीके समान शतघ्नी कहाती है यह प्राणों का नाश कर देती है ॥ ("अयः कण्टकसंछन्ना शतघ्नीमहती शिला"। लोहे के कांटों से घिरी हुई महान शिला को शतघ्नी कहते हैं। यह रोग भी इसी के समान मांस के अंकुरों से घिरकर

गले को रोक देता है। इसलिये इसे शतघ्नी कहते हैं ॥) यह त्रिदोषज होती है ॥१४

अथ गिलायुमाह—

ग्रन्थिर्गले त्वामलकास्थिमात्रः स्थिरोऽल्परुक्स्यात्कफरक्तमूर्तिः।
संलक्ष्यते सक्तमिवाशनं च स शस्त्रसाध्यस्तु गिलायुसंज्ञः ॥ १५ ॥

गले में आंवले की गुठली के समान स्थिर तथा थोड़ी पीड़ावाली कफ रक्त से उत्पन्न हुई २ गांठ को गिलायु कहते हैं, उस के होने पर भोजन गले में ही लग गया हो ऐसा प्रतीत होता है। यह रोग शस्त्रसाध्य होता है ॥ १५ ॥

अथ गलविद्रधिमाह—

सर्वं गलं व्याप्य समुत्थितो यः शोफो रुजः सन्ति च यत्र सर्वाः।
स सर्वदोषैर्गलविद्रधिस्तु तस्यैव तुल्यः खलु सर्वजस्य ॥ १६ ॥

सारे गले को व्याप्त कर के जो सूजन उत्पन्न हुई २ हो, जिस में तोद दाह कण्डु आदि सभी प्रकार की वात पित्त कफ की पीड़ायें भी होती हों, वह गलविद्रधिरोग कहाता है। यह सर्वदोषज अर्थात् सन्निपातज होता है। इस के लक्षण सन्निपातज विद्रधि के समान ही होते हैं ॥ १६ ॥

अथ गलौघमाह—

शोथो महानन्नजलावरोधी तीव्रज्वरो वायुगतेर्निहन्ता।
कफेन जातो रुधिरान्वितेन गले गलौघः परिकीर्त्यतेऽसौ ॥ १७ ॥

कफ तथा रक्त से उत्पन्न हुआ २ गले में महान शोथ गलौघ कहाता है। इस रोग में सूजन के महान होने के कारण अन्न जल अन्दर जाने से रुक जाते हैं, तथा तीव्र ज्वर होजाता है और उदान वायु की गति गले में रुक जाती है ॥१७

अथ स्वरघ्नमाह—

यस्ताम्यमानः श्वसिति प्रसक्तं भिन्नस्वरः शुष्कविमुक्तकण्ठः।
कफोपदिग्धेष्वनिलायनेषु ज्ञेयः स रोगः श्वसनात्स्वरघ्नः ॥ १८ ॥

जिस रोग के होने से रोगी मूर्छित होता हुआ या अंधकार को देखता हुआ निरन्तर सांस लेवे। जिस का स्वर टूटता हो, और जिस का गला सूख गया हो तथा निगलने आदि का कार्य न कर सकता हो। वायु के स्रोतों में कफ भर जाने के कारण सांस लेने से यह रोग स्वरघ्न कहाता है ॥ १८ ॥

अथ मांसतानमाह—

प्रतानवान्यः श्वयथुः सुकष्टो गलोपरोधं कुरुते क्रमेण।
स मांसतानः कथितोऽवलम्बी प्राणप्रणुत्सर्वकृतो विकारः ॥ १९ ॥

जो विस्तारवान सूजन, अत्यन्त कष्टदायी होकर गले को क्रमशः रोक लेती है और लटकती रहती है वह मांसतानरोग कहाता है यह बढ़कर प्राणों को नाश कर देती है तथा त्रिदोष होती है ॥ १९ ॥

अथ विदारीलक्षणमाह—

सदाहतोदं श्वयथुं प्रसक्तमन्तर्गले पूतिविशीर्णमांसम् ।
पित्तेन विद्याद्वदने विदारीं पार्श्वे विशेषात्स तु येन शेते ॥ २० ॥

जिस करवट या पासे मनुष्य सोता है उस ओर विशेष करके विदारीरोग होजाता है, कभी २ दूसरे पार्श्व में भी होजाता है । इस रोग में गले के अन्दर सूजन हो जाती है । उस में दाह तथा शूल होता है, गले का मांस दुर्गन्धित तथा फटा हुआ होजाता है । इस रोग को पित्त से उत्पन्न हुआ माना है॥२०॥ इति गलरोगाः ॥

अथ समस्तमुखरोगाः ।

तत्र तेषां निदानं संख्यां चाऽऽह—

पृथग्दोषैस्त्रयो रोगाः समस्तमुखजाः स्मृताः ॥ १ ॥

समस्त मुख के तीन रोग होते हैं । वातिक, पैत्तिक तथा कफज ॥ १ ॥

अथ तत्र वातिकस्य लक्षणमाह—

स्फोटैः सतोदैर्वदनं समन्ताद्यस्याऽऽचितं सर्वसरः स वातात् ॥१॥

जिस मनुष्य का ओष्ठादि सहित सारा मुंह शूल करने वाली फुंसियों से भर जाये वह वातज सर्वसर रोग कहाता है ।

अथ पैत्तिकमाह—

रक्तैः सदाहैः पिडकैः सपीतैर्यस्याचितं वाऽपि स पित्तकोपात् ॥१॥

जिस मनुष्य का सारा मुंह लाल रंग की दाहयुक्त पिडिकाओं से वा पीले रंग की दाहयुक्त पिडिकाओं से भर जाये उसे पित्तज सर्वसररोग कहते हैं । (सर्वसर का अर्थ है मुंह का पकना । कोई २ इस रोग को मुखपाक ही कहते हैं) ॥ १ ॥

अथ श्लैष्मिकमाह—

अवेदनैः कण्डुयुतैः सवर्णैर्यस्याऽऽचितं वाऽपि स वै कफेन ॥

अथ कैश्चिन्मुखपाकरोग एक एव प्रदिष्टः—

रक्तेन पित्तोदित एक एव कैश्चित्प्रदिष्टो मुखपाकरोगः ॥ २ ॥

जिसका सारा मुंह वेदना रहित, खुजली वाली, त्वचा सदृश रंग की पिडिकाओं से भर जाये उसे कफज सर्वसर रोग कहते हैं । कईयों ने इस मुख पाक रोग को एक ही माना है । अर्थात् मुखपाकरोग रक्त से भी कईयों ने हुआ २ माना है उसके लक्षण पित्तज मुखपाक के समान ही होते हैं ॥ २ ॥

अथ मुखरोगेष्वसाध्यानाह—

ओष्ठप्रकोपे वर्ज्याः स्युर्मांसरक्तत्रिदोषजाः ।
दन्तवेष्टेषु वर्ज्यौ तु त्रिलिङ्गगतिसौषिरौ ॥ १ ॥

ओष्ठ प्रकोप में अर्थात् ओष्ठरोगों में मांसज ओष्ठ, रक्तज ओष्ठ तथा सन्निपातज ओष्ठ असाध्य हैं । दन्त वेष्ठरोगों में त्रिदोष नाड़ी तथा त्रिदोषज सौषिर रोग

असाध्य हैं ॥ १ ॥

दन्तेषु च न सिध्यन्ति श्यावदालनभञ्जनाः ।
जिह्वारोगेष्वलासस्तु तालुजेष्वर्बुदं तथा ॥ २ ॥

दन्तरोगों में श्यावदन्त, दालन तथा भञ्जनकरोग असाध्य हैं । जिह्वारोगों में अलासरोग असाध्य है । तालुजरोग में अर्बुद रोग असाध्य है ॥ २ ॥

स्वरघ्नो वलयो वृन्दो बलासः सविदारिकः ।
गलौघो मांसतानश्च शतघ्नी रोहिणी गले ॥ ३ ॥

गलरोगों में नौ रोग, स्वरघ्न, वलय, वृन्द, बलास, विदारिक, गलौघ, मांसतान, शतघ्नी और रोहिणी असाध्य हैं ॥ ३ ॥

असाध्याः कीर्तिता ह्येते रोगा दश नवोत्तराः ।
तेषु चापि क्रियां वैद्यः प्रत्याख्याय समाचरेत् ॥ ४ ॥

ये सभी मिलाकर १६ रोग असाध्य हैं । इनका भी वैद्य इलाज अवश्य करे परन्तु यह कह दे कि ये असाध्य हैं ॥ ४ ॥ इति समस्तमुखरोगाः ।

अथ मुखरोगाणां चिकित्सा ।

तत्रौष्ठरोगेषु—गलदन्तमूलदशनच्छदेषु रोगाः कफास्रभूयिष्ठाः ।
तस्मादेतेष्वसकृद्रुधिरं विस्रावयेद्दुष्टम् ॥ १ ॥

गला, मसूढे तथा होंठ इनमें रोग प्रायः कफ तथा रक्त से उत्पन्न होते हैं । इस कारण इनमें बार २ दुष्टरुधिर निकलवाता रहे ॥ १ ॥ इति भावप्रकाशात् ।

अथ वातजे—स्नेहांस्तथोष्णान्परिषेकलेपान्घृतस्य पानं रसभोजनं च ।
अभ्यञ्जनस्वेदनलेपनं तदोष्ठे विदध्यात्पवनाभिभूते ॥ १ ॥

वातज ओष्ठरोग में स्नेह तथा गरम २ परिषेक और लेप, घी का पिलाना तथा मांसादि द्रव पदार्थों का भोजन कराना चाहिये । मालिश, स्वेद तथा लेप करने चाहियें ॥ २ ॥

अथ तैलादियोगः—

तैलं घृतं सर्जरसं ससिक्थं रास्नागुडं सैन्धवगैरिकं च ।
पक्त्वा समांशं दशनच्छदानां त्वग्भेदहन्तृ व्रणरोपणं च ॥२॥

तिल का तेल, घी, राल, मोम, रास्ना, गुड, सेंधानमक तथा गेरू इन सबको समभाग मिलाकर पकाले। इसे लगावें तो होंठों की त्वचा फटी हुई हो तो उसे नष्ट करता है तथा व्रणों को भरता है ॥ २ ॥

रालादितैलघृते—

रालं मधूच्छिष्टगुडेन पक्वं तैलं घृतं वा विनिहन्ति लेपात् ।
त्वक्स्फोटपारुष्यरुजोऽधरस्य पूयास्रसंस्रावमपि प्रसह्य ॥ ३ ॥

राल, मोम, गुड इनको समभाग लेकर कल्क करे इससे तेल वा घी पका

लेवे। इसका लेप करने से त्वचा का शूल, कठोरता तथा होंठ की पीड़ायें नष्ट होती हैं तथा रक्त तथा पीप का स्राव भी बन्द हो जाता है॥ ३॥

अथ पित्तजे—**वेधं शिराणां वमनं विरेकं तिक्तस्य पानं रसभोजनं च।**
शीताः प्रदेहाः परिषेचनं च पित्तोपसृष्टेष्वधरेषु कुर्यात्॥१॥

पित्तज ओष्ठ रोग में शिराबेध करें। वमन दें तथा विरेचन दें, कड़वी औषधों के बने हुए क्वाथ घी आदि पिलावें, मांसरसादि का भोजन करावें। शीतल लेप तथा परिषेक करें। इससे पित्तज ओष्ठरोग का नाश होता है॥ १॥

अथ कफजे—**शिरोविरेचनं धूमः स्वेदः कवल एव च।**
हृते रक्ते प्रयोक्तव्य ओष्ठकोपे कफात्मके॥ १॥

कफज ओष्ठरोग में रक्त निकलवा कर शिरोविरेचन अर्थात् नस्य देवें। धूम पिलावें, स्वेद देवें, कवलग्रहण करावें अर्थात् कुल्ले करावें। इस से कफज ओष्ठरोग की शान्ति होती है॥ १॥

अथ मेदोजे—**मेदोजे स्वेदिते भिन्ने शोधिते कवलो हितः।**
प्रियंगुत्रिफलालोध्रं सक्षौद्रं प्रतिसारणम्॥ २॥

मेदज ओष्ठरोग में पहले स्वेद देवे, फिर भेदन कर के शोधन करे फिर कवल धारण करे। फिर प्रियंगु, त्रिफला तथा लोध के समभाग चूर्ण में शहद मिलाकर प्रतिसारण करे॥ ३॥

अथ प्रतिसारणस्य विधिमाह—**दन्तजिह्वामुखानां यच्चूर्णकल्कावलेहकैः।**
शनैर्घर्षणमङ्गुल्या तदुक्तं प्रतिसारणम्॥ १॥

दांतों, जीभ तथा मुख को चूर्ण, कल्क तथा अवलेहों अर्थात् चटनी या (Paste) से जो धीरे २ उंगली से घिसा जाता है उसे प्रतिसारण कहते हैं॥१॥

अवशिष्टौष्ठरोगाणामुपायाः—**ओष्ठरोगेष्वशेषेषु दृष्ट्वा दोषमुपाचरेत्।**
तेषु व्रणत्वं यातेषु व्रणवत्समुपाचरेत्॥ २॥

शेष ओष्ठरोगों में दोषों को देखकर उन के अनुसार चिकित्सा करे। जब वे व्रण हो जायें तो उनकी चिकित्सा व्रणों के समान करे॥२ इत्योष्ठरोगचिकित्सा॥

अथ दन्तमूलरोगाणां चिकित्सा।

दन्तमूलसमुत्थेषु दन्तोत्थेषु गदेषु च।
रक्तमोक्षं प्रशंसन्ति जलौकालाबुश्टङ्गकैः॥१॥

मसूढ़ों तथा दांतों के रोगों में जौंक, तुम्बी तथा सींगी के द्वारा रक्त निकलवा देना लाभ देता है॥ १॥

अथ शीतादस्य चिकित्सा—**शीतादेऽस्रस्रुतिं कुर्यात्तथा गण्डूषधारणम्।**
शुण्ठीपर्पटकक्वाथैः कवोष्णैश्च मुहुर्मुहुः॥ १॥

शीतादरोग में रक्त निकलवावे, तथा सोंठ, पित्तपापड़ा इन दोनों के कोसे २ क्वाथ से बार २ गण्डूष धारण करावे॥ १॥ इति योगतरङ्गिण्याः॥

शीतादे हृतरक्ते तु तोये नागरसर्षपान्।
निष्क्वाथ्य त्रिफलां चापि कुर्याद्गण्डूषधारणम्॥ १॥

शीतादरोग में रक्त निकलवा देने के पीछे सोंठ तथा सरसों तथा त्रिफला को जल में पकाकर कुल्ले करे॥ १॥ इति भावप्रकाशात्॥

अथ कासीसादि—**कासीसलोध्रकृष्णामनःशिलासप्रियंगुतेजोह्वाः।**
एषां चूर्णं मधुयुक् शीतादे पूतिमांसहरम्॥ १॥

कसीस, लोध, पीपल, मनसिल, प्रियंगु, तेजबल के फल इनका चूर्ण करके शहद से मिलाकर मसूढ़ों पर लगावें तो शीतादरोग के सड़े हुये मांस को नष्ट कर देता है॥ १॥

तैलं घृतं वा वातघ्नं शीतादे संप्रशस्यते॥ २॥

वातघ्न तेल वा वातघ्न घी शीतादरोग में लगाने से लाभ होता है॥ २॥

अथ दन्तपुप्पुटकस्य चिकित्सा—

दन्तपुप्पुटके कार्यं तरुणे रक्तमोक्षणम्।
सपञ्चलवणक्षारैः सक्षौद्रैः प्रतिसारणम्॥ १॥

नये ही दन्तपुप्पुटकरोग में रक्त निकलवा देना चाहिये। फिर पांचों लवण तथा यवक्षारादि क्षारों को शहद से मिलाकर मसूढ़ों पर उंगली से धीरे २ घिसना चाहिये॥ १॥

अथ दन्तवेष्टस्य चिकित्सा—

दन्तवेष्टे विधिः कार्यो रक्तपित्तनिबर्हणः।
शिरोविरेकश्च हितो नस्यं स्निग्धं च भोजनम्॥ १॥

दन्तवेष्ट रोग में रक्तपित्त नाशक विधि करनी चाहिये। शिरो विरेचन देवे, नस्य देवे तथा स्निग्ध भोजन देवे॥ १॥

विस्राविते दन्तवेष्टे व्रणं तु प्रतिसारयेत्।
लोध्रपत्तङ्गमधुकलाक्षाचूर्णैर्मधुप्लुतैः॥ २॥

दन्तवेष्टरोग का रक्त निकलवा देने के पीछे लोध, पतंग, मुलट्ठी, लाख इन सबके समभाग चूर्ण में शहद मिलाकर व्रणपर प्रतिसारण करे अर्थात् उंगली से धीरे २ मले॥ २॥

गण्डूषे क्षीरिणो योज्याः सक्षौद्रघृतशर्कराः।
चलदन्तस्थैर्यकरं कार्यं बकुलचर्वणम्॥ ३॥

गण्डूष धारण करने के लिये क्षीरीवृक्षोंके क्वाथ में घी शहद तथा खांड मिलाकर प्रयोग करे। हिलते हुए दांतों को स्थिर करने के लिये मौलसरी की छाल, वा फल को चबावे॥ ३॥

अथ भद्रमुस्तादिवटिका—भद्रमुस्ताभयाव्योषविडङ्गारिष्टपल्लवैः।
गोमूत्रपिष्टैर्गुटिकां छायाशुष्कां प्रकल्पयेत् ॥१॥

भद्रमोथा, हरड़, सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, नीम के पत्ते इन सबको समभाग लेकर गोमूत्र से पीसकर गोली बनाकर छाया में सुखा लेवें ॥ १ ॥

तां निधाय मुखे स्वप्याच्चलदन्तातुरो नरः।
नातः परतरं किंचिच्चलदन्तस्य भेषजम् ॥ २ ॥

हिलते हुए दांतों वाला मनुष्य इस गोली को मुंह में धारण करके सो जावे। इससे बढकर हिलते हुए दांतों को स्थिर करने के लिये और कोई उत्तम औषध नहीं है ॥ २ ॥

अथ सहाचरादितैलम्—

तुलां धृतां नीलसहाचरस्य द्रोणेऽम्भसः संश्रपयेद्यथावत्।
ततश्चतुर्भागरसे तु तैलं पचेच्छनैरर्धपलप्रमाणैः ॥ १ ॥

नीलीझिण्टी एक सौ पल लेकर एक द्रोण जल में डाल देवे। तब पकाकर चौथाई भाग जल शेष रख लेवे। फिर उस जल से चौथाई भाग तिल का तेल लें। और अनन्तमूल, खैर, अरिमेद अर्थात् विट्खदिर, जामुन, आम, मुलठ्ठी, नीलाकमल इन में से प्रत्येक द्रव्य को आधा १ पल लेकर कल्क करे। सब को एकत्र तेल में डालकर तेल पका लेवे ॥ १ ॥

कल्कैरनन्ताखदिरारिमेदजम्ब्वाम्रयष्टीमधुकोत्पलानाम्।
तत्तैलमाश्वेव धृतं मुखेन स्थैर्यं द्विजानां विदधाति सद्यः ॥ २ ॥

उस तेल को मुंह में रखें तो शीघ्र ही दांतों को स्थिर कर देता है ॥ २ ॥

इति सहचरादितैलं भावप्रकाशात् ॥

अथ जीरकाद्यं चूर्णम्—

जरणलवणपथ्याशाल्मलीकण्टकाना-
मनुदिनमनुघृष्टं दन्तमूलेषु चूर्णम्।
व्रणदरणरुगस्रस्रावचाञ्चल्यशोथा-
नपनयति विवस्वानन्धकारानिवाऽऽशु ॥ १ ॥

जीरा, लवण, हरड़, सीमल के कांटे, इन सबको पीसकर चूर्ण करे। इस चूर्ण को मसूढों में प्रतिदिन मले तो मसूढ़ों के व्रण, फटना, पीड़ा, रक्तस्राव, दांतों का हिलना तथा शोथ इन सब को शीघ्र ही ऐसा नाश करता है जैसे अन्धकार को सूर्य नाश करता है ॥ १ ॥

अथ कणाद्यं चूर्णम्—कणासिन्धूत्थजरणचूर्णं तूर्णं व्यपोहति।
घर्षणाद्दन्तचाञ्चल्यव्यथाशोथास्रसंस्रवान् ॥ १ ॥

पिप्पली, सेंधानमक, जीरा इन सब का चूर्ण दांतों पर तथा मसूढ़ों पर घिसें

तो दांतों की चंचलता, व्यथा, सूजन तथा रक्तस्राव दूर होते हैं ॥ १ ॥

अथ दशमूलादितैलघृते—दशमूलीकषायेण तैलं वा घृतमेव वा।
विपक्वं केवलं शस्तं सक्षौद्रं दन्तचालने ॥ ५ ॥

दशमूल के क्वाथ में तैल वा घी पकाकर शहद मिलाकर लगावें तो दांतों का हिलना दूर होता है ॥ १ ॥ इति दन्तवेष्टरोगचिकित्सा ॥

अथ सौषिरस्य चिकित्सा—सौषिरे हृतरक्ते तु लोध्रमुस्तारसाञ्जनैः।
सक्षौद्रैः शस्यते लेपो गण्डूषे क्षीरिणो हिताः १

सौषिररोग में रक्त निकलवा देवे। फिर लोध, मोथा, रसौंत इनका समभाग चूर्ण शहद से मिलाकर लेप करें। तथा क्षीरी वृक्षों के क्वाथ से गण्डूष धारण करें तो सौषिररोग अच्छा होता है ॥ १ ॥

अथ परिदरोपकुशयोश्चिकित्सा—

क्रियां परिदरे कुर्याच्छीतादोक्तां विचक्षणः।
संशोध्योभयतः कायं शिरश्चोपकुशे तथा ॥ १ ॥

उपकुश तथा परिदररोग में शीतादरोग के समान क्रिया करे। वमन विरेचन तथा सिर का शोधन नस्यादि से पहले कर लेना चाहिये ॥ १ ॥

काकोदुम्बरिकापत्रैर्व्रणं विस्रावयेद्भिषक्।
लवणैः क्षौद्रयुक्तैश्च सव्योषैः प्रतिसारयेत् ॥ २ ॥

काकोदुम्बरिका अर्थात् जंगली अंजीर के पत्तों से व्रण को घिसकर स्रावित करे फिर लवण, शहद तथा सोंठ, मिरच, पीपल के मिलित चूर्ण से व्रण को प्रतिसारण करे ॥ २ ॥

अथ वैदर्भखलिवर्धनाधिमांसकदन्तविद्रधिरोगाणां चिकित्सामाह—

शस्त्रेणोत्कृत्य वैदर्भे दन्तमूलानि शोधयेत्।
ततः क्षारं प्रयुञ्जीत क्रियाः सर्वाश्च शीतलाः ॥ १ ॥

वैदर्भ को शस्त्र से उखाड़ कर मसूढ़ों को शुद्ध करे। फिर क्षार को लगावे तथा सभी शीतल क्रियायें करे ॥ १ ॥

उद्धृत्याधिकदन्तं तु ततोऽग्निमवचारयेत्।
कृमिदन्तकवच्चात्र विधिः कार्यो विजानता ॥ २ ॥

अधिक दांत को उखाड़ कर अग्नि से मसूढे को दाग देवे। तथा क्रिमिदन्त के समान शेष विधि करे ॥ २ ॥

छित्वाऽधिमांसं सक्षौद्रैरेतैश्चूर्णैरुपाचरेत्।
वचातेजोवतीपाठास्वर्जिकायावशूकजैः ॥ ३ ॥

अधिमांस को काटकर बच, तेजबल, पाठा, सज्जी और यवक्षार इन सब के समभाग चूर्ण में शहद मिलाकर व्रण पर लगावे ॥ ३ ॥

क्षौद्रद्वितीयपिप्पल्यः कवल चात्र कीर्तिताः।
पटोलनिम्बत्रिफलाकषायश्चात्र धावनः ॥ ४ ॥

कवल धारण करने के लिये पिप्पली के क्वाथ में शहद मिलाकर प्रयोग करे। पटोलपत्र, नीम के पत्ते, हरड़, बहेड़ा, आंवला इन सबका क्वाथ कर व्रण को धोवे।४

विद्रध्युक्तं च विधिवद्विदध्याद्दन्तविद्रधौ।
शस्त्रकर्म नरस्तत्र कुशलेनैव कारयेत् ॥ ५ ॥

विद्रधिरोग में कही हुई चिकित्सा विधि से ही दन्तविद्रधि की चिकित्सा करे। कुशल आदमी से शस्त्रकर्म भी करावे ॥ ५ ॥

दन्तनाडीचिकित्सा—नाडीव्रणहरं कर्म दन्तनाडीषु कारयेत्।
यद्दन्तमध्ये जायेत नाडीदन्तं तमुद्धरेत् ॥ ६ ॥

दन्तनाड़ी में नाड़ीव्रण नाशक कर्म करे। जिस दांत के मध्य में नाड़ीव्रण हो जाये उस दांत को ही उखाड़ डाले ॥ ६ ॥

छित्त्वा मांसानि शस्त्रेण यदि नोपरमो भवेत्।
उद्धृत्य च दहेच्चापि क्षारेण ज्वलनेन वा ॥ ७ ॥

यदि शस्त्र से मांस छील देने पर भी शान्ति न हो तो दांत को उखाड़ने के पीछे क्षार से या अग्नि से वह व्रणस्थान जला देना चाहिये ॥ ७ ॥

भिनत्त्युपेक्षिते दन्ते हनुं सास्थिगतिर्ध्रुवम्।
उद्धृते तूत्तरे दन्ते शोणितं प्रस्रवेदति ॥ ८ ॥

दांत की उपेक्षा करने से वह दांत निश्चय से हड्डि की गति के साथ २ हनु को भी तोड़ देता है। यदि ऊपर का दांत उखाड़ लिया जाये तो अत्यन्त रक्त बहता है ॥ ८ ॥

रक्तातिसेकात्पूर्वोक्ता घोरा रोगा भवन्ति हि।
'काणः संजायते जन्तुरर्दितं तस्य जायते ॥ ९ ॥

रक्त अधिक निकलने से पूर्व लिखित भयंकर रोग होजाते हैं। मनुष्य काना हो जाता है तथा उसे अर्दित रोग होजाता है ॥ ९ ॥

चलमप्युत्तरं दन्तमतो नैवोद्धरेद्भिषक्।
समूलं दशनं तस्मादुद्धरेद्भग्नमस्थि च ॥ १० ॥

इसलिये हिलते हुए भी ऊपर के दांत को वैद्य न उखाड़े। इसलिये दांत को मूलसहित तथा टूटी हुई हड्डी सहित ही उखाड़ डालना चाहिये ॥ १० ॥

अथ जात्यादितैलम्—कषायैर्जातिमदनकण्टकीस्वादुकण्टकैः।
मञ्जिष्ठालोध्रखदिरयष्ट्याह्वैश्चापि यत्कृतम्।
तैलं यत्साधितं तत्र हन्याद्दन्तगतां गतिम् ॥ १ ॥

चमेली के पत्ते, मैनफल, कटेली तथा विकंकत वृक्ष या बइंचि वृक्ष इन सब

को समभाग लेकर क्वाथ करे। इस क्वाथ से चौथाई भाग तेल, और तेल से चौथाई भाग मंजीठ, लोध, खैर तथा मुलट्ठी इन सबका कल्क करें। इन सबको एकत्र पाक करलें। तो इस तेल के लगान से दांतों का हिलना नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥ इति दन्तमूलरोगाणां चिकित्सा।

अथ दन्तरोगाणां चिकित्सा–

दन्तरोगेषु सर्वेषु शस्तो वातहरो विधिः।
पक्वं तैलं कवोष्णं च शस्तं कवलधारणे ॥ १ ॥

सभी दन्त रोगों में वातनाशक विधि करे। पका हुआ वातनाशक तैल कोष्ण करके केवल धारण करे ॥ १ ॥

क्रिमिदन्तचिकित्सा–जयेद्विस्रावणैः स्विन्नमचलं कृमिदन्तकम्।
तथाऽवपीडैर्वातघ्नैः स्नेहगण्डूषधारणैः ॥ २ ॥

स्वेद देकर न हिलते हुए कृमिदन्तक को विस्रावण करावे। फिर वातनाशक अवपीड़ नस्यों से तथा वातनाशक स्नेहों के गण्डूष धारण कराने से कृमिदन्तक रोग की शान्ति करे ॥ २ ॥

भद्रदार्वादिवर्षाभूलेपैः स्निग्धैश्च भोजनैः।
कृमिदन्तापहं कोष्णं हिङ्गु दन्ताम्बरे स्थितम् ॥ ३ ॥

भद्रदार्वादिगण तथा पुनर्नवा के लेप से तथा स्निग्ध भोजनों से तथा गरम २ हींग को होठों में रखने से कृमिदन्त का नाश होता है ॥ ३ ॥

बृहतीभूमिकदम्बीपञ्चाङ्गुलकण्टकारिकाक्वाथः।
गण्डूषस्तैलयुतः कृमिदन्तकवेदनाशमकः ॥ ४ ॥

बड़ी कटेली, मुण्डी बूटी, एरण्ड की जड़ तथा छोटी कटेली इन सबका क्वाथ करके इसमें तैल मिलाकर गण्डूष धारण करे तो कृमिदन्त की वेदना को शान्त करता है ॥ ४ ॥

नीलीवायसजङ्घाकटुतुम्बीमूलमेकैकम्।
संचूर्ण्य दशनविधृतं दशनक्रिमिपातनं प्राहुः ॥ ५ ॥

नील की जड़, काकजंघा की जड़, कड़वी तुम्बी की जड़ इन में से एक २ द्रव्य का चूर्ण दांतों में रखने से दांतों के कीड़ों को निकाल देता है ॥ ५ ॥

पिष्ट्वा च सारिवापर्णं दृढं दन्तेषु धारयेत्।
पतन्ति दन्तकीटाश्च चाञ्चल्यं हरति क्षणात् ॥ ६ ॥

शारिवा के पत्तों को पीसकर दृढ़ता से दांतों में पकड़ रखे। इससे दांत के कीड़े निकल जाते हैं तथा हिलना शीघ्र ही बन्द हो जाता है ॥ ६ ॥ इति वैद्यविलासात्।

अथ कासीसादिगुटी–कासीसं हिङ्गुसौराष्ट्री देवदारु समं जलैः।
गुटिकां धारयेद्दन्तक्रिमिशूलहरां पराम् ॥ १ ॥

कसीस, हींग, सोरठ मिट्टी इसके अभाव में फिटकरी लें, देवदार, इन सबको सम-भाग लेकर पीस लें और जल से गोली बनाकर मुंह में रखें इससे दांतों के कृमि तथा शूल निश्चित नाश हो जाता है ॥ १ ॥ इति चिकित्सासारात् ।

अथ दन्तहर्षचिकित्सा—**स्नेहानां कवलाः कोष्णाः सर्पिषस्त्रिवृतस्य च ।**
निर्यूहाश्चानिलघ्नानां दन्तहर्षप्रमर्दनाः ॥ १ ॥

स्नेह पदार्थों के कोसे २ कवल धारण करना, त्रिवी का पकाया हुआ घी, वातनाशक द्रव्यों के क्वाथ दन्तहर्ष रोग का नाश करते हैं ॥ २ ॥

स्नैहिकोऽत्र हितो धूमो नस्यं स्नैहिकमेव च ।
रसा रसयवाग्वश्च क्षीरं संतानिकाघृतम् ।
शिरोबस्तिर्हितश्चापि क्रमो यश्चानिलापहः ॥ २ ॥

इस रोग में स्निग्ध धूम देवे, स्निग्ध द्रव्यों अर्थात् तैलादि की नस्य देवे। रसेदार भोजन दें, तथा रसयुक्त यवागू देवें, दूध दें, मलाई देवें तथा घी देवें । तथा शिरो वस्ति दें तथा वातनाशक सभी क्रम करें ॥ २ ॥

दन्तशर्कराचिकित्सा—**अच्छिद्य दन्तमूलानि शर्करामुद्धरेद्भिषक् ।**
लाक्षाचूर्णैर्मधुयुतैस्ततस्तां प्रतिसारयेत् ॥ ३ ॥
दन्तहर्षक्रियां चात्र कुर्यान्निरवशेषतः ।

मसूढों को काटने के बिना ही वैद्य शर्करा को उखाड़ लेवे । फिर लाख के चूर्ण में शहद मिलाकर दांतों का प्रतिसारण करे । अर्थात् उंगली से इस लाख के चूर्ण को दांतों पर धीरे २ घिसे ॥३॥ तथा दन्तहर्षरोग में कही हुई सारी क्रिया करे।

अथ कपालिकाचिकित्सा—**कपालिका कृच्छ्रतमा तत्राप्येषा क्रिया हिता ॥४॥**

कपालिका रोग कष्टसाध्य है उस में भी दन्त शर्करा के समान क्रिया करे ॥४॥

अथ सामान्यचिकित्सा अरिमेदादितैलम्—

अरिमेदत्वचं क्षुण्णां पचेच्छतपलोन्मिताम् ।
जलद्रोणेन तत्क्वाथं गृह्णीयात्पादशेषितम् ॥ १ ॥

अरिमेद अर्थात् विट्खदिर की त्वचा का चूर्ण एक सौ पल लेवे । एक द्रोण जल में डालकर पकावे । जब पकते २ चौथाई भाग शेष रह जाये तो उतारकर छान लेवे ॥ १ ॥

तैलस्यार्धाढकं दत्वा कल्कैः कर्षमितैः पचेत् ।
अरिमेदलवङ्गाभ्यां गैरिकागुरुपद्मकैः ॥ २ ॥

उसमें आधा आढक तैल डाले । और विट्खदिर, लौंग, गेरु, अगर, पद्माख मंजीठ, लोध, मुलहठी, लाख, बड़ की छाल, मोथा ॥ २ ॥

मञ्जिष्ठालोध्रमधुकैर्लाक्षान्यग्रोधमुस्तकैः ।
त्वग्जातीफलकर्पूरकङ्कोलखदिरैस्तथा ॥ ३ ॥

दारचीनी, जायफल, कपूर, कंकोल, खैर की छाल ॥ ३ ॥

पतङ्गधातकीपुष्पसूक्ष्मैलानागकेशरैः।
कट्फलेन च संसिद्धं तैलं मुखरुजं जयेत् ॥ ४ ॥

पतंग, धाय के फूल, छोटी इलायची, नागकेसर तथा कायफल इन में से प्रत्येक द्रव्य एक २ कर्ष लेकर कल्क करके तेल पका लेवे। इस तेल के प्रयोग से मुख की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ४ ॥

प्रदुष्टमांसं चलितं शीर्णदन्तं च सौषिरम्।
शीतादं दन्तहर्षं च विद्रधिं कृमिदन्तकम्।
दन्तस्फुटनदौर्गन्ध्यं जिह्वाताल्वोष्ठजां रुजम् ॥ ५ ॥

प्रदुष्टमांस, चलितदांत, शीर्णदन्त, सौषिरदांत, शीताद, दन्तहर्ष, विद्रधि, कृमिदन्तक, दन्तस्फुटन, दन्तदौर्गन्ध्य, तथा जीभ, तालु और ओष्ठ की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ५ ॥ इत्यरिमेदादितैलं भावप्रकाशात् ॥

अथ लाक्षादितैलम्—तैलं लाक्षारसं क्षीरं पृथक्प्रस्थमितं पचेत्।
द्रव्यैः पलमितैरेतैः क्वाथैश्चापि चतुर्गुणैः ॥ १ ॥

तिल का तेल एक प्रस्थ, लाख का रस एक प्रस्थ, तथा दूध एक प्रस्थ ले ॥१॥

लोध्रकट्फलमञ्जिष्ठापद्मकेसरपद्मकैः।
चन्दनोत्पलयष्ट्याह्वैस्तत्तैलं वदने धृतम् ॥ २ ॥

लोध, कायफल, मंजीठ, कमलकेसर, पद्माख, लालचन्दन, नीलाकमल, मुलहठी, इन सबको एक २ पल लेकर कल्क कर लेवे। तथा इन्हीं लोध आदि द्रव्यों का क्वाथ करके चार प्रस्थ लें। फिर सब कल्क, क्वाथ, तेल, लाख का रस तथा दूध को एकत्र करके विधिपूर्वक पकावें तो यह लाक्षादि तैल तय्यार होता है २

दालनं दन्तचालं च दन्तमोक्षकपालिकाम्।
शीतादं पूतिवक्त्रं च विरुचिं विरसास्यताम् ॥ ३ ॥

इस तेल को मुह में धारण करने से दालन, दन्तचालन, दन्तमोक्ष, कपालिका, शीताद, पूतिवक्त्र, अरुचि, मुंह का विरस रहना ॥ ३ ॥

हन्यादाशु गदानेतान्कुर्याद्दन्तानपि स्थिरान्।
लाक्षादिकमिदं तैलं दन्तरोगेषु पूजितम् ॥ ४ ॥

ये सब रोग शीघ्र ही नष्ट होजाते हैं तथा यह तेल दांतों को स्थिर करता है। यह लाक्षादि तैल दांतों के रोगों में अत्यन्त लाभदायक माना गया है ॥ ४ ॥ इति लाक्षादितैलम्।

अथ कुष्ठादिचूर्णम्—

कुष्ठं दार्वी लोध्रमब्दं समङ्गा पाठा तिक्ता तेजनी पीतिका च।
चूर्णं शस्तं घर्षणे तद्द्विजानां रक्तस्रावं हन्ति कण्डूरुजं च ॥ १ ॥

कूठ, दारुहल्दी, लोध, मोथा, मंजीठ, पाठा, कुटकी, (तेजनी) बच या मालकंगनी हल्दी इन सबको समभाग लेकर चूर्ण करे। इसे दांतों पर घिसें तो रक्तस्राव, खुजली

तथा पीड़ा को नाश करता है ॥ १ ॥

अथ सौराष्ट्र्यादिः—

सौराष्ट्रीत्रिफलामदत्रुटिक्रमिघ्नित्तुत्थपत्राङ्गकं
कासीसं खदिरस्य सारममलं मायाफलं चाऽऽयसम्।
जीमूतं च समांशकं हि सकलं संकुट्य वस्त्रे भृशं
पूतं तोययुतं रदेषु रदरुग्विच्छित्तिकृद् घृष्टकम् ॥ २ ॥

सोरठ मिट्टी या फिटकरी, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सुपारी, इलायची, वायविडंग, नीलाथोथा, पत्तंग की लकड़ी, कसीस, कत्था, माजूफल, लोहे का मैल, मोथा इन सबको समभाग लेकर पीस कर वस्त्र में से छान लेवें। फिर थोड़े पानीसे मिलाकर दांतों पर मलें तो दांतों की पीड़ा नष्ट हो जाती है तथा दांत साफ़ होकर मैलादि दूर हो जाती है ॥ २ ॥

दन्तशूलहरः—छिन्नया पिष्टया वारा दन्तशूलो विनश्यति।
स्वेदिता रवितोयेन चलतां नाशयेद् ध्रुवम् ॥ ३ ॥

गिलोय को पीसकर मकोय से मिलाकर दांतों को मलें तो दांतों का शूल नष्ट हो जाता है। तथा आक के दूध में मकोय मिलाकर स्वेदन करें तो दांतों की चंचलता निश्चित नष्ट हो जाती है ॥ ३ ॥

अथ जातीपत्रादिचूर्णम्—जातीपत्रपुनर्नवागजकणाकोरण्टकुष्ठं वचा
शुण्ठीदीप्यहरीतकीतिलसमं श्लक्ष्णं भृशं चूर्णयेत्।
तच्चूर्णं वदने धृतं विजयते दौर्गन्ध्यदन्तव्यथां
चाञ्चल्यत्वमतिव्रणश्वयथुरुक्कण्डूक्रमिव्यापदः ॥ १ ॥

चमेली के पत्त, पुनर्नवा, गजपीपल, कोरण्ट अर्थात् बेर की छाल, कूठ, बच, सोंठ, अजवायन, हरड़, तिल, इन सबको पीसकर चूर्ण करले। इस चूर्ण को मुंह में धारण करें तो दुर्गन्ध, दांतों की पीड़ा, दांतों का हिलना, अत्यधिक व्रण होने, सूजन, पीड़ा, कण्डू अर्थात् खुजली तथा कृमिदन्तक ये सभी रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अपथ्यम्—फलान्यम्लानि शीताम्बु रूक्षान्नं दन्तधावनम्।
तथाऽतिकठिनं भक्ष्यं दन्तरोगी विवर्जयेत् ॥ २ ॥

खट्टे फल, शीतल जल पीना, रूखा अन्न खाना, दातुन करनी तथा अत्यन्त कठिन पदार्थ दांतों से चबाना ये सभी बातें दांतरोगी त्याग देवे ॥ २ ॥ इति दन्तरोगचिकित्सा।

अथ जिह्वारोगाणां चिकित्सामाह।

जिह्वागतविकाराणां शस्तं शोणितमोक्षणम्।
गुडूचीपिप्पलीनिम्बकवलः कटुभिः सुखः ॥ १ ॥

जिह्वा के रोगों में रक्त निकलवा देना उत्तम है। तथा गिलोय, पिप्पली,

नीम की छाल इन सब को पकाकर त्रिकुटा डालकर कवल धारण करना भी सुखदायक है ॥ १ ॥

वातजिह्वारोगे—ओष्ठप्रकोपेऽनिलजे यदुक्तं प्राक्चिकित्सितम् ।
कण्टकेष्वनिलोत्थेषु तत्कार्यं भिषजा खलु ॥ २ ॥

वातजओष्ठ प्रकोप में जो चिकित्सा पहले कही है वही वातज जिह्वा के कांटों में भी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २ ॥

पित्तजिह्वारोगे—पित्तजेषु विघृष्टेषु निःसृते दुष्टशोणिते ।
प्रतिसारणगण्डूषं नस्यं च मधुरं हितम् ॥ ३ ॥

पित्तज जिह्वारोग के कांटों को घिसकर रक्त निकाल देवे । फिर प्रतिसारण, गण्डूष तथा नस्य मधुर औषधों से लेवे । तथा मधुर पदार्थों का ही सेवन करे ॥३॥

अथोपजिह्वायां—उपजिह्वां तु संलिख्य क्षारेण प्रतिसारयेत् ।
शिरोविरेकगण्डूषधूमैश्चैनामुपाचरेत् ॥ ४ ॥

उपजिह्वा पर क्षार का प्रलेपन कर के प्रतिसारण करे । तथा शिरोविरेचन, गण्डूष, धूंआ देना अर्थात् धूमपान से इस की चिकित्सा करे ॥ ४ ॥

व्योषक्षाराभयावह्निचूर्णमेतत्प्रघर्षणम् ।
उपजिह्वाप्रशान्त्यर्थमेभिस्तैलं च पाचयेत् ॥ ५ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, यवक्षार, हरड़, चीता इन सब का चूर्ण कर के इसे घिसे तो उपजिह्वारोग शान्त होता है । अथवा इन ही द्रव्यों से तेल पका लेवे तो भी उपजिह्वारोग में लाभ होता है ॥ ५ ॥

गृहधूमारनालेन क्वाथं समधुसैन्धवम् ।
पाणिना मर्दयेच्चाऽस्य उपजिह्वाप्रशान्तये ॥ ६ ॥

गृहधूम तथा कांजी को पकाकर इस में शहद तथा सेंधानमक मिलाकर उंगली से उपजिह्वा पर घिसे तो उपजिह्वारोग शान्त होता है ॥ ६ ॥

निर्गुण्डीयोगः—निर्गुण्डीमुसलीकन्दं चर्वयेदुपजिह्वजित् ।
काञ्चनारत्वचः क्वाथः प्रातरास्ये धृतः सुखः ।
कुर्यात्सखदिरो जिह्वादरणोन्मूलनं मुहुः ॥ ७ ॥

निर्गुण्डी तथा मूसली का कन्द मुंह में रखकर चबावे तो उपजिह्वा की शांति होती है । कचनार की छाल का क्वाथ कोसा कर के कत्था मिलाकर मुंह में प्रातःकाल बार २ धारण करने से जिह्वा का दरण अर्थात् फटना नष्ट होता है ॥७॥

इति जिह्वारोगचिकित्सा ॥

अथ तालुरोगाणां चिकित्सा । गलशुण्डीचिकित्माह—

युञ्ज्यात्कफहरं शुण्ड्यां रसं गण्डूषधारणे ।
कुष्ठोषणवचासिन्धुकणापाठाप्लवैः सह ॥ १ ॥

गलशुण्डीरोग में गण्डूष धारण करने के लिये कफनाशक रस को प्रयुक्त करे। कूठ, मिरच, बच, सेंधानमक, पिप्पली, पाठा, मोथा इन सब के चूर्ण के साथ शहद मिलाकर गलशुण्डी को घिसे ॥ १ ॥

सक्षौद्रैर्भिषजा कार्यं गलशुण्डीप्रघर्षणम् ।
अङ्गुष्ठाङ्गुलिसंदंशेनाऽऽकृष्य गलशुण्डिकाम् ॥ २ ॥
छेदयेन्मण्डलाग्रेण जिह्वोपारे तु संस्थिताम् ।
अतिच्छेदात्स्रवेद्रक्तं ततो हेतोर्म्रियेत च ॥ ३ ॥

अंगूठे और उंगली से संदंश अर्थात् चिमटी को पकड़ कर गलशुण्डी को बाहर खींच लेवे। फिर जिह्वा पर स्थित उस गलशुण्डी को मण्डलाग्र शस्त्र से छिन्न कर देवे। अत्यन्त छेद करने से रक्त बहुत बहता है इससे रोगी मर जाता है ॥

हीनच्छेदाद्भवेच्छोथो लालास्रावो भ्रमस्तथा ।
तस्माद्वैद्यः प्रयत्नेन दृष्टकर्मा विशारदः ॥ ४ ॥

कम छेदन करने से शोथ होजाता है तथा लारें टपकने लगती हैं और भ्रम होजाता है। इसलिये पहले सीखा हुआ तथा काम किया हुआ अनुभवी वैद्य ही ॥४॥

गलशुण्डीं तु संछिद्य कुर्यात्प्राप्तमिमं क्रमम् ।
पिप्पल्यतिविषाकुष्ठवचामरिचनागरैः ॥ ५ ॥

इस को काटे। गलशुण्डी को काटकर पीपल, अतीस, कूठ, बच, मिरच तथा सोंठ ॥ ५ ॥

क्षौद्रयुक्तैः सलवणैस्ततस्तां प्रतिसारयेत् ।
तुण्डिकेर्यध्रुवे कूर्मे संघाते तालुपुप्पुटे ॥ ६ ॥

इन सब के चूर्ण को शहद से मिलाकर तथा लवण मिलाकर इस से गलशुण्डी का प्रतिसारण करे। अर्थात् इसे गलशुण्डी पर धीरे २ मलता रहे ॥ तुण्डकेरी, अध्रुष या अध्रुषरोग, कूर्म या कच्छप, संघात, तालुपुप्पुटक ॥ ६ ॥

एष एव विधिः कार्यो विशेषः शस्त्रकर्मणि ।
तालुपाके तु कर्तव्यं विधानं पित्तनाशनम् ॥
स्नेहस्वेदौ तालुशोषे विधिश्चानिलनाशनः ॥ ७ ॥

इन सब रोगों में इसी विशेष विधि से शस्त्रकर्म करे। तालुपाक में पित्त नाशक कर्म करे। तालुशोषरोग में स्नेह तथा स्वेद देवे तथा वातनाशक विधि करे ॥ ७ ॥ इति तालुरोगाणां चिकित्सा ॥

अथ गलरोगाणां चिकित्सा। रोहिणीचिकित्सा—

रोहिणीनां तु साध्यानां हितं शोणितमोक्षणम् ।
वमनं धूमपानं च गण्डूषो नस्यकर्म च ॥ १ ॥

साध्यरोहिणी में रक्त निकलवाना हितकारक है। वमन, धूमपान, गण्डूष

धारण करना तथा नस्य देना हितकर है ॥ १ ॥

वातजरोहिणीचिकित्सा–**वातजां तु हृते रक्ते लवणैः प्रतिसारयेत् ।**
सुखोष्णान्स्नेहगण्डूषान्धारयेच्चाप्यभीक्ष्णशः ॥२॥

वातज रोहिणीरोग में रक्त निकलवाने के पश्चात् लवणों से प्रतिसारण करे। तथा बार २ कोसे स्नेह के गण्डूषों को धारण करे ॥ २ ॥

पित्तरोहिणीचिकित्सा–**विस्राव्य पित्तसंभूतां सिताक्षौद्रप्रियंगुभिः ।**
घर्षयेत्कवलो द्राक्षापरूषैः क्वथितैर्हितः ॥ ३ ॥

पित्तज रोहिणी में से रक्त को निकाल कर खांड शहद तथा प्रियंगू के कल्क से घर्षण करे । तथा दाख और फालसे को पकाकर इनका कवल धारण करे ॥३॥

कफजरोहिणीचिकित्सा–**आगारधूमकटुकैः कफजां प्रतिसारयेत् ।**
श्वेताविडङ्गदन्तीषु तैलं सिद्धं ससैन्धवम् ॥४॥
नस्यकर्मणि दातव्यं कवलं च कफोच्छ्रये ॥

रसोई घर के धुएं, सोंठ, मिरच, पीपल इनसे कफज रोहिणी का (रक्त निकलवाने के बाद) प्रतिसारण करे । श्वेता अर्थात् फिटकरी या बच, दन्तीमूल तथा विडंग इनसे पकाया हुआ तेल सेंधानमक मिलाकर नस्य दें ॥ ४ ॥ तथा कफाधिक रोहिणी में इसी तेल का कवल धारण करायें ॥

रक्तरोहिणीचिकित्सा–**पित्तवत्साधयेद्वैद्यो रोहिणीं रक्तसंभवाम् ॥ ५ ॥**

पित्तज रोहिणी के समान ही रक्तज रोहिणी की चिकित्सा करे ॥ ५ ॥

कण्ठशालूकचिकित्सा–**विस्राव्य कण्ठशालूकं साधयेत्तुण्डिकेरिवत् ।**
एककाले यवान्नं च भुञ्जीत स्निग्धमल्पशः ॥ ६ ॥

कण्ठ शालूक रोग में रक्त को निकलवाकर तुण्डिकेरी के समान चिकित्सा करे । एक समय ही जौ का बनाया हुआ घी मिला हुआ थोड़ा भोजन करे ॥६॥

उपजिह्वकचिकित्सा–**उपजिह्वकवच्चापि साधयेदधिजिह्वकम् ।**

उपजिह्वक के समान ही अधिजिह्वक रोग की चिकित्सा करे ।

एकवृन्दचिकित्सा—**एकवृन्दं तु विस्राव्य विधिं शोधनमाचरेत् ॥ ७ ॥**

एक वृन्दरोग में रक्त निकलवाकर शोधन चिकित्सा करे ॥ ७ ॥

वृन्दचिकित्सा—**एकवृन्दमिव प्रायो वृन्दं च समुपाचरेत् ।**

एक वृन्दरोग के समान ही वृन्दरोग की चिकित्सा करे ।

गिलायुचिकित्सा—**गिलायुश्चापि यो व्याधिस्तं च शस्त्रेण साधयेत् ॥**

गिलायु रोग को शस्त्र से सिद्ध करे ।

गलविद्रधिचिकित्सा—**अमर्मस्थं सुसंपक्वं छेदयेद्गलविद्रधिम् ॥ ८ ॥**

जो मर्मस्थान में न हुआ हो तथा अच्छी प्रकार से पका हुआ हो उस गलविद्रधि को शस्त्र से छेदन करके व्रण के समान चिकित्सा करे ॥ ८ ॥

अथ सामान्यानां गलरोगाणां चिकित्सा—

कण्ठरोगेष्वसृङ्मोक्षैस्तीक्ष्णैर्नस्यादिकर्मभिः ।
चिकित्सकश्चिकित्सां तु कुशलोऽत्र समाचरेत् ॥ १ ॥

चतुर चिकित्सक कण्ठरोगों में रक्त निकलवावे तथा तीक्ष्णनस्यादि कर्म करे १

दार्व्यादिक्वाथः—**क्वाथं दद्याच्च दार्वीत्वङ्निम्बतार्क्ष्यकलिङ्गजम् ।**
हरीतकीकषायो वा हितो माक्षिकसंयुतः ॥ २ ॥

दारुहल्दी, दारचीनी, चीता, नीम, रसौंत, इन्द्रजौ इन सबका क्वाथ पिलावे । अथवा हरड़ का क्वाथ शहद मिलाकर पिलावे ॥ २ ॥

कटुकादिक्वाथः-**कटुकातिविषादारुपाठामुस्ताकलिङ्गकाः ।**
गोमूत्रक्वथिताः पीताः कण्ठरोगविनाशनाः ॥ ३ ॥

कुटकी, अतीस, दारुहल्दी, पाठा, मोथा, इन्द्रजौ इन सबको गोमूत्र डालकर पकायें । इस क्वाथ को पीने से कण्ठरोगों का नाश होता है ॥ ३ ॥

त्रिदोषघ्ना योगाः—**मृद्वीकाकटुकाव्योषं दार्वीत्वक्त्रिफला घनम् ।**
पाठा रसाञ्जनं दूर्वा तेजोह्वेति सुचूर्णितम् ॥ ४ ॥
क्षौद्रयुक्तं विधातव्यं गलरोगे महौषधम् ।
योगास्त्वेते त्रयः प्रोक्ता वातपित्तकफापहाः ॥ ५ ॥

मुनक्का, कुटकी, सोंठ, मिरच, पीपल इनका चूर्ण शहद से मिलाकर गले से चाटें या गोली बनाकर गले में धारण करें तो वातिक गलरोगों का नाश होता है । दारुहल्दी, दारचीनी, हरड़, बहेड़ा, आंवला तथा मोथे का चूर्ण शहद से मिलाकर गले में धारण करें या चाटें तो पित्तज गलरोग का नाश होता है । पाठा, रसौंत, दूब तथा तेजबल का चूर्ण शहद से मिलाकर मुंह में धारण करें या चाटें तो कफज गलरोग नाश होते हैं । ये सभी योग गलरोगों के लिये महौषध हैं ॥५॥

सर्व गलरोगे यवाग्रजादिवटी—

यवाग्रजं तेजवतीं सपाठां रसाञ्जनं दारुनिशां सकृष्णाम् ।
क्षौद्रेण कुर्याद्गुटिकां मुखेन तां धारयेत्सर्वगलामयेषु ॥६॥

यवक्षार, तेजबल के फल, पाठा, रसौंत, दारुहल्दी, पीपली इन सबको समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें । इसकी गोली मुंह में धारण करने से सभी गले के रोग नष्ट हो जाते हैं ॥६॥ इति गलरोगाणां चिकित्सा ।

अथ समस्तमुखरोगाणां चिकित्सा । वातजसर्वसरचिकित्सा—

वातात्सर्वसरं चूर्णैर्लवणैः प्रतिसारयेत् ।
तैलं वातहरैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः ॥ १ ॥

वातज सर्वसर रोग में लवणयुक्त वातनाशक द्रव्यों के चूर्ण से प्रतिसारण करे । वातनाशक तैलों से कवल धारण करावे तथा नस्य देवे ॥ १ ॥

पित्तजसर्वसरोचिकित्सा—पित्तात्मके सर्वसरे शुद्धकायस्य देहिनः।
सर्वपित्तहरः कार्यो विधिर्मधुरशीतलः॥ २॥

पित्तज सर्वसररोग में रोगी को विरेचनादि से शुद्ध करके पित्तनाशक सब प्रकार की मधुर तथा शीतल विधि करे॥ २॥

कफजेसर्वसरेचिकित्सा—प्रतिसारणगण्डूषधूमसंशोधनानि च।
कफात्मके सर्वसरे क्रमं कुर्यात्कफापहम्॥ ३॥

कफज सर्वसररोग में कफनाशक प्रतिसारण, गण्डूष धारण, धूमपान तथा संशोधन कर्म कर॥ ३॥ इति सर्वसरोपक्रमः॥

मुखपाकेचिकित्सा—मुखपाके शिरावेधः शिरसश्च विरेचनम्।
मधुमूत्रघृतक्षीरैः शीतैश्च कवलग्रहः॥ १॥

मुखपाकरोग में शिराबेधन करे, सिर का विरेचन देवे। शहद, मूत्र, घी, दूध तथा अन्य शीतल पदार्थों का कवल धारण करे॥ १॥

जातिपत्रादिक्वाथः—जातीपत्रामृताद्राक्षायासदार्वीफलत्रिकैः।
क्वाथः क्षौद्रयुतः शीतो गण्डूषो मुखपाकनुत्॥ २॥

चमेली के पत्त, गिलोय, दाख, जवासा, दारुहल्दी, हरड़, बहेड़ा, आंवला इन सब को समभाग लेकर क्वाथ कर के शीतल करे। इस में शहद मिलाकर गण्डूष धारण करे तो मुखपाकरोग नष्ट होता है॥ २॥

कार्यं च बहुधा नित्यं जातीपत्रस्य चर्वणम्॥ ३॥

तथा दिन में कई बार नित्य ही चमेली के पत्तों को चबावे॥ ३॥

कृष्णजीरककुष्ठेन्द्रयवचर्वणतस्त्र्यहात्।
मुखपाकव्रणक्लेददौर्गन्ध्यमुपाशाम्यति॥ ४॥

अथवा कालाजीरा, कूठ, इन्द्रजौ इन को तीन दिन तक मुंह में रखकर चबाने से मुखपाक, व्रण, क्लेद अर्थात् स्राव तथा मुंह की दुर्गन्धि शान्ति होती है॥ ४॥

मुखधावने पटोलादिः—पटोलनिम्बजम्ब्वाम्रमालतीनवपल्लवैः।
पञ्चपल्लवजः श्रेष्ठः कषायो मुखधावने॥ ५॥

पटोलपत्र, नीम के पत्ते, जामुन के पत्ते, आम के पत्ते तथा चमेली के कोमल पत्ते इन पांचों पल्लवों का क्वाथ मुख के धोने में श्रेष्ठ है॥ ५॥

पञ्चवल्कलजः क्वाथस्त्रिफलासंभवोऽथवा।
मुखपाके प्रयोक्तव्यः सक्षौद्रो मुखधावने॥ ६॥

केवल पञ्च पल्लव का क्वाथ अथवा त्रिफला का क्वाथ शहद मिलाकर मुखपाक रोग में प्रयुक्त करना चाहियें॥ ६॥

रसाञ्जनयोगः—स्वरसः क्वथितो दार्व्या घनीभूतो रसक्रिया।
सक्षौद्रो मुखरोगासृग्दोषनाडीव्रणापहः॥ ७॥

दारुहल्दी का स्वरस पकाकर घना कर के रसक्रिया से रसौंत बना लेवे इस में शहद मिलाकर मुंह में धारण करें तो मुखरोग, रक्त के दोष तथा नाड़ी-

व्रण का नाश होता है॥ ७॥

सप्तच्छदादियोग:—सप्तच्छदोशीरपटोलमुस्ताहरीतकीतिक्तकरोहिणीभिः।
यष्ट्याह्वराजद्रुमचन्दनैश्च क्वाथं पिबेत्पाकहरं मुखस्य ८

सप्तपर्ण की छाल, खस, पटोलपत्र, मोथा, हरड़, कुटकी, मुलठी, अम्लतास लालचन्दन इन सब का क्वाथ पिलाने से मुख का पाक दूर होता है॥ ८॥

पटोलादिः—

पटोलशुण्ठीत्रिफलाविशालात्रायन्तितिक्ताद्विनिशामृतानाम्।
पीतः कषायो मधुना निहन्ति मुखे स्थितश्चाऽऽस्यगदानशेषान्॥९॥

पटोलपत्र, सोंठ, हरड़, बहेड़ा, आंवला, इन्द्रायण, त्रायमाण, कुटकी, हल्दी, दारुहल्दी, गिलोय इन का क्वाथ शहद मिलाकर पिलावें और मुख में धारण करावें तो मुख के सभी रोग नष्ट होजाते हैं॥ ९॥

दग्धमुखस्यचिकित्सा—तिला नीलोत्पलं सर्पिः शर्करा क्षीरमेव च।
सलोध्रो दग्धवक्त्रस्य गण्डूषो दाहनाशनः॥१०॥

तिल, नीले कमल, घी, खांड तथा दूध, लोध इन सब को मिलाकर पीसलें इस का गण्डूष धारण करे तो जले हुए मुख का दाह नष्ट होता है॥ १०॥

अथ हरिद्रातैलम्—हरिद्रां निम्बपत्राणि मधुकं नीलमुत्पलम्।
तैलमेभिर्विपक्वञ्च मुखपाकहरं परम्॥ १॥

हल्दी, नीम के पत्ते, मुलठी, नीला कमल इन से पकाया हुआ तिल का तेल मुखपाक के नाश करने में श्रेष्ठ है॥ १॥

अथ यष्टीमध्वादितैलम्—यष्टीमधुपलमेकं त्रिंशन्नीलोत्पलस्य तैलस्य।
प्रस्थं तद्द्विगुणपयो विधिना पक्वं तु नस्येन॥१॥

मुलठी १ पल लें, नीलाकमल ३० पल लें। तेल १ प्रस्थ लें, दूध दो प्रस्थ लें। जल ४ प्रस्थ लें। सब को विधिपूर्वक एकत्र कर के तेल पका लेवें॥ १॥

निशि बदनस्य स्रावं क्षपयति गात्रस्य दोषसंघातम्।
वपुःस्वर्णत्वमवश्यं क्रमशोऽभ्यङ्गेन जन्तूनाम्॥ २॥

इस तेल की नस्य रात को लेवें। इस से मुंह का बहना अर्थात् लारें टपकना दूर होता है, गात्र अर्थात् मुख के अनेक दोषों को नाश करता है। यदि इस की नित्य मालिश की जाये तो क्रम से शरीर स्वर्ण सा चमकदार हो जाता है॥ २॥

अथ खादिरादिगुटिका—खदिरस्य तुलां तोयद्रोणे पक्त्वाऽष्टशेषिते।
जातीकोशेन्दुपूगैश्च चातुर्जातमृगाण्डजैः॥ १॥

खैर की छाल एक सौ पल लेवें, एक द्रोण जल डालकर पकावें। आठवां भाग शेष रहने पर उतार लेवें और छान लेवें। फिर जावित्री, कपूर, सुपारी, दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, कस्तूरी॥ १॥

पृथक्कर्षमितैः पिष्टैर्मेलयित्वा चणोपमाम्।
गुटीं कृत्वा मुखे धार्या सा निहन्त्यखिलान्गदान्॥
जिह्वौष्ठदन्तवदनगलतालुसमुद्भवान्॥ २॥

इन में से प्रत्येक द्रव्य एक २ कर्ष लेकर पीसले। फिर इस चूर्ण में वही खैर का क्वाथ गाढा कर के डाल देवे और चने के समान खरल कर के गोली बना लेवे। इस गोली को मुख में धारण करने से सभी प्रकार के मुख के रोग नष्ट होते हैं। जिह्वा, ओष्ठ, दांत, मुंह, गला तथा तालु के सभी रोग नष्ट होते हैं॥२

अन्यच्च—तुल्यं खदिरसारस्य तेषां चूर्णं विनिक्षिपेत्।
जातीकङ्कोलकर्पूरक्रमुकाणां विचक्षणः॥
गुटिकास्तु प्रकर्तव्या मुखे स्थाप्याः सदैव हि॥ १॥

जावित्री, कङ्कोल, कपूर, सुपारी इन में से प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ भाग ले, सबके बराबर कत्थे का चूर्ण लेवे। इसमें जल डालकर चने के समान गोली बनाकर मुंह में धारण करावें। इससे सभी मुख के रोग नाश होते हैं। यह भी खदिरादि गुटिका कहाती है॥ १॥

ताम्बूलचूर्णेनदग्धमुखे—

ताम्बूलमध्यस्थितचूर्णकेन दग्धं मुखं यस्य भवेत्कथंचित्।
तैलेन गण्डूषमसौ विदध्यादम्लारनालेन पुनः पुनर्वा॥ २॥

जिस मनुष्य का मुंह पान में लगे हुए चूने के कारण जल जावे अर्थात् घाव युक्त हो जावे वह तेल से वा खट्टी कांजी से बार २ मुंह में गण्डूष धारण करे॥२॥

इति समस्तमुखरोगाणां चिकित्सा।

अथ पथ्यापथ्यविधिः-स्वेदो विरेको वमनं गण्डूषः प्रतिसारणम्।
कवलोऽसृक्स्रुतिर्नस्यं धूमः शस्त्राग्निकर्मणी॥ १॥

स्वेद देना, विरेचन देना, वमन देना, गण्डूष धारण करना, प्रतिसारण करना, कवल अर्थात् गण्डूष धारण करना, खून निकलवाना, नस्य देना, धूमपीना, शस्त्र से फाड़ना तथा अग्नि से जलाना॥ १॥

तृणधान्यं यवा मुद्गाः कुलत्था जाङ्गलो रसः।
बहुपत्री कारवेल्लं पटोलं बालमूलकम्॥ २॥

ये सभी क्रियायें। तथा तृणधान्य, नीवारादि, जौ, मूंग, कुलथ, जांगल जीवों का रस, मूसली, करेला, परवल, नरम मूलियां॥ २॥

कर्पूरनीरं ताम्बूलं तप्ताम्बु खदिरो घृतम्।
कटुतिक्तौ च वर्गोऽयं मित्रं स्यान्मुखरोगिणाम्॥ ३॥

कपूर का पानी, पान चबाना, गरम जल, खैर या कत्था सेवन करना, घी, कटुपदार्थ, तिक्त पदार्थ। ये सभी पदार्थ मुखरोगियों के लिये मित्र हैं अर्थात् पथ्य हैं ३

दन्तकाष्ठं स्नानमम्लं मत्स्यमानूपमामिषम्।

दधि क्षीरं गुडं माषं रूक्षान्नं कठिनाशनम् ॥ ४ ॥

परन्तु दातुन करना, स्नान करना, अम्लरस सेवन करना, मछली खाना, आनूपमांस खाना, दही, दूध, गुड, उड़द, रूखे अन्न सेवन करना, कठिन पदार्थ चबाकर खाना ॥ ४ ॥

अधोमुखेन शयनं गुर्वभिष्यन्दकारि च।
मुखरोगेषु सर्वेषु दिवानिद्रां च वर्जयेत् ॥ ५ ॥

नीचा मुंह करके सोना, भारी तथा अभिष्यन्दी पदार्थ सेवन करना, दिन में सोना ये सभी पदार्थ मुखरोगों में त्याग देवें। क्योंकि ये अपथ्य होते हैं ॥ ५ ॥

इति पथ्यापथ्यविधिः। इति मुखरोगाधिकारः।

इति हरिद्वारीयगुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेणायुर्वेदशास्त्रिणा लवपुरीयश्रीमद्दयानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीय वैद्यकविराजोपाधिधारिणा राजयक्ष्मचिकित्सकेन जलचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योगरत्नाकरस्य रत्नगर्भानाम्निटीकायां मुखरोगप्रकरणं समाप्तम्।

अथ कर्णरोगाधिकारः।

अवश्यायजलक्रीडाकर्णकण्डूयनैर्मरुत्।
मिथ्यायोगेन शस्त्रस्य कुपितोऽन्यैश्च कोपनैः ॥ १ ॥

ओस में रहने से, जल में क्रीड़ा करन से, कान को खुजलाने से, अथवा शस्त्र के मिथ्या योग से अथवा अन्य कुपित करने वाले कारणों से कुपित हुई २ वायु ॥ १

प्राप्य श्रोत्रशिराः कुर्याच्छूलं स्रोतसि वेगवान्।
ते वै कर्णगता रोगा अष्टाविंशतिरीरिताः ॥ २ ॥

कान की शिराओं में प्राप्त होकर कान के स्रोत में तीव्र शूल को उत्पन्न कर देती है। वे कान के रोग २८ प्रकार के होते हैं ॥ २ ॥

तत्र कर्णरोगाणां नामानि संख्यां चाऽऽह—

कर्णशूलं प्रणादश्च बाधिर्यं क्ष्वेड एव च।
कर्णस्रावः कर्णकण्डूः कर्णगूथस्तथैव च ॥ ३ ॥

कर्णशूल, प्रणाद, बाधिर्य, क्ष्वेड, कर्णस्राव, कर्णकण्डू, कर्णगूथ ॥ ३ ॥

प्रतिनाहो जन्तुकर्णो विद्रधिर्द्विविधस्तथा।
कर्णपाकः पूतिकर्णस्तथैवार्शश्चतुर्विधम् ॥ ४ ॥
तथाऽर्बुदं सप्तविधं शोफश्चापि चतुर्विधः।
एते कर्णगता रोगा अष्टाविंशतिरीरिताः ॥ ५ ॥

प्रतिनाह, जतुकर्ण, दो प्रकार की विद्रधि, कर्णपाक, पूतिकर्ण, चार प्रकार की अर्श, सात प्रकार के अर्बुद, चार प्रकार का शोथ ये सभी कान के रोग २८ होते हैं ५

तेषु कर्णशूलस्य संप्राप्तिपूर्वकं लक्षणमाह—

समीरणः श्रोत्रगतोऽन्यथा चरन्समन्ततः शूलमतीव कर्णयोः ।
करोति दोषैश्च यथास्वमावृतः स कर्णशूलः कथितो दुरासदः ॥१॥

कान के अन्दर के आकाश में विचरने वाला वायु प्रतिलोम हो करके कानों में चारों ओर तीव्र शूल कर देता है। उस वायु के साथ रक्त कफ तथा पित्तादि दोष भी मिलकर पृथक् २ अपने स्वभावानुसार लक्षण प्रगट कर देते हैं। इसे कर्णशूल रोग कहते हैं। यह रोग कष्टसाध्य है ॥ १ ॥

अथ मूर्च्छाद्युपद्रवसंसर्गात्कर्णशूलस्यासाध्यतां चाऽऽह—

मूर्च्छा दाहो ज्वरः कासः क्लमोऽथ वमथुस्तथा ।
उपद्रवाः कर्णशूले भवन्त्येते मरिष्यतः ॥ २ ॥

मूर्च्छा, दाह, ज्वर, कास, क्लांति तथा वमन ये सभी उपद्रव कर्णशूल में तब हो जाते हैं जब रोगी ने मरना होता है ॥ २ ॥

अथ कर्णनादस्य लक्षणमाह—

कर्णस्रोतःस्थिते वाते शृणोति विविधान्स्वरान् ।
भेरीमृदङ्गशङ्खानां कर्णनादः स उच्यते ॥ ३ ॥

जब कर्णस्रोत में विविध प्रकार से वायु स्थित होता है तब उस के विविध प्रकार से ताडित होने से कानों में विविध प्रकार के स्वर उत्पन्न होजाते हैं। उस में ऐसा प्रतीत होता है जैसा भेरी बज रही हो, मृदङ्ग बज रहा हो या शंख बज रहा हो, इस रोग का नाम कर्णनाद है। (भेरी आदि के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार के शब्द होते रहते हैं। विदेह ने लिखा भी है "शिरोगतो यदावायुः श्रोत्रयोः प्रतिपद्यते। तदा तु विविधान शब्दान् समीरयति कर्णयोः। भृङ्गारकैश्चनादं वा मण्डूककाकयोस्तथा। तन्त्रीमृदङ्गशब्दं वा सामतूर्यस्वनं तथा ॥ गीताध्ययनवंशानां निर्घोषं क्ष्वेडनं तथा। अपामिव पतन्तीनां शकटस्येव गच्छतः ॥ श्वसतामिव सर्पाणां सदृशः श्रूयते स्वनः") ॥ ३ ॥

अथ बाधिर्यमाह—**यदा शब्दवहं वायुः स्रोत आवृत्य तिष्ठति ।**
शुद्धः श्लेष्मान्वितो वाऽपि बाधिर्यं तेन जायते ॥ ४ ॥

जब शब्द वहस्रोत को अर्थात् कान के अन्दर के आकाश को वायु घेरकर रहती है, वह वायु चाहे शुद्ध हो चाहे कफ से युक्त हो, और चाहे रक्तपित्त के आवरण से युक्त भी हो,तो इससे बाधिर्यरोग अर्थात् बहरापन उत्पन्न हो जाता है॥४

अथ कर्णक्ष्वेडमाह—**वायुः पित्तादिभिर्युक्तो वेणुघोषोपमं स्वनम् ।**
करोति कर्णयोः क्ष्वेडं कर्णक्ष्वेडः स उच्यते ॥ ५ ॥

जब कान में स्थित वायु पित्तादि से युक्त होकर बांसों के शब्द के समान शब्द करने लगे तब उसे कर्णक्ष्वेडरोग कहते हैं। (इस रोग में और कर्णनाद

रोग में यही अन्तर है कि कर्णनाद में नाना प्रकार के शब्द होते हैं और इस में बांसों के रगड़ने के समान विशेष शब्द होता है ॥ ५ ॥

अथ कर्णस्रावमाह—

शिरोभिघातादथवा निमज्जतो जले प्रपाकादथ वाऽपि विद्रधेः।
स्रवेद्धि पूयं श्रवणोऽनिलार्दितः स कर्णजः स्राव इति प्रकीर्तितः ॥६॥

सिर में चोट लगने से, जल में डूब जाने से, अथवा कान में उत्पन्न हुई २ विद्रधि के पक जाने से कान में से पीप बहती रहती है इसे कर्णजस्राव कहते हैं। यह वातजरोग होता है ॥ ६ ॥

अथ कर्णकण्डूमाह—**मारुतः कफसंयुक्तः कर्णे कण्डूं करोति हि ॥**

कफ से युक्त हुआ वायु कान में कण्डू अर्थात् खुजली करता है। इसे कर्णकण्डूरोग कहते हैं ॥

अथ कर्णगूथमाह—**पित्तोष्मशोषितः श्लेष्मा कुरुते कर्णगूथकम् ॥ ७ ॥**

पित्त की गरमी से सुखाया हुआ कफ कर्णगूथरोग को उत्पन्न कर देता है ॥७॥

अथ प्रतिनाहमाह—

स कर्णगूथो द्रवतां यदा गतो विलायितो घ्राणमुखं प्रपद्यते।
तदा स कर्णप्रतिनाहसंज्ञितो भवेद्विकारः शिरसोऽर्धभेदकृत् ॥ ८ ॥

वही कर्णगूथ अर्थात् कान का मैल जब स्नेह तथा स्वेद के आने से विलीन होकर नाक के मार्ग से अथवा नाक तथा मुंह दोनों मार्गों से निकलता है, तब उसे प्रतिनाहरोग कहते हैं। इस में सिरका अर्धावभेदकरोग होजाता है ॥ ८ ॥

अथ कृमिकर्णमाह—

यदा तु मूर्च्छन्त्यथ वाऽपि जन्तवः सृजन्त्यपत्यान्यथ वाऽपि मक्षिकाः।
तद्व्यञ्जनत्वाच्छ्रवणे निरुच्यते भिषग्भिराद्यैः कृमिकर्णको गदः ॥ ९ ॥

जब कान के अन्दर सड़ांद उत्पन्न होकर कृमि उत्पन्न हो जायें अथवा मक्खियें अपने अण्डे बच्चे दे दें तो कृमियों के दिखाई देने से वैद्यों ने इसे कृमि कर्णरोग कहा है ॥ ९ ॥

(ये रोग त्रिदोषज है और बिना मांसादि के सड़ने के कृमि नहीं उत्पन्न होते। निमिः ने कहा है "श्लेष्मपित्तजलोन्मिश्रे कोथे शोणितमांसजे। जायन्ते जन्तवस्तत्र कृष्णास्ताम्राः सितारुणाः ॥ भक्षयन्तीव ते कर्णं कुर्वन्तो विविधा रुजः। कृमिकर्णं तु तं विद्यात्सन्निपातप्रकोपजम् ॥"

अथ पतङ्गादिषु कर्णप्रविष्टेषु लक्षणमाह—

पतङ्गाः शतपद्यश्च कर्णस्रोतः प्रविश्य हि।
अरतिं व्याकुलत्वं च भृशं कुर्वन्ति वेदनाम् ॥ १० ॥

पतङ्ग तथा शतपदी अर्थात् अग्निप्रकृतिक कीट वा कानखजूरे कान में घुस

कर मनुष्य को बेचैन तथा व्याकुल कर देते हैं तथा अत्यन्त वेदना करते हैं ॥१०॥

कर्णौ निस्तुद्यते तस्य तथा फरफरायते।
कीटे चरति रुक्तीव्रा निष्पन्दे मन्दवेदना ॥ ११ ॥

उस मनुष्य का कान दुखता है तथा फड़फड़ाता है। जब कीड़ा चलता है तो तीव्र पीड़ा होती है, जब कीड़ा नहीं चलता तब मन्द वेदना होती है ॥११॥

अथ द्विविधं कर्णविद्रधिमाह—

क्षताभिघातप्रभवस्तु विद्रधिर्भवेत्तथा दोषकृतोऽपरः पुनः।
स रक्तपीतारुणमस्रमास्रवेत्प्रतोदधूमायनदाहचोषवान् ॥ १२ ॥

एक तो क्षत से वा चोटादि लगने से उत्पन्न हुई २ विद्रधि होती है, दूसरी वातादि दोषों से उत्पन्न विद्रधि होती है। उस क्षतजविद्रधि में से लाल पीला गुलाबी स्राव निकलता है, तथा शूल, धुएंवाली वमन, दाह तथा चोष अर्थात् चूसने जैसी पीड़ा होती है। तथा दोषजविद्रधि के लक्षण उन २ दोषों के लक्षणों वाली विद्रधि के समान होते हैं ॥ १२ ॥

अथ कर्णपाकमाह—**कर्णपाकस्तु पित्तेन कोथविक्लेदकृद्भवेत् ॥**

पित्त से कर्णपाक रोग होता है, उसमें कोथ अर्थात् सडांद उत्पन्न हो जाती है, विक्लेद अर्थात् आर्द्रता उत्पन्न हो जाती है।

अथ पूतिकर्णमाह—**कर्णविद्रधिपाकाद्वा जायते चाम्बुपूरणात्।**
पूयं स्रवति वा पूति स ज्ञेयः पूतिकर्णकः ॥ १३ ॥

कान की विद्रधि के पक जाने से, अथवा कान में पानी भर जाने से दुर्गन्धित पीप कान से निकलता रहता है इस रोग को पूतिकर्णक कहते हैं ॥ १३ ॥

अथ कर्णगतानां शोथार्बुदार्शसां लक्षणान्याह—

कर्णशोथार्बुदार्शांसि जानीयादुक्तलक्षणैः ॥ १४ ॥

कर्णशोथ, कर्णार्बुद तथा कर्णार्श इनके लक्षण पूर्व कहे हुए लक्षणों से जानने चाहियें। वात, पित्त, कफ तथा रक्त से हुए २ कर्णशोथ चार प्रकार के होते हैं। वात, पित्त, कफ, रक्त, मांस, मेद तथा सिरा इनसे उत्पन्न हुए २ कर्ण के अर्बुद सात प्रकार के होते हैं। तथा वातज, पित्तज, कफज तथा रक्तज कर्णार्श भी चार प्रकार के होते हैं ॥ १४ ॥

इदानीं चरकोक्तं कर्णरोगचतुष्टयं वातपित्तकफसंनिपातकृतमाह—

नादोऽतिरुक्कर्णमलस्य शोषः स्रावस्तनुश्चाश्रवणं च वातात्।
शोथः सरागो दरणं विदाहः सपूतिपीतस्रवणं च पित्तात् ॥ १५ ॥

वात से हुए २ कान के रोगों में नाद होता रहता है, अत्यन्त पीड़ा होती है, कान का मैल सूख जाता है, थोड़ा २ स्राव होता है तथा शब्द सुनाई नहीं देता है। पित्त से उत्पन्न हुए २ कर्णरोग में शोथ होता है, लाल रंग होता है, फट

जाता है, दाह होता है, दुर्गन्धित पीला स्राव होता है ॥ १५ ॥

वैश्रुत्यकण्डूस्थिरशोथशुक्लस्निग्धस्रुतिः स्वल्परुजः कफाच्च ।

सर्वाणि रूपाणि च संनिपातात्स्रावश्च तत्राधिकदोषवर्णः ॥ १६ ॥

कफसे उत्पन्न हुए २ कान के रोग में विरुद्ध सुनाई देता है,खुजली होती है, स्थिर शोथ होता है, श्वेत रंग का तथा चिकना स्राव होता है तथा थोड़ी २ पीड़ा भी होती रहती है। सन्निपात से सभी रूप अर्थात् श्वेत पीला लाल रंग होते हैं तथा वातादि दोषों के रंगवाला अधिक स्राव होता रहता है ॥१६॥ इति कर्णरोगानिदानम्।

अथ कर्णपालीरोगनिदानम् ।

तत्र परिपोटलक्षणमाह—**सौकुमार्याच्चिरोत्सृष्टे सहसैवातिवर्धिते ।**

कर्णपाल्यां भवेच्छोथः सरुजः परिपोटवान् ॥१॥

कृष्णारुणनिभः स्तब्धः स वातात्परिपोटकः ॥

सुकुमारता के कारण देर तक उपेक्षा करने से और फिर एकदम कान को अत्यन्त बढ़ाने से कर्णपाली में सूजन हो जाती है। उस सूजन में शूल भी होता है तथा कुछ त्वचा भी फट जाती है ॥१। यह परिपोटकरोग काला तथा लाल रंग का सा हो तो इसे वातिक समझना चाहिये।

अथोत्पातमाह—**गुर्वाभरणसंयोगात्ताडनाद्धर्षणादपि ॥ २ ॥**

भारी २ आभूषण कानों में पहनने से, मारने से तथा खींचने तथा रगड़ने आदि से ॥ २ ॥

शोथः पाल्यां भवेच्छ्यावो दाहपाकरुजान्वितः ।

रक्तो वा रक्तपित्ताभ्यामुत्पातः स गदो मतः ॥ ३ ॥

कर्णपाली में सांवले रंग का शोथ हो जाता है, उसमें दाह, पाक तथा पीड़ा होती है। रक्तपित्त से हो तो उसकी सोजन का रंग लाल होता है। उसे उत्पात रोग कहते हैं ॥ ३ ॥

अथोन्मन्थकमाह—**कर्णं बलाद्वर्धयतः पाल्यां वायुः प्रकुप्यति ।**

कफं संगृह्य कुरुते शोथं स्तब्धमवेदनम् ॥

उन्मन्थकः सकण्डूको विकारः कफवातजः ॥ ४ ॥

बलपूर्वक कान को खींच २ के बढ़ाने से कर्णपाली में वायु प्रकुपित हो जाता है,वह वायु कफ से मिलकर कर्णपालीमें शोथ उत्पन्न कर देता है। वह शोथ स्तब्ध अर्थात् कठिन तथा वेदनारहित होता है। उसमें खुजली होती रहती है। यह उन्मन्थकरोग कहाता है, और कफवात से उत्पन्न होता है ॥ ४ ॥

अथ दुःखवर्धनमाह—**संवर्ध्यमाने दुर्विद्धे कण्डूदाहरुजान्वितः ।**

शोथो भवति पाकश्च त्रिदोषो दुखवर्धनः ॥ ५ ॥

दैवकृत छिद्र के अतिरिक्त अन्य स्थान में कान को बींधकर फिर खींचकर

बढायें तो खुजली, दाह तथा शूल से युक्त सूजन उत्पन्न हो जाती है, तथा पाक उत्पन्न होता है। इसे दुःखवर्धन रोग कहते हैं ॥ ५ ॥

अथ परिलेहिनमाह—**कफासृक्कृमयः क्रुद्धाः सर्षपाभा विसर्पिणः।**
कुर्वन्ति पिटिकाः पाल्यां कण्डूदाहरुजान्विताः ॥६॥

सरसों के बराबर कीड़े और कफ तथा रक्त बिगड़कर कर्णपाली में पिड़िकाओं अर्थात् फुंसियों को उत्पन्न कर देते हैं। उनमें दाह कण्डू तथा शूल उत्पन्न होजाता है।

कफासृक्कृमिसंभूतः स विसर्पन्नितस्ततः।
विलिह्यात्सकलां पालीं परिलेही च स स्मृतः ॥ ७ ॥

वे कफ रक्त तथा क्रिमियों से उत्पन्न हुई २ पिड़िकायें इधर उधर फैलती जाती हैं। और सारी कर्णपाली को चाटकर मांसरहित कर देती हैं। इस रोग का नाम परिलेही है ॥ ७ ॥ इति कर्णरोगनिदानम्।

अथ कर्णरोगाणां चिकित्सा।

अथ कर्णपूरणविधिः—**स्वेदयेत्कर्णदेशं तु किंचिन्नुः पार्श्वशायिनः।**
मूत्रैः स्नेहै रसैः कोष्णैस्तच्च श्रोत्रं प्रपूरयेत् ॥ १ ॥

एक पासे सुलाकर मनुष्य के कान को स्वेदन करे। फिर गोमूत्र, स्नेहपदार्थ तथा औषधों के रसों को कोसा कर के कान में डाले ॥ १ ॥

कर्णं च पूरितं रक्षेच्छतं पञ्च शतानि च।
सहस्रं वाऽपि मात्राणां श्रोत्रकण्ठशिरोगदे ॥ २ ॥

कान को एक सौ मात्रा तक भरा रखे, कण्ठ के रोगों में पांच सौ मात्रा तक कान को भर रखे, और सिर के रोगों में १००० मात्रा तक कान को भर रखे ॥२॥

स्वजानुनः करावर्तं कुर्याच्छोटिकया युतम्।
एषा मात्रा भवेदेका सर्वत्रैवं विनिश्चयः ॥ ३ ॥

अपने घुटने के पास चुटकी बजाते हुए हाथ को ले जाये, इतने समय को एक मात्रा कहते हैं, ऐसा सर्वत्र समझना चाहिये ॥ ३ ॥

रसाद्यैः पूरणं कर्णे भोजनात्प्राक्प्रशस्यते।
तैलाद्यैः पूरणं कर्णे भास्करेऽस्तमुपागते ॥ ४ ॥

औषधों के स्वरस वा क्वाथ से कान को भरना हो तो भोजन से पहले भरे। तेल आदि से कान को पूरण करना हो तो सूर्य के छिपने पर करे ॥ ४ ॥

कर्णशूले कर्णनादे बाधिर्ये क्ष्वेड एव च।
चतुर्ष्वपि च रोगेषु सामान्यं भेषजं स्मृतम् ॥ ५ ॥

कर्णशूल, कर्णनाद, बाधिर्य तथा कर्णक्ष्वेडरोग इन चारों रोगों में सामान्य औषध करे ॥ ५ ॥

कर्णशूलचिकित्सा—**शृङ्गवेररसं क्षौद्रं सैन्धवं तैलमेव च।**

कटूष्णं कर्णयोर्धार्यमेतत्स्याद्वेदनापहम् ॥ ६ ॥

अदरक का रस, सेंधानमक, शहद तथा कड़वा गरम तेल कानों में डाले तो वेदना का नाश होता है ॥ ६ ॥

लशुनार्द्रकशिग्रूणां वारुण्या मूलकस्य च ।

कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कदुष्णः कर्णपूरणे ॥ ७ ॥

लसुन, अदरक, सुहांजना, इन्द्रायण की जड़ तथा केले के तने का स्वरस, इन में से किसी एक का स्वरस गरम कर के कानों में डालें तो शूलादि का नाश होता है ॥ ७ ॥

अर्काङ्कुरादियोगः—अर्काङ्कुरानम्लपिष्टान्सतैलाँल्लवणान्वितान् ।

संनिदध्यात्सुधाकाण्डे कोरिते मृत्स्नयाऽऽवृते ॥ ८ ॥

आक के अंकुरों को कांजी में पीसकर सरसों का तेल और लवण मिलाकर थोहर के डण्डे को एक ओर से काटकर उसमें भरदे और मिट्टी से बंद करके॥८॥

पुटपाकक्रियास्विन्नं पीडयेदारसागमात् ।

सुखोष्णं तद्रसं कर्णे प्रक्षिपेच्छूलशान्तये ॥ ९ ॥

पुटपाक क्रिया से स्वेदन कर के मिट्टी दूर कर के निचोड़े और रस निकाल लेवे। उस कोसे २ रस को कान में डाले तो शूल की शान्ति होती है ॥ ९ ॥

अर्कस्य पत्रं परिणामपीतमाज्येन लिप्तं शिखियोगतप्तम् ।

आपीड्य तस्याम्बु सुखोष्णमेव कर्णे निषिक्तं हरतेऽतिशूलम् १०॥

पीले २ आक के पत्तों को घी से चुपड़ कर आग पर तपावे। फिर उसका रस कोसा २ निचोड़ कर कान में भर देवे इस से अत्यधिक शूल भी नाश होता है॥

छागमूत्रयोगः—तीव्रशूलातुरे कर्णे सरागे क्लेदवाहिनि ।

छागमूत्रं प्रशंसन्ति कोष्णं सैन्धवसंयुतम् ॥ ११ ॥

तीव्र शूल से पीड़ित कान के रोग में जिस में से स्राव हो रहा हो तथा जो पक भी गया हो उस में कोसा २ सेंधानमक से युक्त बकरी का मूत्र डालना लाभ देता है ॥ ११ ॥

श्योणाकतैलम्—तैलं श्योनाकमूलेन मन्देऽग्नौ विधिना शृतम् ।

हरेदाशु त्रिदोषोत्थं कर्णशूलं प्रपूरणात् ॥ १२ ॥

श्योणाक की जड़ से मन्दाग्नि पर पकाया हुआ कड़वा तेल कान में डालने से त्रिदोषज कर्णशूल शीघ्र ही नष्ट होता है ॥ १२ ॥

हिङ्ग्वादितैलम्—हिङ्गुसैन्धवशुण्ठीभिस्तैलं सर्षपसंभवम् ।

विपक्वं हरतेऽवश्यं कर्णशूलं प्रपूरणात् ॥ १३ ॥

हींग, सेंधानमक, सोंठ इन का कल्क कर के सरसों के तेल में पकाकर कान में डालें तो कर्णशूल अवश्य नष्ट होजाता है ॥ १३ ॥

कर्णशूले कर्णनादे बाधिर्ये क्ष्वेड एव च ।
पूरणं कटुतैलेन हितं वातघ्नमौषधम् ॥ १४ ॥

कर्णशूल, कर्णनाद, बाधिर्य, क्ष्वेडरोग में वातनाशक औषधों के साथ कड़वे तैल को कान में डालने से ये रोग नाश होजाते हैं ॥ १४ ॥

अथापामार्गतैलम्— **अपामार्गक्षारजले तत्कृतकल्केन साधितं तिलजम् ।**
अपहरति कर्णनादं बाधिर्यं चापि पूरणतः ॥ १ ॥

अपामार्ग के क्षार के जल में तिल का तेल चौथाई भाग डालें तथा तेल से चौथाई भाग अपामार्ग का क्षार डालें । फिर तेल को पकालें । इस तेल को कान में डालने से कर्णनाद तथा बहरापन दूर होता है ॥ १ ॥

अथ बिल्वतैलम्—**गवां मूत्रेण बिल्वानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् ।**
सजलं च सदुग्धं च तद्बाधिर्यहरं परम् ॥ १ ॥

गौ के मूत्र से बिल के कच्चे फलों को पीसकर कल्क करे, उस से चौगुना तिल का तेल लें, तेल के समान दूध तथा जल डालें । इस को पकालें । इस तेल को कान में डालें तो बाधिर्यरोग का नाश होता है ॥ १ ॥

अथ चत्वारि तैलानि—**तैलं काञ्जिकबीजपूरकरसक्षौद्रैः समूत्रैः श्रुतं**
स्यात्क्षौद्रार्द्रकशिग्रुमूलकदलीकन्दद्रवैर्वा समम् ।
शुण्ठीतुम्बरुहिङ्गुभिः श्रुतमपि स्यात्कर्णशूलापहं
सिद्धं बिल्वगरेण साजपयसा मूत्रेण बाधिर्यजित् ॥ १ ॥

कांजी, बिजौरे नींबू का रस, शहद, गोमूत्र इन से पकाया हुआ तेल । अथवा शहद, अदरक का रस, सुहांजने की जड़ का रस, केले के कन्द का रस इन सब के स्वरस को तेल के समभाग लेकर तेल पकवें । सोंठ, तुम्बुरु अर्थात् तेजबल के फल, हींग इन सब के कल्क से तेल पकावें, बिल की गिरी को गोमूत्र में पीसकर कल्क करे और इस में तेल के समभाग बकरी का दूध मिलाकर पकावे । इन तैलों से बाधिर्यरोग दूर होता है ॥ १ ॥

अथ हिङ्ग्वादिक्षारतैलम्—

हिङ्ग्वब्ददारुमिसिमूलकभस्मभूर्ज-
त्वक्क्षारसिन्धुरुचकोद्भिदशिग्रुविश्वैः ।
सस्वर्जिकाबिडवचाञ्जनमातुलुङ्गै-
रम्भारसैः समधुसूक्तमिदं विपक्वम् ॥ १ ॥

हींग, मोथा, दारुहल्दी, सौंफ, मूली की भस्म, भोजपत्र, यवक्षार, सेंधानमक, रुचकनमक, उद्भिदनमक, सुहांजने की छाल, सोंठ, सज्जी, विड्लवण, बच, अंजन या रसौंत, बिजौरे नींबू का रस इन सबका कल्क करे । केले का स्वरस और मधुसूक्त तेल से चौगुना ले इन सबसे विधिपूर्वक तेल पाक करें ॥ १ ॥

तैलं प्रसिद्धमिति तच्छ्रवणामयघ्नं कर्णप्रणादबधिरत्वहरं नराणाम्।
भ्रूमस्तकश्रवणशष्कुलिकान्तरालशूलापहं चरकसुश्रुतपूजितं च ॥२॥

इस तेल को कान में डालें तो कान के रोग नष्ट होते हैं, कर्णप्रणाद, बाधिर्य रोग इनका नाश होता है। भौं, मस्तक, कानों की शष्कुली के अन्दर होने वाले सब प्रकार के शूलों को नाश करता है। यह तेल चरक तथा सुश्रुत ने भी अच्छा माना है ॥ २ ॥

अथ मधुसूक्तम्—जम्बीराणां फलरसः प्रस्थैकः कुडवोन्मितम्।
माक्षिकं तत्र दातव्यं पिप्पली च पलोन्मिता ॥ १ ॥

जम्बीरी नीबू का स्वरस एक प्रस्थ ले, शहद एक कुड़व डाले, पीपली का चूर्ण एक पल डाले ॥ १ ॥

घृतभाण्डे निधायैतद्धान्यराशौ विधारयेत्।
मासेन तज्जातरसं मधुसूक्तं प्रजायते ॥ २ ॥

इसे घी के चिकने पात्र में रखकर धान्यों की राशि में दबा देवे। एक महीने के बाद जब रस पैदा हो जावे तो खोलकर निकाल ले और छानकर रखे। इसे मधुसूक्त कहते हैं ॥ २ ॥ इति मधुसूक्तम्।

अथ दीपिकातैलम्–महतः पञ्चमूलस्य काण्डान्यष्टाङ्गुलानि च।
•क्षौमेणाऽऽवेष्ट्य संसिच्य तैलेनादीपयेत्ततः ॥ १ ॥

बिल, अरणी, गम्भारी, श्योणाक, पाटला इनकी आठ २ अंगुल लम्बी लकड़ियों को लेकर रेशमी वस्त्र से लपेटकर तेल से सींचकर आग से जला देवे १

यत्तैलं च्यवते तेभ्यः सुखोष्णं तेन पूरयेत्।
ज्ञेयं तद्दीपिकातैलं कुष्ठदेवतरोस्तथा ॥ २ ॥

उसके जलने से जो तेल टपके उस कोसे तेल से कानों को भरे, इसे दीपिका तेल कहते हैं। इसी प्रकार से कुष्ठ तथा देवदार का तेल भी निकाले यह कान में डाले२

अथ निर्गुण्ड्यादितैलम्—

निर्गुण्डिजातिरविभृङ्गरसोनरम्भाकार्पासशिग्रुसुरसार्द्रककारवेल्ल्यः।
एषां रसे तिलभवं सविषं सुकर्णबाधिर्यनादकृमिवेदनपूययुक्ते ॥ १ ॥

संभालु के पत्ते, चमेली के पत्ते, आक के पत्ते, भांगरा, लहसुन, केला, कपास सुहांजना, तुलसी, अदरक, करेला इन सबके क्वाथ वा स्वरसों में तिल का तेल, वत्सनाभ विष का कल्क डालकर पका लेवे। इससे बाधिर्य, कर्णनाद, कृमि, वेदना तथा पूययुक्त कान के रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथ नागरादितैलम्—

नागरसैन्धवमागधिमुस्ता हिङ्गुवचालशुनं तिलतैलम्।
अर्कसुपक्वपलाशरसेन कर्णरुजं बधिरं विनिहन्ति ॥ १ ॥

सोंठ, सेंधानमक, पीपली, मोथा, हींग, बच, लसुन इन सबके कल्क से तिल

का तेल चौगुना लेकर, आक के पके हुए पत्तों के स्वरस को तेल के समभाग लेकर तेल पका लेवे। इससे कान की पीड़ा तथा बधिरता नष्ट होती है ॥ १ ॥

अथ कर्णस्रावपूतिकर्णकृमिकर्णानां चिकित्सामाह—

कर्णस्रावे पूतिकर्णे तथैव कृमिकर्णके।
सामान्यं कर्म कुर्वीत योगान्वैशेषिकानपि ॥ १ ॥

कर्णस्राव, पूतिकर्ण तथा कृमिकर्ण में सामान्य चिकित्सा करनी चाहिये। परन्तु चिकित्सा के लिये विशेष योग भी लिखते हैं ॥ १ ॥

स्वर्जिकाचूर्णसंयुक्तं वीजपूररसं क्षिपेत्।
कर्णस्रावरुजादाहास्तेन नश्यन्त्यसंशयम् ॥ २ ॥

सज्जी के चूर्ण से मिलाकर बिजौरे नींबू का स्वरस कान में डाले तो इससे कर्णस्राव, कर्णशूल तथा कान का दाह निस्सन्देह नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

अथ समुद्रफेनचूर्णम्—**समुद्रफेनचूर्णं तु न्यस्तं श्रवणसंश्रये।**
पूयस्रावं व्रणं सान्द्रं हन्ति ध्वान्तमिवांशुमान् ॥१॥

समुद्रफेन का चूर्ण कान के छिद्र में डालने से पीप बहना, तथा बढ़े हुए व्रण भी ऐसे नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्य से अन्धकार का नाश होता है ॥ १ ॥

सर्जत्वगादियोगः-**सर्जत्वकचूर्णसंयुक्तः कार्पासीफलजो रसः।**
मधुसंमिश्रितः साधुः कर्णस्रावे प्रशस्यते ॥ २ ॥

सर्ज की छाल का चूर्ण अथवा राल का चूर्ण कपास के फल के रस से और शहद से मिलाकर कान में डालें तो कर्णस्राव रोग में लाभ होता है ॥ २ ॥

जम्ब्वाम्रपत्रयोगः—

जम्ब्वाम्रपत्रं तरुणं समांशं कपित्थकार्पासफलं च सान्द्रम्।
हृत्वा रसं तन्मधुना विमिश्रं स्रावापहं संप्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥
एतैः शृतं निम्बकरञ्जतैलं ससार्षपं स्रावहरं प्रदिष्टम् ॥ ३ ॥

जामुन तथा आम के कोमल २ पत्ते, कैथ का फल तथा कपास का भरा हुआ फल समभाग लेकर सब रस निकाल कर शहद मिलाकर कान में डालें तो कर्णस्राव को नष्ट करता है। इन्हीं जामुन आदि के पत्तों के स्वरस से नीम का तेल वा करंज का तेल पकाया जाय, या सरसों का तेल पकाया जाये तो स्राव को नष्ट करता है ॥ ३ ॥

अथ जम्ब्वाद्यं तैलं वृन्दात्—

आम्रजम्बूप्रवालानि मधुकस्य वटस्य च।
एभिस्तु साधितं तैलं पूतिकर्णगदं हरेत् ॥
जातिपत्ररसे तैलं विपक्वं पूतिकर्णजित् ॥ १ ॥

आम के तथा जामुन के कोमल पत्ते, मुलहठी तथा बड़ के कोमल पत्ते इनके क्वाथ वा स्वरस से पकाया हुआ तेल पूति कर्ण को नाश करता है। चमेली के

पत्तों के स्वरस में तेल पकालें तो भी पूतिकर्ण का नाश करता है ॥ १ ॥

अथ कर्णप्रक्षालने पञ्चकषायः-कर्णप्रक्षालने शस्तं कवोष्णं सुरभीजलम्।
पथ्यामलकमञ्जिष्ठालोध्रतिन्दुकवाथ वा ॥१॥

कान के धोने में गोमूत्र कोसा कर के प्रयुक्त करें तो लाभ देता है। हरड़, आंवला, मंजीठ, लोध, तिन्दुक इन का क्वाथ कर के कान को धोवे ॥ १ ॥

अन्यच—राजवृक्षादितोयेन सुरसादिजलेन वा।
कर्णप्रक्षालनं कुर्याच्चूर्णैरेतैस्तु पूरणम् ॥ १ ॥

राजवृक्षादि अर्थात् अम्लतास के क्वाथ से, सुरसादिगण के क्वाथ से कान को धोवे तथा इन्हीं के चूर्ण से कान को भरे ॥ १ ॥

अथ रसाञ्जनादियोगः—घृष्टं रसाञ्जनं नार्याः क्षीरेण क्षौद्रसंयुतम्।
प्रशस्यते चिरोत्थे तत्सास्रावे पूतिकर्णके ॥ १ ॥

स्त्री के दूध से रसौत को घिसकर शहद मिलाकर कान में डालें तो पुराने बहते हुए पूतिकर्णरोग में लाभ देता है ॥ १ ॥

अथ कुष्ठादितैलम्—कुष्ठं हिङ्गुवचादारुशताह्वाविश्वसैन्धवैः।
पूतिकर्णापहं तैलं बस्तमूत्रेण साधितम् ॥ १ ॥

कूठ, हींग, बच, दारुहल्दी, सौंफ, सोंठ, सेंधानमक इन का कल्क करे, इस से चौगुना सरसों का तेल लेवे तथा चौगुना बकरे का मूत्र डालकर तेल पका लेवे। इस से पूतिकर्णरोग की शान्ति होती है ॥ १ ॥

अथ शम्बूकतैलम्—शम्बूकस्य तु मांसेन कटुतैलं विपाचयेत्।
तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडी प्रशाम्यति ॥ १ ॥

शम्बूक या घोंघे के मांस से सरसों का तेल पका लेवे। उस के कान में डालने से कर्णनाडीरोग शान्त होता है ॥ १ ॥

अथ गन्धकतैलम्—

चूर्णेन गन्धकशिलारजनीभवेन मुष्ट्यंशकेन कटुतैलपलाष्टकं तु।
धत्तूरपत्ररसतुल्यमिदं विपक्वं नाडीं जयेच्चिरभवामपि कर्णजाताम् ॥१॥

गंधक, मनसिल, हल्दी इन में से प्रत्येक द्रव्य एक २ पल ले कर कल्क करे। कड़वा तेल ८ पल ले, धतूरे के पत्तों का स्वरस तेल के समान भाग डालकर तेल पकाले। इस से पुराना कर्णनाडीरोग भी नष्ट होता है ॥ १ ॥

कृमिकर्णचिकित्सा—कृमिकर्णविनाशाय कृमिघ्नीं कारयेत्क्रियाम्।
वार्ताकधूमश्च हितः सार्षपः स्नेह एव च ॥ २ ॥

कृमिकर्ण को नाश करने के लिये कृमिनाशक क्रिया करे। बैंगन का धुआं कान को देवे। तथा सरसों का तेल कान में डाले ॥ २ ॥

पूरितं हरितालेन गव्यमूत्रयुतेन च।
धूपने कर्णदौर्गन्ध्ये गुग्गुलुः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ३ ॥

गौ के मूत्र से युक्त हड़ताल से कान भरें तो कृमि कर्णरोग नष्ट होता हैं। कर्णदौर्गन्ध्य में गूगल का धूप देना श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥

अथ कृमिकर्णे योगचतुष्टयम्–सूर्यावर्तकस्वरसं रसं वा सिन्दुवारजम्।
लाङ्गलीमूलतोयं वा त्र्यूषणं वाऽपि चूर्णितम् ॥१॥

सूर्यमुखी का स्वरस, संभालु का स्वरस, लांगली की जड़ का स्वरस अथवा सोंठ, मिरच, पीपल का चूर्ण ॥ १ ॥

एते योगास्तु चत्वारः पूरणात्कृमिकर्णके।
कृमीन्निर्मूलयन्त्याशु शतपद्यस्रपादिकान् ॥ २ ॥

इन चारों में से प्रत्येक योग कान में डालने से कृमिकर्णकरोग के शतपदी अस्रपादिक आदि कीड़े शीघ्र ही नष्ट होजाते हैं ॥ २ ॥

अथ गोमक्षिकायां योगः–दन्तेन चर्वयेन्मूलं नन्द्यावर्तपलाशयोः।
तल्लालापूरिते कर्णे ध्रुवं गोमक्षिकां जयेत् ॥ १ ॥

कान में गोमक्षिका के प्रविष्ट होने पर तगर की जड़ तथा ढाक की जड़ को चबाकर उस की लार को कान में डालें तो गोमक्षिकारोग का नाश होता है ॥१॥

अथ कृमिकर्णे योगः–हलिरविभक्षिव्योषानेकीकृत्य प्रकल्पयेद्बद्ध्वा।
वसनान्तरे रसेन श्रवणे परिपूरयेद्युक्त्या ॥ १ ॥

लांगली, सूर्यमुखी, सोंठ, मिरच, पीपल इन सब को एकत्र कूटकर कपड़े में बांधकर कान में युक्ति से रस को निचोड़ें ॥ १ ॥

कर्णजलौका नियतं कृमिकीटपिपीलिकास्तथाऽन्येऽपि।
निपतन्ति निरवशेषाः कारण्डाश्चापि मुण्डस्थाः ॥ २ ॥

तो कान की जौंक या कानखजूरा, कृमि, कीट, पिपीलिका तथा अन्य सिर में या मस्तक में होनेवाले कारण्ड कृमि भी नष्ट होजाते हैं ॥२॥ इति वृन्दात् ॥

अथ कर्णकण्डूकर्णगूथप्रतिनाहकर्णविद्रधिकर्णपाकानां चिकित्सामाह–

स्नेहः स्वेदोऽथ वमनं धूमं मूर्ध्नि विरेचनम्।
विधिश्च कफहा सर्वः कर्णे कण्डूमतीष्यते ॥ १ ॥

कान में खुजली चलती हो तो स्नेह, स्वेद, वमन, धूम पिलाना, सिर का विरेचन देना तथा कफनाशक सभी विधि करनी चाहिये ॥ १ ॥

प्रक्लिद्य धीमांस्तैलेन प्रविलाप्य च शोधनम्।
कर्णगूथं तु मतिमान्भिषग्जह्याच्छलाकया ॥ २ ॥

विद्वान् मनुष्य कान में तेल डालकर मैल को गीला करे, शोधन करने के लिये सलाई से कान की मैल को निकाल लेवे। इस प्रकार कर्णगूथरोग में

लाभ होता है ॥ २ ॥

अथ कर्णप्रतीनाहे स्नेहस्वेदौ प्रयोजयेत् ।
ततो विरिक्तशिरसः क्रियां प्रोक्तां समाचरेत् ॥ ३ ॥

कर्णप्रतिनाह में स्नेह तथा स्वेद कान में देवें। फिर शिरोविरेचन देकर शेष क्रिया करे ॥ ३ ॥

विद्रधौ वा प्रकुर्वन्ति विद्रध्युक्तं चिकित्सितम् ।
कर्णपाकस्य भैषज्यं कुर्यादतिविसर्पवत् ॥ ४ ॥

कर्णविद्रधि में विद्रधि के समान चिकित्सा करे ॥

कर्णपाक की चिकित्सा अतिविसर्प के समान करे ॥ ४ ॥

अथ कर्णशोथकर्णार्शःकर्णार्बुदानां चिकित्सा—

चिकित्सा कर्णशोथानां तथा कर्णार्शसामपि ।
कर्णार्बुदानां कुर्वीत शोथार्शोर्बुदवद्भिषक् ॥ १ ॥

कर्णशोथ, कर्णार्बुद तथा कर्णार्श की चिकित्सा शोथ, अर्बुद तथा अर्श के समान ही करें ॥ १ ॥

अथ रास्नाद्यो गुग्गुलुः—

रास्नामृतैरण्डसुराह्वविश्वं तुल्यं पुरेणोपविमृश्य खादेत् ।
वातामयी कर्णशिरोगदी च नाडीव्रणी चापि भगंदरी च ॥ १ ॥

रास्ना, गिलोय, एरण्ड की जड़, देवदार, सोंठ प्रत्येक द्रव्य एक २ भाग लें, शुद्ध गूगल सबके समान भाग लेकर कूटकर खिलावें। तो वातरोगी, कर्णरोगी, शिरोरोगी, नाडीव्रणी तथा भगन्दररोगी सबके रोग नष्ट करने में यह योग उत्तम है ॥ १ ॥ इति कर्णरोगचिकित्सा।

अथ कर्णपालीविकाराणां चिकित्सा—

पालीसंशोषणे चिकित्सा—पालीसंशोषणे कुर्याद्वातकर्णरुजः क्रियाम् ।
स्वेदयेद्यत्नतस्तां तु स्विन्नां संवर्धयेत्तिलैः ॥ १ ॥

पाली के सूख जाने पर वातिक कर्णशूल के समान चिकित्सा करे। यत्न से कर्णपाली का स्वेदन करे और फिर तिलों को मलकर कर्णपाली को बढ़ावे ॥१॥

माहिषनवनीतयुतं सप्ताहं धान्यराशिपर्युषितम् ।
नवमुसलिकन्दचूर्णं वृद्धिकरं कर्णपालीनाम् ॥ २ ॥

नई मूसली के कन्द का चूर्ण भैंस के मक्खन से मिलाकर धान्यों के ढेर में एक सप्ताह तक रखे। इसे कान की पाली अर्थात् नीचे लटकने वाले कान के कोमल मांस पर मलें तो कर्णपाली लम्बी हो जाती है ॥ २ ॥

अथ शतावरीतैलम्—शतावरीवाजिगन्धापयस्यैरण्डबीजकैः ।
तैलं विपक्वं सक्षीरं पालीं संवर्धयेत्सुखम् ॥ १ ॥

शतावर, असगन्ध, क्षीरविदारी, एरण्ड के बीज इनके कल्क से तिल का तेल

चतुर्गुण दूध डालकर पका लें। इस तेल की मालिश से सुगमता से कर्णपाली लम्बी हो जाती हैं ॥ १ ॥

उत्पातचिकित्सा—**शीतैर्लेपैर्जलौकाभिरुत्पातं समुपाचरेत्।**

अथोन्मन्थे जीवनीयं तैलम्—**जीवन्त्याचाश्वगन्धार्कबाकुचीबीजसैन्धवैः॥१॥**

कर्णपाली के उत्पातरोग को शीतल लेप लगावें तथा जलौका से रक्त निकलवाकर अच्छा कर और जीवन्ती, असगन्ध, आक, बावची के बीज, सेंधानमक ॥ १ ॥

उन्मथे जीवनीयं तैलम्—

हालिनीसुरसाभ्यां च गोधाकङ्कवसान्वितम्।
तैलं विपक्कमभ्यङ्गादुन्मन्थं नाशयेद् ध्रुवम् ॥ २ ॥

लांगली विष तथा तुलसी इन सबका कल्क करके इनसे चौगुना तिल का तेल, गोह की चर्बी तथा चील की चर्बी तेल के समभाग डालकर तेल पका ले। यह तेल मालिश करने से कर्णपाली के उन्मन्थरोग को निश्चित नाश कर देता है २

दुःखवर्धनकचिकित्सा—**दुःखवर्धनकं सिक्त्वा जम्ब्वाम्राश्वत्थपत्रजैः।**
क्वाथैस्तैलेन सुस्निग्धं तच्चूर्णैश्चावधूलयेत् ॥३॥

दुःखवर्धनक रोग को जामुन, आम, पीपल इन सबके पत्तों के क्वाथ से धोवे, इनके तेल से स्निग्ध करे तथा इनही के चूर्ण से अवधूलन करे ॥ ३ ॥

परिलेहिनमाह—**बहुशो गोमयैस्तप्तं स्वेदितं परिलेहितम्।**
घनसारैः समालिम्पेदजामूत्रेण कल्कितैः ॥ ४ ॥

परिलेहित रोग में गोबर को तपाकर बार २ स्वेद देवे। फिर बकरी के मूत्र में कपूर को पीसकर कान के व्रण के ऊपर लगा देवे। ऐसा करने से परिलेहित रोग नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥ इति कर्णपालीरोगचिकित्सा।

अथ पथ्यापथ्यम्—**स्वेदो विरेको वमनं नस्यं धूमः शिराव्यधः।**
गोधूमाः शालयो मुद्गा यवाश्च प्रतनं हविः ॥ १ ॥

स्वेद देना, विरेचन देना, वमन देना, धुंआ पिलाना, शिराबेध करके रक्त निकलवाना। गेहूं, शाली चावल, मूंग, जौ, पुराना घी ॥ १ ॥

लावो मयूरो हरिणस्तित्तिरो वनकुक्कुटः।
पटोलं शिग्रु वार्ताकं सुनिषण्णं कठिल्लकम् ॥ २ ॥

लवा या बटेर, मोर, हिरण, तीतर, बन का कुक्कुड, परवल, सुहांजना, बेंगन सुनिषण्णक शाक, करेला ॥ २ ॥

रसायनानि सर्वाणि ब्रह्मचर्यमभाषणम्।
उपयुक्तं यथादोषमिदं कर्णामये हितम् ॥ ३ ॥
दन्तकाष्ठं शिरःस्नानं व्यायामं श्लेष्मलं गुरु।
कण्डूयनं तुषारं च कर्णरोगी परित्यजेत् ॥ ४ ॥

सभी रसायन औषध, ब्रह्मचर्य रखना, कम बोलना ये सभी बातें कर्णरोगों के दोषानुसार प्रयुक्त करने से कर्णरोगों में लाभ होता है, ये पथ्य हैं। परन्तु दातुन करना, सिर का स्नान, व्यायाम, कफकारक तथा भारी भोजन, खुजाना, ओस या बर्फ में रहना ये सभी बातें कान का रोगी त्याग देवे ॥ ४ ॥ इति कर्णरोगाधिकारः।

इति हरद्वारीयगुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेण, लवपुरीय श्रीमद्दयानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीय वैद्यकविराजोपाधिधारिणायुर्वेदशास्त्रिणा राजयक्ष्मचिकित्सकेन जलचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योगरत्नाकरस्य रत्नगर्भानाम्निटीकायां कर्णरोगचिकित्सा समाप्ता ॥

अथ नासारोगाधिकारः।

अवश्यायानिलरजोभाष्यातिस्वप्नजागरैः।
नीचात्युच्चोपधानेन पीतेनान्येन वारिणा ॥ १ ॥

ओस में रहने से, वायु में रहने से, धूल सूंघने से, भाषण से, अति सोने तथा अति जागने से; नीचे या ऊंचे तकिये पर सिर रखकर सोने से। अन्य प्रकार से जल पीने से अर्थात् अनुचित ढंग से पीने से ॥ १ ॥

अत्यम्बुपानरमणैश्छर्दिबाष्पग्रहादिभिः।
क्रुद्धा वीतोल्बणा दोषा नासायां स्त्यानतां गताः ॥ २ ॥

अत्यन्त जल पीने से, अत्यन्त मैथुन करने से, वमन तथा आंसुओं को रोक लेने से। क्रुद्ध हुए २ वातादिकदोष नासिका में बढकर नासारोगों को कर देते हैं ॥ २ ॥

तत्र नासारोगाणां नामानि संख्यां चाह—

आदौ च पीनसः प्रोक्तः पूतिनासस्ततः परम्।
नासापाकोऽत्र गणितः पूयशोणितमेव च ॥ ३ ॥
क्षवथुर्भ्रंशथुर्दीप्तः प्रतिनाहः परिस्रवः।
नासाशोषः प्रतिश्यायाः पञ्च सप्तार्बुदानि च ॥ ४ ॥

पीनस, पूतिनास, नासापाक, पूयशोणित, क्षवथु, भ्रंशथु, दीप्त, प्रतिनाह, परिस्रव, नासाशोष, पांच प्रतिश्याय, सात अर्बुद ॥ ४ ॥

चत्वार्यर्शांसि चत्वारः शोथाश्चत्वारि तानि च।
रक्तपित्तानि नासायां चतुस्त्रिंशद्गदाः स्मृताः ॥ ५ ॥

चार अर्श, चार शोथ, चार रक्तपित्त ये ३४ रोग नाक के होते हैं ॥ ५ ॥

तेषु पीनसस्य लक्षणमाह—

आनह्यते शुष्यति यस्य नासा प्रक्लेदमायाति च धूप्यते च।
न वेत्ति यो गन्धरसांश्च जन्तुर्जुष्टं व्यवस्येत्स तु पीनसेन ॥

तं चानिलश्लेष्मभवं विकारं ब्रूयात्प्रतिश्यायसमानलिङ्गम् ॥ ६ ॥

जिसकी नाक आनद्ध हो, शुष्क रहे, क्लेदवाली अर्थात् भीगी रहे तथा संताप को अनुभव करे। जिसे गन्ध प्रतीत न हो तथा रस भी प्रतीत न हो तो उसे पीनस कहते हैं। उसे वातकफ से हुआ २ रोग समझो, इसके लक्षण प्रतिश्याय के समान ही होते हैं ॥ ७ ॥

अथ पूतिनासमाह—

दोषैर्विदग्धैर्गलतालुमूलात्संदूषितो यस्य समीरणस्तु ॥
निरेति पूतिर्मुखनासिकाभ्यां तं पूतिनासं प्रवदन्ति रोगम् ॥ ७ ॥

कफ पित्त रक्त इन दोषों के विरुद्ध अम्लरस आदि सेवन करने के कारण विदग्ध हो जाने पर प्रकुपित हुआ २ वायु सड़कर तालु के मूल से उठकर मुख तथा नाक के द्वारों से निकलता है। इस रोग को पूतिनास या पूतिनस्य कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ नासापाकमाह—

घ्राणाश्रितं पित्तमरूंषि कुर्याद्यस्मिन्विकारे बलवांश्च पाकः।
तं नासिकापाक इति व्यवस्येद्विक्लेदकोथावथ वाऽपि यत्र ॥ ८ ॥

जिस रोग में नासिका में रहने वाला पित्त बिगड़कर नाक में फुंसियां उत्पन्न कर देवे तथा नाक बहुत पक जावे। उसमें आर्द्रता तथा सडांद भी हो जाये, उस रोग को नासापाक कहते हैं ॥ ८ ॥

अथ पूयरक्तमाह—

दोषैर्विदग्धैरथ वाऽपि जन्तोर्ललाटदेशेऽभिहतस्य तैस्तैः।
नासा स्रवेत्पूयमसृग्विमिश्रं तं पूयरक्तं प्रवदन्ति रोगम् ॥ ९ ॥

पित्त रक्तादि दोषों के विदग्ध होजाने पर, अथवा मस्तक पर डण्डा आदि के प्रहार से चोट लगने पर नाक में से खून से मिली हुई पीप निकलती है। इस रोग को पूयरक्तरोग कहते हैं ॥ ९ ॥

अथ क्षवथुमाह। तत्राऽऽदौ दोषजमाह—

घ्राणाश्रिते मर्मणि संप्रदुष्टो यस्यानिलो नासिकया निरेति।
कफानुयातो बहुशोऽथ शब्दस्तं रोगमाहुः क्षवथुं विधिज्ञाः ॥ १० ॥

नाक के मर्म में संप्रदुष्ट हुआ २ वायु जब कफ से मिलकर नाक से निकलता है और बहुत प्रकार का शब्द करता है तो इस रोग को छींक या क्षवथु कहते हैं ॥ १० ॥

अथाऽऽगन्तुजमाह—

तीक्ष्णोपयोगादतिजिघ्रतो वा भावान्कटूनर्कनिरीक्षणाद्वा।
सूत्रादिभिर्वा तरुणास्थिमर्मण्युद्घाटितेऽन्यः क्षवथुर्निरेति ॥ ११ ॥

तीक्ष्ण पदार्थ राई आदि के खाने से, कटु पदार्थों को अति सूंघने से,

अथवा सूर्य को देखनें से कफ विलीन होकर छींक या क्षवथु उत्पन्न होजाती है। तथा नाक की हड्डि के मर्म को सूत्र या किसी तिनके तन्तु आदि के लगाने से वा छीलने से छींक आती है ॥ ११ ॥

अथ भ्रंशथुमाह—

प्रभ्रश्यते नासिकया हि यस्य सान्द्रो विदग्धो लवणः कफस्तु ।
प्राक्संचितो मूर्धनि पित्ततप्तस्तं भ्रंशथुं रोगमुदाहरन्ति ॥ १२ ॥

जिस के सिर में पहले से इकठ्ठा हुआ कफ पित्त से संतप्त होकर बहता हुआ नाक के द्वार से गाढ़ा २ तथा विदग्ध हुआ २ लबण रसयुक्त अर्थात् नमकोन स्वाद का निकलता हो उसे भ्रंशथुरोग कहते हैं ॥ १२ ॥

अथ दीप्तमाह—

घ्राणे भृशं दाहसमन्विते तु विनिःसरेद्धूम इवेह वायुः ।
नासा प्रदीप्तेव च यस्य जन्तोर्व्याधिं तु तं दीप्तमुदाहरन्ति ॥ १३ ॥

नाक जब लगातार दाहयुक्त प्रतीत होवे, और नाक से जो वायु निकले वह धूंए के समान निकलती हो। नाक जलता हुआ सा प्रतीत होवे उसे दीप्त रोग कहते हैं ॥ १३ ॥

अथ प्रतिनाहमाह—

उच्छ्वासमार्गं तु कफः सवातो रुन्ध्यात्प्रतीनाहमुदाहरेत्तम् ।

कफ वात से युक्त होकर जब उच्छ्वास मार्ग को रोक लेवे तो प्रतीनाह रोग कहाता है ॥

अथ स्रावमाह—

घ्राणाद्घनः पीतसितस्तनुर्वा दोषः स्रवेत्स्रावमुदाहरेत्तम् ॥ १४ ॥

नाक से घना पीला श्वेत वा पतला २ दोष जब निकलता हो उस रोग को स्राव कहते हैं ॥ १४ ॥

अथ नासाशोषमाह—

घ्राणाश्रिते श्लेष्मणि मारुतेन पित्तेन गाढं परिशोषिते च ।
कृच्छ्राच्छ्वसेदूर्ध्वमधश्च जन्तुर्यस्मिन्सः नासापरिशोष उक्तः ॥१५॥

नाक में रहने वाला कफ जब वात से तथा पित्त से अधिक सुखा दिया गया हो। तब कठिनता से ऊपर नीचे का सांस लिया जाता है ऐसे रोग को नासा शोष कहते हैं ॥ १५ ॥

अथ प्रतिश्यायमाह । तस्य निदानं द्विविधम्—

एकं सद्योजनकं तद्बलवत्त्वेन चयं नापेक्षते ।

एक प्रतिश्याय तो सद्योजनक अर्थात् तत्क्षण उत्पन्न हो जाता है वह बलवान होने के कारण दोषों के चय या इकठ्ठा होने की अपेक्षा नहीं करता ॥

यत उक्तम्—न केवलं चयं प्राप्य दोषाः कुप्यन्ति देहिनाम्।
अन्यदाऽपि हि कुप्यन्ति हेतुबाहुल्यतो रणात्॥ १॥

वातादिकदोष केवल संचय को प्राप्त हो कर ही प्रकुपित नहीं होते, अन्य अनेक हेतुओं से भी कुपित हो जाते हैं॥ १॥

चयादिक्रमशोषजनकमपरम्। तथा च—

संचयः संचयात्प्रकोपः प्रकोपात्प्रसरः
प्रसरात्स्थानसंश्रयस्ततो व्यक्तिस्ततो भेद इति।

पहले दोषों का संचय होता है, संचय होने से प्रकोप होता है, प्रकोप से प्रसर अर्थात् दोषों का विस्तार या फैलाव होता है, प्रसर से स्थानसंश्रय अर्थात् एक स्थान में दोष आश्रय कर लेते हैं। दोषसंश्रय से व्यक्ति अर्थात् रोग प्रकट होता है। फिर व्यक्ति से भेद होता है अर्थात् रोग भिन्न २ रूपों या लक्षणों से युक्त होकर पृथक् २ नामों को प्राप्त होता है॥

तत्र प्रतिश्यायस्य सद्योजनकनिदानपूर्विकां संप्राप्तिमाह—

संधारणाजीर्णरजोतिभाष्यक्रोधर्तुवैषम्यशिरोभितापैः।
प्रजागरातिस्वप्नवाम्बुशीतावश्यायकैर्मैथुनबाष्पशोकैः॥ १६॥

मलमूत्रादि के वेग धारण करने से, अजीर्ण से, धूल के नाक में जाने से, अति बोलने से, क्रोध से, ऋतु की विषमता से, शिरोभिताप अर्थात् शिर को कष्ट देने वाले धूंआ आदि नाक में जाने से, जागने से, सोने से, नये जल के पीने से, शीत लगने से, ओस लगने से, मैथुन करने से, रोने से तथा शोक से॥ १६॥

संस्त्यानदोषे शिरसि प्रवृद्धो वायुः प्रतिश्यायमुदीरयेत्तु॥

सिर में कफ के भरा होने से, वायु प्रवृद्ध होकर प्रतिश्याय को करदेता है॥

चयादिक्रमशो जनकनिदानपूर्विकां संप्राप्तिमाह—

चयं गता मूर्धनि मारुतादयः पृथक्समस्ताश्च तथैव शोणितम्।
प्रकुप्यमाणा विविधैः प्रकोपनैस्ततः प्रतिश्यायकरा भवन्ति हि॥१७॥

सिर में वात, पित्त, कफ, पृथक् २ तथा समस्त अर्थात् इकट्ठे मिलकर त्रिदोष, तथा रक्त ये पांचों ही सिर में इकट्ठे हुए २ अपने २ कोप के कारणों से कुपित हुए २ प्रतिश्याय रोग को कर देते हैं॥ १७॥

अथ पूर्वरूपमाह—

क्षवप्रवृत्तिः शिरसोऽभिपूर्णता स्तम्भोऽङ्गमर्दः परिहृष्टरोमता।
उपद्रवाश्चाप्यपरे पृथग्विधा नृणां प्रतिश्यायपुरःसराः स्मृताः॥१८॥

इसमें छींकें आती हैं, सिर कफ से पूर्ण हो जाता है, शरीर में स्तम्भ हो जाता है, अङ्गड़ाई टूटतीं हैं, रोमहर्ष होता है। इस के अतिरिक्त और भी अनेक उपद्रव प्रतिश्याय से पूर्व होते हैं। ये प्रतिश्याय के पूर्वरूप कहाते है॥ १८॥

अथ वातिकस्य प्रतिश्यायस्य लक्षणमाह—

आनद्धा पिहिता नासा तनुस्रावप्रसेकिनी ।
गलताल्वोष्ठशोषश्च निस्तोदः शङ्खयोस्तथा ॥ १९ ॥
भवेत्स्वरोपघातश्च प्रतिश्यायेऽनिलात्मके ॥

जिसमें नाक जैसे बंधी हुई हो वा आध्मान से पूरित हो, रुकी हुई हो, पतला तथा थोड़ा स्राव निकलता हो । गले, तालु तथा ओष्ठ सूखते हों शंखस्थानों में पीड़ा होती हो ॥ १९ ॥ तथा स्वर का उपघात हो जाये अर्थात् स्वर बैठ जाये ये सब लक्षण वातिक प्रतिश्याय में होते हैं ॥

अथ पैत्तिकमाह—**उष्णः सपीतकः स्रावो घ्राणात्स्रवति पैत्तिके ॥ २० ॥**

गरम २ पीलास्राव नाक से पैत्तिक प्रतिश्याय रोग में बहता है ॥ २० ॥

कृशोऽति पांडुसंतप्तो भवेदुष्णाभिपीडितः ।
नासया तु सधूमाग्निं वमतीव स मानवः ॥ २१ ॥

इस पैत्तिक प्रतिश्याय का रोगी कृश अर्थात् पतला हो जाता है, भूरे रंग का सा हो जाता है अथवा अति पाण्डुरंग का हो जाता है । रोगी संतप्त तथा उष्णता से पीड़ित होता है । तथा नाक से धुएं सहित अग्नि की मानों वमन करता है २१

अथ श्लैष्मिकमाह—**घ्राणात्कफकृतः श्वेतः कफः शीतः स्रवेद्बहुः ।**
शुक्लावभासः शूनाक्षो भवेद्गुरुशिरो नरः ॥
गलताल्वोष्ठशिरसां कण्डूभिरातिपीडितः ॥ २२ ॥

कफज प्रतिश्याय में नाक से श्वेत रंग का, ठण्डा, बहुत सा कफ निकलता रहता है । वह मनुष्य श्वेत रंग का, सूजी हुई आंखों वाला, भारी सिरवाला हो जाता है, गले तालु, ओष्ठ तथा सिर से अति पीड़ित होता है ॥ २२ ॥

अथ सांनिपातिकमाह—**भूत्वा भूत्वा प्रतिश्यायो योऽकस्मात्संनिवर्तते ।**
संपक्वो वाऽप्यपक्वो वा स सर्वप्रभवः स्मृतः ॥२३॥

जब प्रतिश्याय या जुकाम बार २ होकर अकस्मात् ही हट जाता हो । वह पका हुआ हो वा न पका हुआ हो, उसे संनिपातज प्रतिश्याय कहते हैं ॥२३॥

अथ दुष्टप्रतिश्यायलिङ्गमाह—**प्रक्लिद्यते मुहुर्नासा पुनश्च परिशुष्यति ।**
पुनरानह्यते वाऽपि पुनर्विव्रियते तथा ॥ २४ ॥

जिस प्रतिश्याय में बार २ नाक गीली हो जाये और बार २ सूख जाये । बार २ अन्दर से फूलकर बन्द हो जाये तथा फिर खुल जाये ॥ २४ ॥

निःश्वासो वाति दुर्गन्धो नरो गन्धान्न वेत्ति च ।
एवं दुष्टप्रतिश्यायं जानीयात्कृच्छ्रसाधनम् ॥ २५ ॥

अति दुर्गन्धित निश्वास लेवे, तथा गन्ध की प्रतीति न होती हो । ऐसे लक्षण

हों तो उसे दुष्ट प्रतिश्याय समझो। यह कष्टसाध्य होता है ॥ २५ ॥

अथ रक्तजमाह—रक्तजे तु प्रतिश्याये रक्तस्रावः प्रवर्तते।

पित्तप्रतिश्यायकृतैर्लिङ्गैश्चापिसमन्वितः ॥ २६ ॥

रक्तज प्रतिश्याय में नाक से रक्त निकलता है। पित्तज प्रतिश्याय के सभी लक्षण उस में होते हैं ॥ २६ ॥

ताम्राक्षश्च भवेज्जन्तुरुरोघातप्रपीडितः।

दुर्गन्धोच्छ्वासवक्त्रश्च गन्धानपि न वेत्ति सः ॥ २७ ॥

इसमें प्राणी की आंखें तांबे के रंग की सी हो जाती हैं तथा उरोघात के लक्षणों से रोगी पीड़ित रहता है। उसके सांस से तथा मुंह से दुर्गन्ध निकलती है। और सुगन्ध वा दुर्गन्ध की भी प्रतीति नहीं होती है। (उरोघात के लक्षण अन्यत्र देखकर लिखते हैं "उरः क्षतमुरः स्तम्भः पूतिकर्णकफो रसः। सकासः सज्वरो ज्ञेय उरोघात सपीनसः" ऐसे लक्षण रक्तज प्रतिश्याय में भी हो जाते हैं) २७

अथासाध्या भवन्तीत्याह—सर्व एव प्रतिश्याया नरस्याप्रतिकारिणः।

दुष्टतां यान्ति कालेन तदाऽसाध्या भवन्ति च ॥२८

सभी प्रकार के प्रतिश्याय उपाय न करने से देर के बाद दुष्ट होकर अर्थात् बिगड़ कर असाध्य हो जाते हैं ॥ २८ ॥

अथ प्रतिश्यायेषु कृमयोऽपि भवन्तीत्याह—

मूर्च्छन्ति कृमयश्चात्र श्वेताः स्निग्धास्तथाऽणवः।

कृमिजो यः शिरोरोगस्तुल्यं तेनात्र लक्षणम् ॥ २९ ॥

इन प्रतिश्यायों में अथवा केवल रक्तज प्रतिश्याय में कृमि भी उत्पन्न हो जाते हैं जो श्वेत रंग के स्निग्ध तथा अणु होते हैं। कृमिज शिरोरोग के समान ही इस के लक्षण होते हैं (कृमिज शिरोरोग के लक्षण "निस्तुद्यते यस्य शिरोऽतिमात्रं" इत्यादि आगे लिखेंगे ॥ २९ ॥

अथ प्रतिश्याया अपरानपि विकारान्कुर्वन्ति तानाह—

बाधिर्यमान्ध्यमघ्रत्वं घोरांश्च नयनामयान्।

शोफाग्निसादकासांश्च वृद्धाः कुर्वन्ति पीनसाः ॥ ३० ॥

पीनसमारभ्य प्रतिश्यायपर्यन्तं पञ्चदशोक्ताः।

पीनस या प्रतिश्याय बढ़कर अन्यान्य रोगों को भी कर देते हैं। बाधिर्य अर्थात् बहरापन, आन्ध्य अर्थात् अन्धापन, गन्ध शक्ति का नाश, घोर नेत्र रोग, शोथ, अग्निमांद्य तथा खांसी ये सभी प्रतिश्याय के बिगड़ने से हो जाते हैं ॥३०॥ पीनसरोग से लेकर प्रतिश्याय रोग तक १५ रोग हुए ॥

अपरांश्चतुस्त्रिंशत्संख्यापूरणायाऽऽह—

अर्बुदं सप्तधा शोथाश्चत्वारोऽर्शश्चतुर्विधम्।

चतुर्विधं रक्तपित्तमुक्तं घ्राणेऽपि तद्विदुः ॥ ३१ ॥

सात प्रकार के अर्बुद, चार प्रकार के शोथ, चार प्रकार के रक्तपित्त, चार प्रकार के अर्श जैसे पहले कहे हैं वैसे नासिकारोग में भी समझें ॥ ३१ ॥

अथ चिकित्साभेदात्पीनसस्याऽऽमस्य लक्षणमाह—

शिरोगुरुत्वमरुचिर्नासास्रावस्तनुस्वरः।
क्षामः ष्ठीवति चाभीक्ष्णमामपीनसलक्षणम् ॥ ३२ ॥

सिर का भारी रहना, अरुचि होना, नाक बहना, पतला तथा छोटा स्वर हो जाना। रोगी का पतला हो जाना। तथा बार २ थूकना। ये सभी लक्षण पीनस क आमावस्था के हैं ॥ ३२ ॥

अथ पक्वपीनसस्य लक्षणमाह—

आमलिङ्गान्वितः श्लेष्मा घनः खेषु निमज्जति।
स्वरवर्णविशुद्धिश्च पक्वपीनसलक्षणम् ॥ ३३ ॥

जब आम अर्थात् अपक्व लक्षणों वाला कफ घना हो जाता है तथा इन्द्रियों में में ही लुप्त हो जाता है। स्वर तथा रंग की विशुद्धि हो जाती है। तो ये सब लक्षण पक्वपीनस अर्थात् जुकाम के पक जाने के हैं ॥ ३३ ॥ इति नासारोगनिदानम्।

अथ नासारोगाणां चिकित्सा।

तत्राऽऽदौ पीनसस्य चिकित्सामाह—

सर्वेषु पीनसेष्वादौ निवातागारगो भवेत्।
शिरसोऽऽभ्यञ्जनैः स्वेदैर्नस्यैर्मन्दोष्णभोजनैः ॥
वमनैर्घृतपानैश्च तान्यथास्वमुपाचरेत् ॥ १ ॥

सभी पीनस रोगों में प्रायः निवात स्थान में रहे। अर्थात् जिस मकान के कमरे में वायु तेजी से आवे जावे नहीं अपितु मन्द २ आती हो और वायुमण्डल शान्त सम अवस्था में हो। फिर सिर को तैलादि की मालिश करे, स्वेद देवे, नस्य देवे, थोड़ा तथा गरम भोजन करने देवे। वमन देवे तथा घी पिलाकर दोषानुसार चिकित्सा करे ॥ १ ॥

सर्जादिकषायघृते च—**सर्जार्जुनोदुम्बरवत्सकानां त्वचाकषायैः परिधावनेन। कषायकल्कैरपि चैभिरेव सिद्धं घृतं घ्राणविपाकनाशि २**

चील वृक्ष की छाल, अर्जुन की छाल, गूलर तथा कुटज की छाल, इन सब के क्वाथ से नाक को धोवें तथा इनके ही क्वाथ और कल्क से घी को पकालें। इस घी को लगाने से नासिका पाक अर्थात् नाक का पकना दूर होता है ॥ २ ॥

इति सर्जकादिकषायो घृतं च।

अथ मरीचादियोगः—**सर्वेषु सर्वकालं पीनसरोगेषु जातमात्रेषु। मरिचं गुडेन दध्ना भुञ्जीत नरः सुखं लभते ॥ १ ॥**

सभी पीनसरोगों के उत्पन्न होते ही सर्वदा काली मिरच का चूर्ण, गुड तथा दही मिलाकर पिलावें तो लाभ होता है ॥ १ ॥

अथ पञ्चमूल्यादियूषः—पञ्चमूलीयुतं क्षीरं किंवा स्याच्चित्रकाभया।
सर्पिर्गुडो विडङ्गश्च यूषः पीनसशान्तये ॥ १ ॥

पञ्चमूल के द्रव्यों से क्षीरपाक कर के पिलावें। अथवा चीता और हरड़ का चूर्ण वा क्वाथ पिलावें। अथवा घी और गुड़ वायविडङ्ग के यूष में मिलाकर पिलायें ॥ १ ॥

अथ गुडाद्यो योगः—

गुडमरिचविमिश्रं पीतमाशु प्रकामं
हरति दधि नराणां पीनसं दुर्निवारम्।
यदि तु सघृतमन्नं श्लक्ष्णगोधूमचूर्णैः
कृतमुपहरतेऽसौ तत्कुतोऽस्यावकाशः ॥ १ ॥

दही में गुड तथा काली मिरचों का चूर्ण डालकर यथेच्छ पिलावें तो भयंकर पीनसरोग भी शान्त होता है। और यदि गेहूं के आटे में घी मिलाकर परांठे या हलवा आदि बनाकर भी खिलावें तब तो पीनसरोग रह ही नहीं सकता॥

अथ वेल्लगोधूमयोगौ—वेल्लगोधूमभोजी च निद्राकाले च शीतलम्।
जलं पिबति यो रोगी पीनसान्मुच्यते नरः ॥ १ ॥

जौ वायविडंग का चूर्ण गेहूं के चूर्ण में मिलाकर खावें। और रात को सोते समय शीतल पीवे वह पीनसरोग से छूट जाता है ॥ १ ॥

अथ व्योषादिवटी—व्योषचित्रकतालीसतित्तिडीकाम्लवेतसम्।
सचव्याजाजितुल्यांशमेलात्वक्पत्रपादिकम् ॥ १ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, चीता, तालीसपत्र, इमली, अम्लवेत, चव्य, जीरा, इन में से प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ भाग लेवे। इलायची का चूर्ण, दारचीनी तेजपत्र इन में से प्रत्येक का चूर्ण चौथाई २ भाग लेवे ॥ १ ॥

व्योषादिकमिदं चूर्णं पुराणगुडमिश्रितम्।
पीनसश्वासकासघ्नं रुचिस्वरकरं परम् ॥ २ ॥

यह व्योषादि चूर्ण कहाता है। इस में सारे चूर्ण से दुगना पुराना गुड मिलाकर गोली बना ले। इस के चूसने तथा खाने से पीनस, श्वास तथा कास का नाश होता है, रुचि बढ़ती तथा स्वर अच्छा होता है ॥ २ ॥

अथ कट्फलादिचूर्णं क्वाथश्च—

कट्फलं पौष्करं शृङ्गी व्योषं यासश्च कारवी।
एषां चूर्णं कषायं वा दद्यादार्द्रकजैः रसैः ॥ १ ॥

कायफल की छाल, पोहकरमूल, काकड़ासिंघी, सोंठ, मिरच, पीपल, जवासा, काला जीरा इन सब का समभाग लेकर चूर्ण करे वा क्वाथ करे। इस चूर्ण वा क्वाथ में अदरक का रस डालकर पिलावें तो ॥ १ ॥

पीनसे स्वरभेदे च तमके सहलीमके।

संनिपाते कफे वाते कासे श्वासे च शस्यते ॥ २ ॥

पीनस में, स्वरभेद में, तमक श्वास में तथा हलीमकरोग में, सन्निपात में, कफ में तथा वातरोग में, कास में तथा श्वासरोग में लाभ देता है ॥ २ ॥

अथ पाठादितैलम्—पाठाद्विरजनीमूर्वापिप्पलीजातिपल्लवैः ।

एभिश्च तैलं संसिद्धं नस्यतः पीनसापहम् ॥ १ ॥

पाठा, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वामूल, पीपली, चमेली के कोमल पत्ते । इन सब को समभाग लेकर कल्क कर विधिपूर्वक तैल पाक कर ले । इस तैल की नस्य देने से पीनसरोग की शान्ति हाती है ॥ १ ॥

अथ षड्बिन्दुघृतम्—

भृङ्गं लवङ्गं मधुकं च कुष्ठं सनागरं गोघृतमिश्रितं च ।

षड्बिन्दु नासास्थिगतं च पीनसं शिरोगतं रोगशतं च हन्ति ॥ १ ॥

भांगरा, लौंग, मुलठ्ठी, कूठ, सोंठ इन का कल्क कर गौ का घी पका लेवे । इस षड्बिन्दु घृत को नाक के अन्दर डालकर सूंघ जावे तो पीनस, तथा शिरोगत सैंकड़ों रोगों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

अथ कलिङ्गाद्यवपीडः—कलिङ्गहिङ्गुमरिचलाक्षास्वरसकट्फलैः ।

कुष्ठोग्राशिग्रुजन्तुघ्नैरवपीडः प्रशस्यते ॥ १ ॥

इन्द्रजौ, हींग, काली मिरच, लाख का स्वरस, कायफल, कूठ, बच, सुहांजना वायविडंग इन सब का पीसकर अवपीड़नस्य देवें तो लाभ होता है ॥

पीनसेपथ्यम्—कफघ्नमन्नं वार्ताकं कुलत्थाढकिमुद्गजाः ।

यूषाः ससैन्धवव्योषाः शस्ताश्चोष्णास्तु पीनसे ॥ २ ॥

कफनाशक अन्न, बैंगन, कुलथी, अरहर, मूंग इन का रस सेंध नमक तथा सोंठ मिरच पीपल डालकर गरम २ पिलावें तो पीनसरोग में लाभ होता है ॥२॥

इति पीनसचिकित्सा ॥

अथापररोगाणां चिकित्सा अथ व्याघ्रीतैलम्—

व्याघ्रीदन्तीवचाशिग्रुसुरसाव्योषसिन्धुजैः ।

सिद्धं तैलं नसि क्षिप्तं पूतिनासागदापहम् ॥ १ ॥

छोटी कटेली, दन्ती, बच, सुहांजना, तुलसी, सोंठ, मिरच, पीपल, सेंधानमक इन सब को समभाग लेकर कल्क कर के नाक में डालें तो पूतिनस्यरोग को नष्ट करता है ॥ १ ॥

अथ पूतिनस्ये शिग्र्वादितैलम्—

शिग्रुसिंहीनिकुम्भानां बीजैः सव्योषसैन्धवैः ।

बिल्वपत्ररसे सिद्धं तैलं स्यात्पूतिनस्यनुत् ॥ १

सुहांजने के बीज, कटेली के बीज, दन्ती के बीज, सोंठ, मिरच, पीपल, सेंधानमक इन के कल्क में तथा बिल के पत्तों के स्वरस में पकाया हुआ तेल

पूतिनस्यरोग को नष्ट करता है ॥ १ ॥

नासापाकचिकित्सा—

नासापाके पित्तनाशं विधानं कार्यं सर्वं बाह्यमाभ्यन्तरं च ।
हरेद्रक्तं क्षीरिवृक्षत्वचश्च योज्याः सेके सघृताश्च प्रलेपाः ॥ २ ॥

नासापाकरोग में अन्दर से और बाहर से सर्वथा पित्तनाशक कार्य करे । रक्त निकलवा देवे । सिंचन करने में क्षीरिवृक्षों की त्वचा का कषाय, तथा घी से युक्त इन क्षीरी वृक्षों का ही प्रलेप करे ॥ २ ॥

पूयास्रचिकित्सा—पूयास्रे रक्तपित्तघ्नाः कषाया नावनानि च ।
पाकदाहादिरोगेषु शीता लेपादिकाः क्रियाः ॥ ३ ॥

पूयास्ररोग में रक्त पित्तनाशक कषाय तथा नस्य दें । पाक तथा दाहादिरोगों में शीतल लेप तथा शीतल क्रियायें करें ॥ ३ ॥

अथ क्षवथुभ्रंशथुचिकित्सा—घृतगुग्गुलुमिश्रस्य सिक्थकस्य प्रयत्नतः ।
धूमं क्षवथुरोगघ्नं भ्रंशथुघ्नं च निर्दिशेत् ॥ ४ ॥

घी, गूगल, मोम इन सब को मिलाकर धूम देवे तो क्षवथु तथा भ्रंशथुरोगों का नाश होता है ॥ ५ ॥

क्षवथौतैलम्—शुण्ठीकुष्ठकणाबिल्वद्राक्षाकल्ककषायवत् ।
तैलं पक्वमथाऽऽज्यं वा नस्यात्क्षवथुनाशनम् ॥ ५ ॥

सोंठ, कूठ, पीपली, बिल, दाख इन सब के कल्क तथा क्वाथ से तेल वा घी पकाकर नस्य देवे तो क्षवथुरोग का नाश होता है ॥ ५ ॥

दीप्तरोगचिकित्सा—

नस्यं हितं निम्बरसाञ्जनाभ्यां दीप्ते शिरःस्वेदनमल्पशस्तु ।
नस्ये कृते क्षीरजलावसेकान् शंसन्ति भुञ्जीत च मुद्गयूषैः ॥ ६ ॥

दीप्तरोग में नीम तथा रसौंत के रस की नस्य देवें । सिर को अल्प २ स्वेद देवें । नस्य के पीछे दूध तथा जल का अवसिंचन करे । मूंग के रसे के साथ भोजन करे ॥ ६ ॥

नासानाहचिकित्सा—नासावनाहे कर्तव्यं पानं गव्यस्य सर्पिषः ।

नासा के अवनाह या विबद्ध हो जाने पर गौ के घी का पान करना चाहिये ।

नासाशोषचिकित्सा—नासाशोषे क्षीरपानं ससितं च प्रशस्यते ॥ ७ ॥

नासाशोष में दूध में खांड मिलाकर लगातार पिलावें ॥ ७ ॥

नासास्रावचिकित्सा—

नासास्रावे घ्राणयोश्चूर्णमुक्तं नाड्या देयं येऽवपीडाश्च पथ्याः ।
तीक्ष्णान्धूमान्देवदार्वग्निकाभ्यां मांसं चाऽज्ञं पथ्यमत्राऽऽदिशन्ति ॥ ८ ॥

नासास्रावरोग में दोनों नाक के नथुनों में नाडीयंत्र से पूर्वोक्त लाभदायक चूर्ण देवें तथा अवपीड नस्य देवें । तीक्ष्ण धूवें जो देवदारु तथा चीते को मिलाकर

दिये जायें। बकरी का मांस देवें। ये सभी पथ्य हैं॥ ८॥

अथ प्रतिश्यायप्रतीकारः—प्रतिश्यायेषु सर्वेषु गृहं वातविवर्जितम्।
वस्त्रेण गुरुणोष्णेन शिरसो वेष्टनं हितम्॥१॥

सभी प्रतिश्यायों में वातरहित घर में रहना चाहिये। भारी तथा गरम वस्त्र से सिर को लपेट लेना चाहिये॥ १॥

बालमूलकयोर्यूषः कुलत्थोत्थश्च पूजितः।
स्वेदोष्णं च हितं भोज्यं पाचनाय प्रशस्यते॥ २॥
ततः पक्वं कफं ज्ञात्वा हरेच्छीर्षविरेचनैः।

गरम मूलियों का यूष तथा कुलथी का यूष पिलाना चाहिये। पसीना देवें, गरम २ भोजन करावें, शीतल भोजन पित्त में दें इस से प्रतिश्याय पक जाता है॥२॥ फिर कफ को पका हुआ जानकर शिरोविरेचन नस्यों से बाहर निकाल देवे॥

पिप्पल्यादिनस्यम्—पिप्पल्यः शिग्रुबीजानि विडङ्गं मरिचानि च॥३॥
अवपीडः प्रशस्तोऽयं प्रतिश्यायनिवारणः।

पिप्पली, सुहांजने के बीज, वायविडंग, मिरच॥ ३॥ इन को समभाग लेकर पीसकर अवपीडनस्य देवें तो प्रतिश्याय का नाश होता है॥

वातिकेप्रतिश्याये चिकित्सा—वातिके च प्रतिश्याये पिबेत्सर्पिर्यथाक्रमम् ४
पञ्चभिर्लवणैः सिद्धं प्रथमेन गणेन च।

वातिक प्रतिश्याय में पांचों लवणों तथा वातनाशक गण से सिद्ध किया हुआ घी पिलावें॥ ४॥

रक्तपित्तजे प्रतिश्याये चिकित्सा—

रक्तपित्तोत्थयोः पेयं सर्पिर्मधुरकैः श्रृतम्॥ ५॥

रक्तपित्तोत्थ प्रतिश्याय में मधुरगण की औषधों से सिद्ध किये हुए घी को पिलावें॥ ५॥

परिषेकान्प्रदेहांश्च कुर्यादपि च शीतलान्।
हितं पित्तप्रतिश्याये पाचनार्थं घृतं पयः॥ ६॥
श्रृङ्गबेरेण पयसा श्रृङ्गबेरमथापि वा।

शीतल प्रदेह अर्थात् लेप तथा प्रतिषेक अर्थात् सिंचन करें। पित्तजप्रतिश्याय के पकाने लिये घी तथा दूध मिलाकर पिलावें॥ ६॥ अदरक या सोंठ को दूध से मिलाकर पिलावें अथवा केवल सोंठ के क्वाथ या अदरक के रस को दें तो भी पित्त प्रतिश्याय पकता है॥

नासारुधिरे धात्रीलेपः—सर्पिषा भृष्टया धात्र्या शिरसो लेपतः क्षणात्॥७॥
नासायां संप्रवृत्तं च रुधिरं च विनश्यति।

आंवलों को घी में भूनकर सिर पर लेप कर दें तो क्षण भर में ही॥ ७॥ नाक से बहता हुआ रक्त नष्ट या बन्द हो जाता है।

कफजे प्रतिश्याये—कफजे सर्पिषा स्निग्धं तिलमाषविपक्वया ॥ ८ ॥
यवाग्वा वामयित्वा तु श्लेष्मघ्नं क्रममाचरेत्।

कफजनित प्रतिश्याय में तिल और उड़दों की पकाई हुई यवागू में घी मिला कर ॥८॥ खिलावे और फिर वमन करावे इस प्रकार से स्निग्ध श्लेष्मानाशक क्रम करे॥

दार्व्यादिवर्त्तिः—दार्वीङ्गुदनिकुम्भैश्च किणिह्या सरलेन च।
वर्तयोऽत्र कृता योज्या धूमपाने यथाविधि ॥ ९ ॥

दारुहल्दी, हिङ्गोट, दन्ती, अपामार्ग, सरलकाष्ठ इन सबको पीसकर बत्ती बनाकर यथाविधि धूमपान करना चाहिये ॥९॥ इति वृन्दात्।

विडङ्गादिधूपः—विडङ्गं सैन्धवं हिङ्गु गुग्गुलुः समनःशिलः।
प्रतिश्याये वचायुक्तं शक्त्या धूमं पिबेन्नरः ॥ १ ॥
एतच्चूर्णं समाघ्रातं प्रतिश्यायं विनाशयेत्।

वायविडंग, सेंधानमक, हींग, गूगल, मनसिल, बच, इन सबकी बत्ती बनाकर यथाशक्ति धूम पीना चाहिये ॥१॥ तथा इन्हीं के चूर्ण की नस्य देवें तो भी प्रतिश्याय नष्ट होता है।

सघृतःसक्तुधूमः—घृततैलसमायुक्तं सक्तुधूमं पिबेन्नरः ॥ २ ॥
स धूमः स्यात्प्रतिश्यायकासहिक्काहरः परः।

घी तथा तेल से मिलाकर सत्तुओं का धुंआं पिलाने से ॥२॥ प्रतिश्याय, कास तथा हिचकी नष्ट होती है।

सर्वप्रतिश्यायेधूमः—प्रतिश्याये पिबेद्धूमं सर्वं गव्यसमायुतम् ॥ ३ ॥

प्रतिश्यायों में धूम पीना हो तो सबमें गौ का घी मिलाकर पीना चाहिये ॥३॥

अथ चातुर्जातकनस्यम्—चातुर्जातकचूर्णं वा घ्रेयं वा कृष्णजीरकम्।

दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर इनका चूर्ण वा काले जीरे का चूर्ण सूंघने से सिर की पीड़ा सहित प्रतिश्यायरोग नष्ट होता है॥

कलिकानवसागरनस्यम्—समानं कलिकाचूर्णं सूक्ष्मं संचूर्णितं द्वयम्।
गुञ्जामात्रं तु तच्चूर्णं नस्यं प्रधमनं चरेत्
नश्यन्त्यनेन नस्येन प्रतिश्यायशिरोरुजः ॥ ४ ॥
प्रतिश्यायेषु सशिरःपीडेषु नवसागरम् ॥ ५ ॥

नौसादर एक भाग, चूना एक भाग। दोनों को मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण कर ले। इसकी प्रधमन नस्य दे॥ इससे प्रतिश्याय तथा सिर की पीड़ा नष्ट हो जाती है॥४॥५॥

बचादिपोटली—सवचाचूर्णमाघ्राय वाससा पोटलीकृतम्।
कारवी वस्त्रबद्धा वा प्रतिश्यायमपोहति ॥ ६ ॥

बच के चूर्ण को पोटली में बांधकर सूंघने से ॥६॥ अथवा काले जीरे को वस्त्र में बांधकर सूंघने से प्रतिश्याय का नाश होता है।

शट्यादिचूर्णम्—शटीतामलकीव्योषचूर्णं सर्पिर्गुडान्वितम्।
हरेद्घोरं प्रतिश्यायं पार्श्वहृद्बस्तिशूलनुत्॥ ७॥

कचूर, भुंई आमला, सोंठ, मिरच, पीपल इनको समभाग लेकर चूर्ण करे। इसमें घी तथा गुड मिलाकर खिलावें तो घोर प्रतिश्याय, पार्श्वशूल, हृदय-शूल, बस्ति का शूल इन सबको नष्ट करता है॥ ७॥

जयापत्रयोगः—पुटपक्वं जयापत्रं तैलसैन्धवसंयुतम्।
प्रतिश्यायेषु सर्वेषु शीलितं परमौषधम्॥ ८॥

भांग के पत्ते पुटपाक करके रस निकाल लें उसमें तेल तथा सेंधानमक मिला कर खिलावें तो सभी प्रतिश्यायों में परम औषध है॥ ८॥

अथ चित्रकहरीतकी—चत्वार्यत्र शतानि चित्रकजटायुक्पञ्चमूलामृता-
धात्रीणामुदकार्मणे त्रिभिरपां द्रोणैश्च संक्वाथयेत्।
पादस्थे क्वथने गुडस्य च शतं पथ्याढकेनान्वितं
पक्त्व्यं श्रुतशीतले च मधुनः प्रस्थार्धमात्रं क्षिपेत्॥१॥

चीते की जड़, दशमूल के दशों द्रव्य, गिलोय, आंवला इन में से प्रत्येक द्रव्य एक २ सौ पल लेकर मिलित ४०० पल लें। इन सबको तीन द्रोण जल में डाल कर पकावें। जब चौथाई भाग पककर शेष रह जावे तो गुड़ एक सौ पल घाल कर छान लें। और फिर हरड़ एक आढ़क डालें, सबको पकाकर अवलेह बना लें। फिर उतारकर शीतल होने पर आधा प्रस्थ शहद उसमें मिला देवें॥ १॥

व्योषस्य त्रिसुगन्धकस्य च पलान्यत्रैव षट् प्रक्षिप-
त्क्षारस्यार्धपलं रसायनमिदं संसेव्यते सर्वदा।
शोषश्वासमलावकाशवमथुश्लेष्मप्रतिश्यायिभिः
क्षीणोरःक्षतहिक्किभिः कफशिरोरुग्भिः प्रनष्टाग्निभिः॥ २॥

सोंठ, मिरच, पीपल का चूर्ण मिलित छह पल, और दारचीनी, इलायची, तेजपात इनका चूर्ण मिलित छह पल डाल दें। फिर यवक्षार आधा पल मिलावें सबको मिलाकर रखें। इस रसायन को सर्वदा ही सेवन करने से शोष, श्वास, मलावकाश अर्थात् मल का न आना, वमन, कफज प्रतिश्यायरोग, क्षीणरोग, उरःक्षतरोग, हिक्कारोग, कफरोग, सिरदर्द, मन्दाग्निरोग; ये सभी रोग नष्ट हो जाते हैं॥२॥ इति चित्रकहरीतकी योगरत्नावलीतः।

अथ हिङ्ग्वादितैलं चिकित्साकलिकातः—

हिङ्गुव्योषविडङ्गकट्फलवचारुक्क्षीदणगन्धैर्युतै-
र्लाक्षाश्वेतपुनर्नवाब्दकुटजैः पुष्पोद्भवैः सौरसैः।
इत्येभिः कटुतैलमेतदनले मन्दे समूत्रं श्रुतं

पीतं नासिकया यथाविधि भवेन्नासामयिभ्यो हितम् ॥ १ ॥

हींग, सोंठ, मिरच पीपल, वायविडंग, कायफल, बच, कूठ, छोटी इलायची लाख, श्वेत पुनर्नवा, मोथा, कुटज, फूलों के स्वरस से सरसों का तेल मन्द २ अग्नि पर तेल के समभाग गोमूत्र डालकर पकालें। इस तेल को नाक से यथा विधि पीवें तो नासारोगियों के लिये हितकारी हैं ॥ १ ॥ इति हिंग्वादितैलम्।

क्रिमिचिकित्सा—कृमिघ्ना ये क्रमाः प्रोक्तास्तान्वै कृमिषु योजयेत्।

धावनानि कृमिघ्नानि भेषजानि च बुद्धिमान् ॥ १ ॥

जो कृमिनाशक क्रम कृमिरोगों में कहे हैं, वे ही नाक में कीड़े पड़ने पर प्रयोग करें। तथा कृमिनाशक क्वाथों से नाक को धोवें ॥ १ ॥

रक्ताम्रस्वरसयोगः—रक्ताम्रस्वरसः शुद्धस्तक्रेण सह नस्यतः।

तस्य पर्णानि पिष्ट्वा च बध्नीयान्नासिकामुखे ॥ २ ॥

लाल आम का शुद्ध स्वरस तक्र से मिलाकर नस्य देवें। तथा उसी लाल आम के पत्तों को पीसकर नाक के मुंह पर बांध देवे ॥ २ ॥

पतन्ति कीटकाः सद्यो योगोऽयं त्रिदिनैर्हितः।

पीनसान्मुच्यते रोगी शतशोऽनुमितं त्विदम् ॥ ३ ॥

इस से ३ दिन में ही नाक के कीड़े बाहर गिर जाते हैं। और रोगी पीनस रोग से छूट जाता है। यह योग सैंकड़ों वार का अनुभूत है ॥ ३ ॥ इति वैद्य विलासात्। इति प्रतिश्यायादिचिकित्सा ॥

रक्तपित्तादीनां चिकित्सा—रक्तपित्तानि शोथाश्च तथाऽर्शांस्यर्बुदानि च।

नासिकायां स्युरेतेषां स्वं स्वं कुर्याच्चिकित्सितम् ॥१

रक्तपित्त, शोथ, अर्श तथा अर्बुद ये यदि नाक में हों तो इन की चिकित्सा जैसे पूर्व इन रोगों के प्रकरणों में कह आये हैं वैसे ही करे ॥ १ ॥

गृहधूमादितैलम्—गृहधूमकणादारुक्षारनक्ताह्वसैन्धवैः।

सिद्धं शिखरिबीजैश्च तैलं नासार्शसे हितम् ॥ २ ॥

रसोई घर का धुआं, पिप्पली, दारुहल्दी, यवक्षार, बड़े करंज के बीज, सेंधानमक, अपामार्ग के बीज इन से पकाया हुआ तेल नासार्श में हितकारी है ॥२

नासार्शे करवीरपुष्पतैलम्—रक्तकरवीरपुष्पं जात्यं वा तथा मल्लिकायाः।

एतैः समं तिलतैलं नासार्शोनाशनं परमम् ॥३॥

लाल कनेर का फूल, जाति वा मल्लिका अर्थात् चमेली वा जुही के फूल इन के समान तिल तैल डालकर पकावें। यह परम नासार्श नाशक है ॥ ३ ॥

नासाशोफचिकित्सा—

नासाशोफे क्षीरसर्पिः प्रधानं तैलं सिद्धं चाणुकल्केन नस्यम्।

सर्पिष्पानं भोजनं लाङ्गलैश्च स्नेहस्वेदैः स्नैहिकश्चात्र धूमः ॥ ४ ॥

नाक की सूजन में दूध घी से तथा अणुधान के कल्क से पकाया हुआ तेल नस्य में देवें। भोजन में घी पिलावें, कलिहारी का बना हुआ तेल या घी नाक में लगाकर स्नेहन करे तथा लांगली का स्वेद देवे। तथा स्नेहयुक्त धूमपान करावे ॥ ४ ॥ इति वृन्दात् ॥

नासार्बुदे सामान्यचिकित्सा—क्षारोऽर्बुदेऽर्शमांसे च क्रिया शेषेऽप्यवेक्ष्य च।
स्थितिर्निर्वातनिलये प्रगाढोष्णीषधारणम्।
गण्डूषो लङ्घनं नस्यं धूमश्छर्दिः शिराव्यधः ॥१॥

नासा अर्बुदरोग में तथा नासार्शरोग में क्षार का प्रयोग करे। तथा शेषरोगों में विचार कर उस २ रोग की नाशक क्रियायें करें। वातरहित स्थान में रोगी रहे, भारी पगड़ी सिर में लपेट रखे। गण्डूष धारण करे, लंघन, नस्य, धूम, वमन तथा शिराबेध करावें ॥ १ ॥

अथ पथ्यापथ्यम्—स्नेहः स्वेदः शिरोभ्यङ्गः पुराणा यवशालयः।
कुलित्थमुद्गयोर्यूषो ग्राम्या जाङ्गलजा रसाः ॥ १ ॥

स्नेह, स्वेद, सिर पर तेलादि मलना, पुराने जौ तथा शालिधान्य, कुलथ तथा मूंग का यूष, ग्राम्य तथा जांगल जीवों का रस ॥ १ ॥

वार्ताकं कुलकं शिग्रु कर्कोटं बालमूलकम्।
लशुनं दधि तप्ताम्बु वारुणी च कटुत्रयम् ॥ २ ॥

बैंगन, परवल, सुहांजना, ककोड़ा, नरम मूली, लशुन, दही, गरम जल, वारुणी मद्य, त्रिकुटा ॥ २ ॥

कट्वम्ललवणं स्निग्धमुष्णं च लघु भोजनम्।
नासारोगे पीनसादौ सेव्यमेतद्यथामलम् ॥ ३ ॥

कटु, अम्ल, लवण, स्निग्ध तथा उष्ण हल्का भोजन। ये सभी बातें पीनसादि नासारोगों में दोषानुसार सेवन करनी चाहियें ॥ ३ ॥

स्नानं क्रोधं शकृन्मूत्रवातवेगाञ्छुचं द्रवम्।
भूमिशय्यां च यत्नेन नासारोगी परित्यजेत् ॥ ४ ॥

परन्तु स्नान, क्रोध, मल, मूत्र अधोवायु इन के वेगों को रोकना, शोक करना, द्रव पदार्थ पीने, पृथिवी पर सोना ये सभी बातें नासारोगी यत्न कर के छोड़ देवे ॥ ४ ॥ इति नासारोगाधिकारः ॥

इति हरद्वारीयगुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेण लवपुरीय-श्रीमद्दयानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीय वैद्यकविराजोपाधिधारिणायुर्वेदशास्त्रिणा राज-यक्ष्मचिकित्सकेन जलचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योग-रत्नाकरस्य रत्नगर्भानाम्निटीकायां नासारोगप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ शिरोरोगनिदानम्।

धूमातपतुषाराम्बुक्रीडातिस्वप्नजागरैः।
उत्स्वेदातिपुरोवातबाष्पनिग्रहरोदनैः॥ १॥

धूंआ, धूप, बर्फ इनके सेवन से, जल में क्रीड़ा करने से, अत्यन्त सोने से, अत्यन्त जागन से, सूजन से, सन्मुख की वायु के अत्यन्त सेवन से, आंसुओं के रोकने से तथा रोने से॥ १॥

अत्यम्बुमद्यपानेन कृमिभिर्वेगधारणैः।
उपधानमृजाभ्यङ्गद्वेषाच्च प्रततेक्षणैः॥ २॥

अत्यन्त जल वा मद्य पीने से, कृमियों से, वेगों के रोकने से। ऊंचे तकिये पर सिर रखकर सोने से, तैलादि के मलवाने से, द्वेष करने पर, लगातार देखने से।

असात्म्यगन्धदुष्टान्नभाषाद्यैश्च शिरोगतैः।
शिरोरोगास्तु जायन्ते वातपित्तकफैस्त्रिभिः॥ ३॥

असात्म्य अर्थात् प्रतिकूल गन्ध के सूंघने से, दूषित अन्न के खाने से, अत्यन्त बोलने से, शिर में रहने वाले वात पित्त तथा कफ से शिरोरोग उत्पन्न होजाते हैं।

संनिपातेन रक्तेन क्षयेण कृमिभिस्तथा।
सूर्यावर्तानन्तवातशङ्खकार्धावभेदकाः।
एकादशविधस्यास्य लक्षणानि प्रचक्षते॥ ४॥

ये शिरोरोग वात से, पित्त से, कफ से, सन्निपात से, रक्त से, क्षय से तथा कृमियों से होते हैं। तथा सूर्यावर्त्त, अनन्तवात, शंखक, अर्धावभेदक ये ११ प्रकार के सिर के रोग होते हैं। इनके लक्षण आगे लिखते हैं॥ ४॥

अथ चोक्तम्—सर्व एव शिरोरोगाः संनिपातसमुद्भवाः।
औत्कर्ष्यात्कीर्तितास्ते हि दशैकश्च क्षयेण च॥ १॥

सिर के सभी रोग सन्निपात से ही होते हैं। परन्तु दोषों की उत्कटता से वे दश और एक क्षय से हुआ २ इस प्रकार सब मिलाकर ११ होते हैं॥ १॥

अथ वातिकस्य लक्षणमाह—

यस्यानिमित्तं शिरसो रुजश्च भवन्ति तीव्रा निशि चातिमात्रम्।
बन्धोपतापैः प्रशमश्च यत्र शिरोभितापः स समीरणेन॥ ५॥

जिस मनुष्य के सिर में बिना ही किसी कारण के पीड़ायें होती हों, रात को और भी तीव्र हो जाती हों, सिर के बांधने से तथा स्वेदादि उपताप देने से उन की शान्ति होती हो उसे वातिक शिरोरोग कहते हैं॥ ५॥

अथ पैत्तिकमाह—

यस्योष्णमङ्गारचितं यथैव भवेच्छिरो दह्यति चाक्षिनासम्।
शीतेन रात्रौ च भवेच्छमश्च शिरोभितापः स तु पित्तकोपात्॥ ६॥

जिस मनुष्य का सिर जलते हुए अंगारों से भरा हुआ प्रतीत हो, आंखें तथा नाक जलते हुए प्रतीत हों। शीतल क्रिया से तथा रात के समय शान्ति हो उसे पित्तज शिरोरोग कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ श्लैष्मिकमाह—

शिरो भवेद्यस्य कफोपदिग्धं गुरु प्रतिष्टब्धमथो हिमं च ।
शूनाक्षिनासावदनं च यस्य शिरोभितापः स कफप्रकोपात् ॥ ७ ॥

जिस मनुष्य का सिर कफ से लिपा हुआ हो, भारी हो, स्तब्ध हो अर्थात् बंधा हुआ सा हो, स्पर्श करने से शीतल प्रतीत हो, तथा जिसकी आंखें, नाक तथा मुंह सूजे हुए हों, उसे कफज शिरोरोग कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ सांनिपातिकमाह—

शिरोभितापे त्रितयप्रवृत्ते सर्वाणि लिङ्गानि समुद्भवन्ति ।

त्रिदोषज शिरोरोग में तीनों दोषों के लक्षण प्रगट होते हैं। चरक में कहा है—"वाताच्छूलं भ्रमः कम्पः पित्ताद्दाहो मदस्तृषा । कफाद्गुरुत्वं तन्द्रा च शिरोरोगे त्रिदोषजे ।" अर्थात् शूल भ्रम कम्प, दाह, मद, तृष्णा, गुरुता, तन्द्रादि त्रिदोषज लक्षण होते हैं । चरक सूत्र स्थान १७)

अथ रक्तजमाह—

रक्तात्मकः पित्तसमानलिङ्गः स्पर्शासहत्वं शिरसो भवेच्च ॥ ८ ॥

रक्तज शिरोरोग में पित्त के समान ही लक्षण होते हैं, तथा सिर को स्पर्श करें तो सहन नहीं होता ॥ ८ ॥

अथ क्षयजमाह—

वसाबलासक्षतसंभवानां शिरोगतानामतिसंक्षयेण ।
क्षयप्रवृत्तः शिरसोऽभितापः कष्टो भवेदुग्ररुजोऽतिमात्रम् ॥ ९ ॥
संस्वेदनच्छर्दनधूमनस्यैरसृग्विमोक्षैश्च विवृद्धिमेति ॥

सिर में रहने वाले वसा, कफ तथा रक्त इनके अति निकल जाने से अर्थात् क्षीण हो जाने से क्षयज शिरोरोग हो जाता है । इसमें अत्यन्त तीव्र पीड़ा होती है तथा कष्टदायक होता है ॥ ९ ॥ संस्वेद से, वमन कराने से, धूमपान कराने से, नस्य देने से तथा रक्त निकलवाने से पीड़ा और भी बढ़ जाती है ।

अथ कृमिजमाह—

निस्तुद्यते यस्य शिरोऽतिमात्रं संभक्ष्यमाणं स्फुटतीव चान्तः ।
घ्राणाच्च गच्छेद्रुधिरं सपूयं शिरोभितापः कृमिभिः स घोरः ॥ १० ॥

अन्दर से खाया जाता हुआ तथा फूटता हुआ सा जिसका सिर अत्यन्त पीड़ित होता हो। तथा नाक से खून तथा पीप निकलती हो। उसे समझो कि यह कृमियों से उत्पन्न हुआ २ शिरोरोग हैं । यह भयंकर होता है ॥ १० ॥

अथ सूर्यावर्तमाह—

सूर्योदयं या प्रति मन्दमन्दमक्षिभ्रुवौ रुक्समुपैति गाढम्।
विवर्धते चांशुमता सहैव सूर्यापवृत्तौ विनिवर्तते च ॥ ११ ॥

जो पीड़ा सूर्योदय होते ही आंखों की भौहों में धीरे २ होनी आरम्भ होती है। सूर्य के बढ़ने के साथ २ बढ़ती हैं। तथा सूर्य के अस्त होने के साथ हो हट जाती है ॥ ११ ॥

शीतेन शान्ति लभते कदाचिदुष्णेन जन्तुः सुखमाप्नुयाच्च।
सर्वात्मकं कष्टतमं विकारं सूर्यापवृत्तं तमुदाहरन्ति ॥ १२ ॥

कभी शीत से कभी गरमी से जिसकी शान्ति प्रतीत हो। इस सर्वदोषों से होने वाले रोग को सूर्यावर्त्तरोग कहते हैं यह कष्टदायक होता है ॥ १२ ॥

अथानन्तवातमाह—

दोषास्तु दुष्टास्त्रय एव मन्यां संपीड्य गाढं सरुजां सुतीव्राम्।
कुर्वन्ति साक्षिभ्रुवि शङ्खदेशे स्थितिं करोत्याशु विशेषतस्तु ॥ १३ ॥

तीनों वातादि दोष दूषित होकर मन्या को पीड़ित कर के अर्थात् गले की मन्या नामक नसों को पीड़ित कर के तीव्र गाढ़ी पीड़ा को करते हैं। आंख, भ्रू, शंखदेश में वह पीड़ा शीघ्र ही विशेष कर के ठहर जाती है ॥ १३ ॥

गण्डस्य पार्श्वे च करोति कम्पं हनुग्रहं लोचनजांश्विकारान्।
अनन्तवातं तमुदाहरन्ति दोषत्रयोत्थं शिरसो विकारम् ॥ १४ ॥

कपोल के निकट एक प्रदेश में कम्प होता है। हनुग्रह तथा नेत्र के रोग हो जाते हैं। इस शिरोरोग को अनन्तवात कहते हैं ॥ १४ ॥

अथ शङ्खकमाह—**पित्तरक्तानिला दुष्टाः शङ्खदेशे विमूर्छिताः।**
तीव्ररुग्दाहरोगं हि शोथं कुर्वन्ति दारुणम् ॥ १५ ॥

पित्त, रक्त तथा वायु दूषित होकर शंखदोष में एकत्र होकर तीव्रपीड़ा तथा दाह को करते हैं। तथा भयानक शोथ को कर देते हैं ॥ १५ ॥

स शिरो विषवद्वेगान्निरुद्ध्याऽशु गलं तथा।
त्रिरात्राज्जीवितं हन्ति शङ्खको नाम नामतः।
त्र्यहं जीवति भैषज्यं प्रत्याख्यायास्य कारयेत् ॥ १६ ॥

वह शोथ विष के समान वेग से बढ़कर शीघ्र ही गले को रोक लेता है। ३ रात में जीवन को हर लेता है। इस का नाम शंखकरोग है। इस में मनुष्य क्योंकि ३ दिन तक जीता है इसलिये इस की चिकित्सा असाध्य कहकर करे ॥ १६ ॥

अथार्धावभेदकमाह—**रूक्षाशनादध्यशनात्प्राग्वातावश्यमैथुनैः—**
वेगसंधारणायासव्यायामैः कुपितोऽनिलः ॥ १७ ॥

रूखे पदार्थों के खाने से, अध्यशन से, सामने की वायु सेवन करने से,

मैथुन करने से, मल मूत्रादि के वेगों को रोकने से, परिश्रम करने से, व्यायाम करने से कुपित हुआ २ वायु ॥ १७ ॥

केवलः सकफो वाऽर्धं गृहीत्वा शिरसो बली।
मन्याभ्रूशङ्खकर्णाक्षिललाटार्धेषु वेदनाम् ॥ १८ ॥

अकेला ही अथवा कफ से मिलकर बलवान हुआ २ सिर के आधे भाग को ग्रहण कर के मन्या, भ्रू, शंख, कान, आंख, माथा; इन सब के आधे २ भाग में पीड़ा करता है ॥ १८ ॥

शस्त्राशनिनिभां कुर्यात्तीव्रां सोऽर्धावभेदकः।
नयनं वाऽथ वा श्रोत्रमतिवृद्धो विनाशयेत् ॥ १९ ॥

वह तीव्र पीड़ा ऐसी होती है मानो किसी ने शस्त्र से काटा हो अथवा वज्र का प्रहार हुआ हो ("शस्त्रारणिनिभां" ऐसा पाठ माधवनिदान में है अरणी अर्थात् अरणि से अग्नि निकालने के समय जो मन्थन किया जाता है वैसी पीड़ा होती है अथवा अरणी का अर्थात् अग्नि है, अग्नि के समान जलता है)। इस रोग को अर्धावभेदक कहते हैं। यह पीड़ा अत्यन्त बढ़ने पर नेत्र वा कान को नष्ट कर के मनुष्य को एक आंख से अंधा वा एक कान से बहरा बना देती है ॥१९॥

इति शिरोरोगनिदानम् ॥

अथ शिरोरोगाणां चिकित्सा।

अथ वातिकस्य चिकित्सामाह—**वातजातशिरोरोगे स्नेहस्वेदनमर्दनम्।**
पानाहारोपनाहांश्च कुर्याद्वातामयापहान् ॥ १

वातज शिरोरोग में स्नेह देवे, स्वेद देवे तथा मर्दन करे। तथा वातनाशक पान, वातनाशक आहार तथा वातनाशक उपनाह देवे ॥ १ ॥

वाते कुष्ठादिलेपः—**कुष्ठमेरण्डमूलं च नागरं तक्रपेषितम्।**
कदुष्णं च शिरःपीडां भाललेपनतो हरेत् ॥ २ ॥

कूठ, एरण्ड की जड़, सोंठ इन सब को समभाग लेकर तक्र से पीसलें और कुछ २ गरम कर के माथे पर लगावें तो वातिक सिरदर्द नष्ट होती है ॥ २ ॥

श्वासकुठारनस्यम्—**रसः श्वासकुठारो यस्तस्य नस्यं विशेषतः।**
शिरःशूलं हरत्येव विधेयं नात्र संशयः ॥ ३ ॥

श्वासचिकित्सा में कहे हुए श्वास कुठाररस की नस्य देने से विशेष कर वातिक शूल नष्ट होता है। इस में संशय नहीं करना चाहिये ॥ ३ ॥

देवदार्वादिलेपः—**देवदारु नतं कुष्ठं नलदं विश्वभेषजम्।**
सकाञ्जिकः स्नेहयुक्तो लेपो वातशिरोर्तिनुत् ॥ ४ ॥

देवदार, तगर, कूठ, जटामांसी, सोंठ इन सब को कांजी से पीसकर घी मिलाकर लेप करें तो वातिक शिरोरोग का नाश होता है ॥ ४ ॥

कुष्ठादिलेपः—कुष्ठमेरण्डमूलं च लेपः काञ्जिकपेषितः।
शिरोऽर्त्तिं वातजां हन्यात्पुष्पं वा मुचुकुन्दजम् ॥ ५ ॥

कूठ, एरण्ड की जड़ इन को समभाग लेकर कांजी से पीसकर लेप करें। अथवा मुचकुन्द के फूल को कांजी से पीसकर लेप करें तो वातिक सिरदर्द नष्ट होती है ॥ ५ ॥

अथ शिरोबस्तिविधिः—आशिरोव्यापि तच्चर्म षोडशाङ्गुलमुच्छ्रितम्।
तेनाऽऽवेष्ट्य शिरोऽधस्तान्माषकल्केन लेपयेत् ॥१
निश्चलस्योपविष्टस्य तैलैः कोष्णैः प्रपूरयेत्।
धारयेदारुजः शान्तेर्यामं यामार्धमेव वा ॥ २ ॥

सिर के चारों ओर लपेटने योग्य लंबे चमड़े को ले जो सोलह उंगल चौड़ा हो। इस चमड़े को सिर के चारों ओर लपेट कर नीचे उड़द की पीठी से लीप देवे। फिर सिर से सोलह उंगल ऊंचे स्थान में कोसा २ तेल भर देवे। इस तेल को एक पहर या आधा पहर तब तक धारण करे जब तक सिरदर्द नष्ट नहीं हो जाती ॥ १-२ ॥

शिरोबस्तिर्हरत्येष शिरोरोगं मरुद्भवम्।
हनुमन्याक्षिकर्णार्तिमर्दितं मूर्धकम्पनम् ॥ ३ ॥

यह शिरोबस्ति वातिक शिरःशूल को नष्ट करती है। हनु, मन्या, आंख तथा कान की पीड़ा को नष्ट करती है, अर्दितरोग तथा सिर के कांपने को नष्ट करती है ॥ ३ ॥

विना भोजनमेवैष शिरोबस्तिः प्रयुज्यते।
पञ्चाहं वाऽपि सप्ताहं षडहं चैवमाचरेत् ॥ ४ ॥
ततोऽपनीतस्नेहस्तु मोचयेद्बस्तिबन्धनम्।
शिरोललाटवदनग्रीवांसादीन्विमर्दयेत्।
सुखोष्णेनाम्भसा गात्रं प्रक्षाल्याश्नाति यद्धितम् ॥ ५ ॥

बिना भोजन किये हुए ही यह शिरोवस्ति करनी चाहिये। इसे ५ दिन, ७ दिन वा ६ दिन धारण करना चाहिये। फिर तेल को निकाल कर बस्ति के बन्धन को खोल देवे। और सिर, माथा, मुंह, गरदन तथा कन्धे आदि को मले। फिर कुछ २ गरम पानी से सिर आदि अंगों को धोकर हितकारी भोजन करे॥४-५

अथ पैत्तिकचिकित्सामाह-पित्तात्मके शिरोरोगे स्निग्धं सम्यग्विरेचयेत्।
मृद्वीकात्रिफलेक्षूणां रसैः क्षीरघृतैरपि ॥ १ ॥

पित्तज शिरोरोग में स्निग्ध करके रोगी को विरेचन देवे। मुनक्का, हरड़, बहेड़ा, आंवला, ईख के रस, दूध तथा घी इनसे विरेचन करे ॥ १ ॥

शर्कराक्षीरसलिलैः शिरश्च परिषेचयेत्।
सर्पिषः शतधौतस्य शिरसा धारणं हितम् ॥ २ ॥

खांड, दूध तथा जल सबकी लस्सी बनाकर सिर को सींचें। सौ बार जल से धुले हुए घी को सिर में लगावें ॥ २ ॥

निमज्जनं च शिरसः शीतले शस्यतेऽम्भसि।
कुमुदोत्पलपद्मानां शीतानां चन्दनाम्बुभिः ॥ ३ ॥

शीतल जल में सिर को डुबो देवें। कुमुदनी, नीलोफर, पद्म इनसे शीतल हुए २ चन्दन से मिलाये हुए जलों ॥ ३ ॥

स्पर्शाः सुखाश्च पवनाः सेव्या दाहार्तिशान्तये।
चन्दनोशीरयष्ट्याह्वबलाव्याघ्रनखोत्पलैः ॥ ४ ॥

से युक्त वायु का स्पर्श सुखदायी होता है इससे दाह नष्ट होती है। चन्दन, खस, मुलठ्ठी, खिरेंटी, व्याघ्रनख, नीलाकमल ॥ ४ ॥

क्षीरपिष्टैः प्रदेहः स्यात्शृतैर्वा परिषेचनम्।
यष्ट्याह्वचन्दनानन्ताक्षीरसिद्धं हितं घृतम् ॥ ५ ॥

इन सबको समभाग लेकर दूध में पीसकर लेप करें वा दूध में पकाकर सिंचन करें तो पैत्तिक शिरोरोग नष्ट होता है। अथवा मुलठी, चन्दन, अनन्तमूल इन सबका कल्क करके चतुर्गुण घी और घी के समभाग वा चौगुना दूध डालकर घी पका लें। इस घी का नस्य देना उत्तम है ॥ ५ ॥

नावनं शर्कराद्राक्षामधुकैर्वाऽपि पित्तजे।

अथवा खांड दाख तथा मुलठ्ठी की नस्य पित्तज शिरोरोग में देवें ॥

धात्र्यादिलेपः—**धात्रीकसेरुह्रीबेरपद्मपद्मकचन्दनैः ॥ ६ ॥**

आंवला, कसेरु, सुगन्धबाला, कमल, पद्मकाष्ठ, चन्दन ॥ ६ ॥

दूर्वोशीरनलानां च मूलैः कुर्यात्प्रलेपनम्।
शिरोर्तिं पित्तजां हन्याद्रक्तपित्तरुजं तथा ॥ ७ ॥

दूब, खस, नल या नड़ा इनकी जड़ों को लें। प्रत्येक द्रव्य को समभाग लेकर पीसकर लेप करे तो पित्तज तथा रक्तपित्तज सिर की पीड़ा इससे नष्ट होती है ७

श्वासकुठारादिनस्यम्—रसः **श्वासकुठारोऽल्पः कर्पूरः कुङ्कुमं नवम्।**
सिता छागीपयः सर्वं चन्दनेनानुघर्षयेत्।
तस्य नस्यं भिषग्दद्यात्पित्तजायां शिरोरुजि ॥ ८ ॥

श्वास कुठाररस, थोड़ा सा कपूर, नया केसर, खांड, बकरी का दूध। इन सब को मिला इसमें चन्दन को घिसकर मिलावें। इसकी नस्य देने से पित्तज शिरोरोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥

किन्तु मस्तकशूलेषु सर्वेष्वेव हितं मतम्।
गुडनागरकल्कस्य नस्यं मस्तकशूलनुत् ॥

सभी मस्तकशूल इनसे नष्ट होते हैं। तथा सोंठ और गुड इन दोनों को पीस कर नस्य देवें तो भी मस्तक शूल नष्ट होता है ॥ ९ ॥

अथ श्लैष्मिकचिकित्सा—श्लैष्मिके लङ्घनं रूक्षं लेपस्वेदादि कारयेत् ।

कफज शिरोरोग में लंघन, रूक्षण, लेप तथा स्वेदादि कर्म करे ।

हरेण्वादिलेपः—हरेणुनतशैलेयमुस्तैलागुरुदारुभिः ॥ १ ॥

मांसीरास्नोरुबूकैश्च कोष्णो लेपः कफार्तिनुत् ।

रेणुका या संभालु के बीज, तगर, शैलज, मोथा, इलायची, अगर, देवदारु ॥ १ ॥ जटामांसी रास्ना, एरण्ड की जड़ इन सबको पीसकर कोसा करके सिर पर लेप करें तो कफज शिरोरोग नष्ट होता है ॥

शुण्ठ्यादिलेपः—शुण्ठीकुष्ठप्रपुन्नाटदेवकाष्ठैः समांशिकैः ।

मूत्रपिष्टैः सुखोष्णैश्च लेपः श्लेष्मशिरोर्तिनुत् ॥ २ ॥

सोंठ, कूठ, पनवाड़, देवदार इन सबको समभाग लेकर भैंस के मूत्र में मिलाकर पीस लें फिर कुछ २ गरम करके लेप करें तो कफजशिरोरोग को नष्ट कर देता है २

अथ सांनिपातिकचिकित्सा—संनिपातसमुत्थेऽत्र घृतं तैलं च बस्तयः ।

धूमनस्यशिरोरेकलेपस्वेदाद्यमाचरेत् ॥

पुराणसर्पिषः पानं विशेषेण दिशन्ति हि ॥ १ ॥

संनिपातज शिरोरोग में घी, तेल तथा बस्तिकर्म, धूम पिलाना, नस्य, शिरोविरेचन, लेप, स्वेदादि कर्म करे । पुराने घी को विशेष करके पिलावे ॥ १ ॥

अथ स्मरफलादिप्रधमनम्—स्मरफलतिलपर्णीबीजसंयुक्तभूतां

कुशदलघटबीजत्वग्रजोऽर्धांशतुत्थम् ।

प्रधमनविधिना तद्दत्तमात्रं शिरो-

रुक्प्रलपनकफतन्द्रासंनिपातं निहन्यात् ॥ १ ॥

मैनफल, तिलपर्णी अर्थात् अजमोदा के बीज (तिलपर्णी रक्तचन्दने, अजगन्धायां, तिलौवी नामक शाक भेदे) कुशा के पत्ते, जमालगोटे के बीज की त्वचा इन सबके चूर्ण को एक २ भाग लेवें । नीलाथोथा आधा भाग लेवें । इन सबको एकत्र पीसकर प्रधमन नस्य देवें तो देते ही सिरदर्द, प्रलाप, कफ, तन्द्रा और सन्निपात इन सबका नाश होता है ॥ १ ॥

अथ रक्तजचिकित्सा—रक्तजे पित्तवत्सर्वं भोजनालेपसेवनम् ।

शीतोष्णयोश्च विन्यासो विशेषाद्रक्तमोक्षणम् ॥ १ ॥

रक्तजशिरोरोग में पित्तजशिरोरोग के समान ही भोजन, लेप तथा अन्य पदार्थ सेवन करने चाहियें । शीत तथा उष्ण का विन्यास करें अर्थात् शीत से रोग बढे तो उष्ण क्रिया करें, उष्ण से बढे तो शीत क्रिया करें । विशेष करके रक्त निकलवा देना चाहिये ॥ १ ॥

अथ क्षयजचिकित्सामाह—क्षयजे क्षयनाशाय कर्तव्यो बृंहणो विधिः ।

पाने नस्ये च सर्पिः स्याद्वातघ्नैर्मधुरैः शृतम् ॥ १ ॥

क्षयजाशिरोरोग में क्षयनाशक बृंहणचिकित्सा करे । वातनाशक मधुरगण द्रव्यों से पकाया हुआ घी पिलावें तथा नस्य देवें ॥ १ ॥

योजयेत्सगुडं सर्पिर्घृतपूरांश्च भक्षयेत् ।
नावनं क्षीरसर्पिर्भ्यां पानं च क्षीरसर्पिषोः ।
क्षीरपिष्टैस्तिलैः स्वेदो जीवनीयैश्च शस्यते ॥ २ ॥

गुड सहित घी को तथा घृतपूर या घेवरों को खावे । दूध और घी की नस्य देवे तथा दूध तथा घी पिलावें । तिल तथा जीवनीयगण के पदार्थों को दूध में पीसकर स्वेद देवे ॥ २ ॥

अथ कृमिजाचिकित्सा—**कृमिजे तु शिरोरोगे व्योषनक्ताह्वशिग्रुजैः ।**
अजामूत्रेण संपिष्टैर्नस्यं कृमिहरं परम् ॥ १ ॥

कृमिज शिरोरोग में सोंठ, मिरच, पीपल, करंज के बीज, सुहांजने के बीज, इन सबको बकरी के मूत्र से पीसकर नस्य देवें तो परमकृमिनाशक है ॥ १ ॥

अथ विडङ्गाद्यं तैलम्—**विडङ्गं स्वर्जिका दन्ती हिङ्गु गोमूत्रसंयुतम् ।**
विपक्वं सार्षपं तैलं कृमिघ्नं नस्यतः स्मृतम् ॥ १ ॥

विडंग, सज्जी, दन्तीमूल, हींग इनका कल्क करे, चौगुना सरसों का तेल मिलावे तथा तेल से चौगुना गोमूत्र मिलाकर तेल पकावे इस तेल की नस्य देने से कृमि नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथ सूर्यावर्तार्धावभेदकयोश्चिकित्सा—

सूर्यावर्ते शिरावेधो नावनं क्षीरसर्पिषोः ।
हितः क्षीरघृताभ्यासस्ताभ्यां सह विरेचनम् ॥ १ ॥

सूर्यावर्त्तरोग में शिराबेधन करे, दूध तथा घी मिलाकर नस्य देवें । दूध में घी मिलाकर नित्य पीना अच्छा है, और इनही के साथ कोई औषध खाकर विरेचन लेना उचित है ॥ १ ॥

भृंगराजादिनस्यम्—**भृङ्गराजरसश्छागक्षीरतुल्योऽर्कतापितः ।**
सूर्यावर्तं निहन्त्याशु नस्येनैव प्रयोगराट् ॥ २ ॥

भांगरे का स्वरस, बकरी का दूध दोनों को समभाग लेकर धूप में तपा लें फिर नस्य देवें तो सूर्यावर्त्त शीघ्र ही इस प्रयोगराज से नष्ट होजाता है ॥ २ ॥

शिरीषादिनस्यम्—**शिरीषमूलकफलैरवपीडं प्रयोजयेत् ।**
अवपीडो हितो वा स्याद्वचापिप्पलिभिः कृतः ॥ ३ ॥

सिरस की जड़ तथा इनको समभाग लेकर चूर्ण करके अवपीड नस्य लेवे । अथवा वच तथा पिप्पली इनके चूर्ण से अवपीड़ नस्य लेवे तो सूर्यावर्त्त शिरोरोग नष्ट होजाता है ॥ ३ ॥

उपनाहनम्—**जाङ्गलानि च मांसानि कारयेदुपनाहनम् ।**
तेनास्य शाम्यते व्याधिः सूर्यावर्तः सुदारुणः ॥ ४ ॥

जांगलीजीवों के मांस से उपनाह करे । इससे भयानक सूर्यावर्त्तरोग भी नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

अर्धावभेदकचिकित्सा—एष एव विधिः कार्यः कृत्स्नश्चार्धावभेदके ।
अर्धावभेदके पूर्वं स्नेहः स्वेदो हि भेषजम् ॥ ५ ॥
विरेकः कायशुद्धिश्च धूपः स्निग्धोष्णभोजनम् ।

यह सारी विधि अर्धावभेदक रोग में भी करनी चाहिये । अर्धावभेदक रोग में पहले स्नेह तथा स्वेद देना ही दवाई है ॥ ५ ॥ विरेचन देना, शरीर शोधन करना,धूप देना अर्थात् धूमपीना स्निग्ध तथा उष्ण भोजन करना इससे अर्धावभेदक नष्ट होता है ॥

विडंगादिनस्यलेपौ—विडङ्गानि तिलान्कृष्णान्समान्पिष्ट्वा विलेपयेत् ॥६॥
नस्यं चाथाऽऽचरेत्तस्मादर्धभेदं व्यपोहति ।

विडंग, काले तिल इन दोनों को समभाग पीसकर लेप करे ॥ ६ ॥ इन दोनों के चूर्ण की ही नस्य करे तो अर्धावभेदकरोग नष्ट होता है ॥

गिरीकर्णीफलादिनस्यम्—गिरिकर्णीफलं मूलं सजलं नस्यमाचरेत् ॥ ७ ॥

इन्द्रायण की जड़ तथा फल की अथवा अपामार्ग की जड़ और बीजों को जल से पीसकर नस्य देवें तो अर्धावभेदकरोग नष्ट होता है। (गिरीकर्णी-इन्द्रायण, श्वेतापराजिता, आरग्वध, अपामार्ग च) ॥ ७ ॥

कर्णबन्धनम्—मूलं वा बन्धयेत्कर्णे निहन्त्यर्धशिरोरुजम् ।

अपामार्ग की जड़ को कान में बांध दें तो आधे सिर की दर्द नष्ट होती है ॥

मरिचादियोगः—मरिचं भृङ्गजद्रावैर्मरिचं शालितण्डुलैः ॥ ८ ॥

मिरच का चूर्ण भांगरे के स्वरस से, मिरच का चूर्ण शाली चावलों से पीसकर नस्य देवें तो अर्धावभेदकरोग दूर होता है ॥ ८ ॥

शुण्ठीलेपः—अर्धशीर्षव्यथां हन्ति लेपो वा शुण्ठिवारिणा ।

सोंठ को जल से पीसकर लेप करें तो भी आधे सिर की पीड़ा नष्ट होती है॥

क्षीरपानमाह—पिबेत्सशर्करं क्षीरं नीरं वा नारिकेलजम् ॥ ६ ॥
सुशीतं वाऽपि पानीयं सर्पिर्वा नस्यतस्तयोः ।

खांड मिला हुआ दूध पिलावें वा नारियल का जल पिलावें ॥ ६ ॥ शीतल पानी पिलावें । अथवा दूध तथा नारियल के जल से पकाकर बनाये हुए घी की नस्य लेवें तो भी अर्धावभेदक नष्ट होता है ॥

सारिवादिलेपः—सारिवाकुष्ठमधुकवचाकृष्णोत्पलैस्तथा ॥ १० ॥
लेपः सकाञ्जिकस्नेहः सूर्यावर्तार्धभेदयोः ।

सारिवा, कूठ, मुलहठी, वच, पीपल, नीलाकमल ॥ १० ॥ इन को कांजी से पीसकर स्निग्ध कर के लेप करें तो सूर्यावर्त्त तथा अर्धावभेदकरोग नष्ट होता है ॥

सितोपलामदनयोगः-सितोपलायुतं घृष्टं मदनं गोपयोन्वितम् ॥ ११ ॥

मैनफल को घिसकर मिश्री मिलाकर गौ के दूध से मिलाकर ॥ ११ ॥ सूर्य निकलने से पहले ही नस्य दें तो अर्धावभेदक का नाश होता है ॥

नस्यतोऽनुदिते सूर्ये निहन्त्येवार्धभेदकम्।
शशमुण्डरसं पीत्वा मरिचैरवचूर्णितम् ॥ १२ ॥
भोजनादौ तु सप्ताहात्सूर्यावर्तार्धभेदकौ।
हन्ति सर्वात्मकौ शीघ्रं दुःखदौ भृशदारुणौ ॥ १३ ॥

शशक के सिर के रस में काली मिरचों का चूर्ण डालकर भोजन से पहले ही पिला देवें तो सात दिन में सूर्यावर्त्त, अर्धावभेदक, सर्वदोषज जो अत्यन्त भयंकर तथा दुःख देने वाले होते हैं इन दोनों को शीघ्र ही नाश कर देता है ॥ १३ ॥

अथानन्तवातशङ्खकयोश्चिकित्सा-

अनन्तवाते कर्तव्यः सूर्यावर्तहितो विधिः।
शिराव्यधश्च कर्तव्योऽनन्तवातप्रशान्तये ॥ १ ॥

अनन्तवात रोग में सूर्यावर्त्त रोग के समान उपाय करे। अनन्तवात की प्रशान्ति के लिये शिरा भी बींधनी चाहिये ॥ १ ॥

आहारश्च प्रदातव्यो वातपित्तविनाशनः।
मधुमस्तकसंयावघृतपूरैर्विशेषतः ॥ २ ॥

वात पित्त विनाशक आहार भी देना चाहिये। विशेष करके मधुमस्तक, संयाव तथा घृतपूर पिलावें। (मधुमस्तक का लक्षण—"समिता वेष्टिता मध्ये मधुदत्त्वा शृता घृते। मधुमस्तकमुद्दिष्टं तद्वृष्यं गुरुदुर्जरम् ॥" संयाव का लक्षण—"समितामम्बुदुग्धेन खण्डैलामरिचार्द्रकैः। घृतपक्कां क्षिपेत् खण्डे संयावो बृंहणो गुरुः" ॥ राज. ३. ५. ॥ घृतपूरलक्षणम्—"मर्दितां समितां क्षीरनारिकेलघृतादिभिः। अवगाह्य घृते पक्त्वा घृतपूरोऽयमुच्यते॥ घृतपूरो गुरुर्वृष्यः कफकृत् रसमांसदः। रक्तपित्तहरो हृद्यः स्वादुः पित्तहरोऽग्निदः" ॥ भा. ॥ प्रकारान्तरं यथा—"गोधूमचूर्णं सूक्ष्मं च स्वच्छं तस्मिन् घृतं क्षिपेत्। यावत्तत् पिण्डतां गच्छेत पश्चाद्दुग्धे विमर्दयेत्। फेनयित्वा द्रवीभूते ततः पात्रे घृतं न्यसेत्। सशब्दे सुघृते तप्ते तस्य धारामपासृजेत्। यावच्च व्याप्य तत्पात्रं प्रसरेद्घृतपूरकः। यत्किञ्चित्ताम्रतांयाते खण्डपङ्के निमज्जयेत् ॥ स वृष्यो गुरुहृद्यश्च बलकृद्धातुवर्धनः। कफास्रमांसलकरो वातपित्तक्षयं हरेत् ॥ वै. निघ. ॥ अर्थात् आटे को जल से घोलकर टिकिया बना बीच में शहद भरकर चारों ओर से लपेटकर घी में तल ले। इसे मधुमस्तक कहते हैं आटे को पानी तथा दूध से गूंधकर खांड इलायची मिरच तथा अदरक मिलाकर घी में पकाकर खांडकी चाशनी में डालदें उसे संयाव कहते हैं ॥ घृतपूर घेवर को कहते हैं ॥ २ ॥

दार्व्यादिलेपः—दार्वी हरिद्रा मञ्जिष्ठा सनिम्बोशीरपद्मकम्।
एतत्प्रलेपनं कुर्याच्छङ्खकस्य प्रशान्तये॥ ३॥

दारुहल्दी, हल्दी, मंजीठ, नीम, खस, पद्माख इन सब को पीसकर लेप करें तो शंखक की निवृत्ति होती है॥ ३॥

शीततोयनिषेकश्च शीतलक्षीरसेवनम्।
कल्कैश्च क्षीरवृक्षाणां शङ्खके लेपनं हितम्॥ ४॥

और शीतल जल सिर पर डालना चाहिये। शीतल दूध पीना चाहिये। क्षीरिवृक्षों की छाल का कल्क कर के सिर पर प्रलेप करे इस से शङ्खरोग अच्छा होता है॥ ४॥

बलादिलेपः—बलानीलोत्पलं दूर्वा तिलाः कृष्णाः पुनर्नवा।
शङ्खकेऽनन्तवाते च लेपः सर्वशिरोर्तिनुत्॥ ५॥

बला, नीलोफर, हरीदूबघास, काले तिल, पुनर्नवा इन सबका प्रलेप शंखक, अनंतवात में करें। इस से सबप्रकार की सिरकी पीड़ायें नष्ट होजाती हैं॥ ५॥

अथ सामान्यप्रतीकारमाह। अथ षड्बिन्दुतैलम्—

एरण्डमूलं तगरं शताह्वा जीवन्ति रास्ना सह सैन्धवेन।
भृङ्गं विडङ्गं मधुयष्टिका च विश्वौषधं कृष्णतिलस्य तैलम्॥ १॥
अजापयस्तैलविमिश्रितं तु चतुर्गुणे भृङ्गरसे विपक्वम्।
षड्बिन्दवो नासिकयोः प्रदेयाः सर्वान्हिन्युः शिरसो विकारान्॥ २॥

एरण्ड की जड़, तगर, सौंफ, जीवन्ती, रास्ना, सेंधानमक, भांगरा, वाय, बिडंग, मुलठ्ठी, सोंठ, इन में से प्रत्येक द्रव्य एक २ भाग लेकर कल्क करे, काले तिल का तेल कल्क से चौगुना, तेल से समभाग बकरी का दूध ले और भांगरे का स्वरस तेल से चौगुना लेवे। सब को मिलाकर विधिपूर्वक तेल पका लेवे इस तेल की छह बूंदें नाक में डालने से सिर के सभी रोग नष्ट होते हैं॥ २॥

च्युतांश्च केशांश्चलितांश्च दन्तान्निबद्धमूलान्सुदृढीकरोति।
सुपर्णदृष्टिप्रतिमं च चक्षुः कुर्वन्ति बाह्वोरधिकं बलं च॥ ३॥

केशों के गिरने को अर्थात् बाल उड़ गये हों तो बाल पैदा कर देता है, हिलते हुए दांतों को सुदृढ़ कर देता है। गरुड़ के समान तीव्रदृष्टि वाली आंखें कर देता है, बाहुओं में अधिक बल उत्पन्न कर देता है॥ ३॥

शर्कराकुंकुमयोगः—सशर्करं कुङ्कुममाज्यभृष्टं नस्यं विधेयं पवनासृगुत्थे।
भ्रूशङ्खकर्णाक्षिशिरोर्धशूले दिनाभिवृद्धिप्रभवे च रोगे॥

खांड और घी में भुना हुआ कश्मीरी केसर पीसकर मिला लें। दोनों की की नस्य लेवें तो वायु तथा रक्त से उत्पन्न हुए २ भ्रू, शंख, कान, आंख तथा

सिर के आधे भाग के रोग में अर्थात् अर्धावभेदक तथा सूर्यावर्त्त रोग में लाभ होता है ॥ ४ ॥

पथ्यादिकषायः—पथ्याक्षधात्रीरजनीगुडूचीभूनिम्बनिम्बैः सगुडः कषायः।
भ्रूशङ्खकर्णाक्षिशिरोर्धशूलं निहन्ति नासानिहितः क्षणेन ५

हरड़, बहेड़ा, आंवला, हल्दी, गिलोय, चिरायता, नीम इन सबको समभाग लेकर क्वाथ कर लें इस क्वाथ में गुड डालकर नाक से पिलावें। तो क्षण भर में भ्रू, शंख, कान, आंख तथा सिरके आधे दर्द को दूर करता है। (इसे मुख से भी पिलाते हैं) ॥ ५ ॥

गुडनागरनस्यम्—किन्तु मस्तकशूलेषु सर्वेष्वेतद्धितं मतम्।
गुडनागरकल्कस्य नस्यं मस्तकशूलनुत् ॥ ६ ॥

किन्तु सभी मस्तकशूलों में गुड तथा सोंठ का कल्क कर के नस्य देना मस्तकशूलों को नष्ट करता है ॥ ६ ॥

क्षीरनागरनस्यम्—नागरकल्कविमिश्रं क्षीरं नस्येन योजितं नृणाम्।
नानादोषोद्भूतां शिरो रुजंहन्ति तीव्रतराम् ॥७॥

सोंठ के कल्क को दूध में पीसकर नस्य लेने से नाना प्रकार के दोषों से हुई २ तीव्रतर सिरपीड़ा नष्ट होती है ॥ ७ ॥

शताह्वादितैलम्—शताह्वैरण्डमूलोग्राचक्रव्याघ्रीफलैः शृतम्।
तैलं नस्यान्मरुच्छ्लेष्मतिमिरोर्ध्वगदापहम् ॥ ८ ॥

सौंफ, एरण्ड की जड़, बच, तगर, कटेली, के फल, इन सबको समभाग लेकर कल्क करले और इस कल्क से तैलपाक करले। इस तेल की नस्य देवे तो वातकफ के रोग, तिमिर तथा ऊर्ध्वगरोग नष्ट होते हैं ॥ ८ ॥

अथ मयूराद्यं घृतम्—मयूरं पक्षपादान्त्रशकृत्पित्तास्यवर्जितम्।
जले पक्त्वा घृतप्रस्थं तस्मिन्क्षीरसमं पचेत् ॥ १ ॥

मोर के पंख पैर आंतें मल पित्ताशय तथा मुंह दूर करके, शेष मांस के खण्ड २ करलें अर्थात् दो प्रस्थ मांस ले आठ गुणा जल में डालकर पकालेवें। चतुर्थांश शेष रहे अर्थात् ४ प्रस्थ शेष मांसरस रहे तो उतारकर छान लेवें। इसमें एक प्रस्थ गौ का घी तथा एक प्रस्थ गौ का दूध डालकर पकावे ॥ १ ॥

दशमूलबलारास्नामधुकैस्त्रिफलैः सह।
मधुरैः कार्षिकैः कल्कैः शिरोरोगार्दितापहम् ॥ २ ॥

तथा दशमूल के दशद्रव्य, खरेंटी, रास्ना, मुलठी, हरड़, बहेड़ा, आंवला तथा मधुरद्रव्य इनमें से प्रत्येक द्रव्य एक २ कर्ष लेकर कल्क करके। सबको एकत्र कर घी पकालेवें ॥ २ ॥

कर्णनासास्यजिह्वाक्षिगलरोगविनाशनम्।
मयूराद्यमिति ख्यातमूर्ध्वजत्रुगदापहम्॥ ३॥

इस घी के सेवन करने से कान, नाक, मुंह, जीभ, आंख, तथा गले के रोग नष्ट होते हैं। यह मयूराद्यघृत है जो ऊर्ध्वजत्रु अर्थात् गले से उपर के सभी रोगों को नष्ट करता है॥ ३॥

कलिकानवसागरनस्यम्—नस्येन कलिकाचूर्णं नवसागरजं रजः।
वातश्लेष्मभवां पीडां शिरसो हन्ति सर्वदा॥४॥

चूना और नौसादर दोनों का चूर्ण करके शीशी में भरलें। इसकी नस्य देते ही शिरकी वातश्लेष्मज पीड़ा सदा नष्ट हेजाती है॥ ४॥

करञ्जादिनस्यम्—करञ्जशिग्रुबीजानि पत्रकं सर्षपस्त्वचा।
सर्वेषां शीर्षरोगाणामेतच्छीर्षविरेचनम्॥ ५॥

करंज के बीज सुहांजने के बीज, तेजपात, सरसों, दारचीनी इनका सूक्ष्म चूर्ण करके नस्य दें तो सभी सिरके रोगों में इससे उत्तम शिरोविरेचन होता है अर्थात् कफपित्तादि दोष इससे नाक द्वारा बहजाते हैं॥ ५॥

त्रिकट्वादिक्वाथः—त्रिकटुकपुष्कररजनीरास्नासुरदारुसोग्रगन्धानाम्।
क्वाथः शिरोर्तिजालं नासापीतो निवारयति॥ ६॥

सोंठ, मिरच, पीपल, पोहकरमूल, हल्दी, रास्ना, देवदार, अजवायन या अजमोद इनका क्वाथ नाक से पिलाया जाये तो सिर की सभी पीड़ाओं को नष्ट कर देता है॥ ६॥

अथ पथ्यापथ्यम्।

अथ भावप्रकाशाच्छिरोबस्तिविधौ पथ्यमुच्यते—

आमिषं जाङ्गलं पथ्यं तत्र शाल्यादयोऽपि च।
मुद्गान्माषान्कुलित्थांश्च खादेद्वा निशि केवलान्।
कटुकोष्णान्ससर्पिष्कानुष्णं क्षीरं पिबेत्तथा॥ १॥

पहले भावप्रकाशोक्त शिरोवस्ति करने के समय पथ्य लिखते हैं—जांगल जीवों का मांस तथा शाली चावलादि पथ्य हैं। रात में केवल मूंग या उड़द वा कुलथ खावे जिन में त्रिकटु पड़ा हो, जो गरम २ तथा घी से युक्त हो। तथा गरम २ दूध पिलावें॥ १॥

अथ पथ्यापथ्यं संहितायाम्—

स्वेदो नस्यं धूमपानं विरेको लेपः सेको लङ्घनं शीर्षबस्तिः।
रक्तोन्मुक्तिर्वह्निकर्मोपनाहो जीर्णं सर्पिः शालयः षष्टिकाश्च॥ १॥

स्वेददेना, नस्य देना, धूमपिलाना, विरेचन देना, लेपकरना, सिंचनकरना,

लंघन देना तथा सिर की बस्ति देना, रक्त निकलवाना, अग्निकर्म, उपनाह, पुराना घी, शालि तथा साठी के चावल ॥ १ ॥

यूषो दुग्धं धन्वमांसं पटोलं शिग्रुर्द्राक्षा वास्तुकं कारवेल्लकम्।
आम्रं धात्रीं दाडिमं मातुलुङ्गं तैलं तक्रं काञ्जिकं नारिकेलम् ॥ २ ॥

यूष पीना, दूध, धन्वज मांस, परवल, सुहांजना, दाख, बथुआ, करेला, आम, आंवला, अनार, जम्बीरी नीबू, तेल, तक्र, कांजी, नारियल ॥ २ ॥

पथ्या कुष्ठं भृङ्गराजः कुमारी मुस्तोशीरं चन्द्रिकागन्धसारः।
कर्पूरं च ख्यातिमानेष वर्गः सेव्यो मर्त्यैः शीर्षरोगे यथास्वम् ॥ ३ ॥

हरड़, कूठ, भांगरा, घीकुमार, मोथा, खस, चांदनीरात, गंधसार अर्थात् चन्दन कपूर ये सभी द्रव्य सिर के रोगों में दोषानुसार प्रयोग करने चाहियें ॥ ३ ॥

अथापथ्यम्—**क्षवजृम्भामूत्रबाष्पनिद्राविड्वेगभञ्जनम्।**
दुग्धं नीरं विरुद्धान्नं विरुद्धजलमज्जनम्।
दन्तकाष्ठं दिवानिद्रां शिरोरोगी परित्यजेत् ॥ १ ॥

छींक, जंभाई, मूत्र, आंसु, नींद, मल के वेग को रोकना, दूध, पीना, विरुद्ध अन्न, पानी में विरुद्ध अर्थात् सिर नीचा कर के छलांग या डुबकी मारना। दातुन, दिन में सोना, ये सभी बातें शिरोरोगवाला त्याग देवे ॥ १ ॥ इति पथ्यापथ्यम् ॥ इति शिरोरोगचिकित्सा ॥

इति हरद्वारीयगुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेण लवपुरीय श्रीमद्दयानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीय वैद्यकविराजोपाधिधारिणायुर्वेदशास्त्रिणा राजयक्ष्मचिकित्सकेन जलचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योगरत्नाकरस्य रत्नगर्भानाम्निटीकायां शिरोरोगप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ नेत्ररोगाणामधिकारः।

तत्र नेत्रस्य प्रमाणमाह—**विद्याद् द्व्यङ्गुलबाहुल्यं स्वाङ्गुष्ठोदरसंमितम्।**
द्व्यङ्गुलं सर्वतः सार्धं भिषङ् नयनमण्डलम् ॥१॥

नेत्र दो अंगुल लंबा होता है, अपने अंगूठे के पेट अर्थात् मध्य भाग के सदृश नेत्र का अन्दर का भाग होता है। सब ओर से दो अंगुल नयनमण्डल होता है, अर्थात् चौड़ाई तथा लंबाई दो २ अंगुल होती है ॥ १ ॥

अथ नेत्रस्याङ्गान्याह—**पक्ष्मवर्त्मश्वेतकृष्णदृष्टीनां मण्डलानि तु।**
अनुपूर्वं तु ते मध्याश्चत्वारोऽन्त्या यथोत्तरम् २॥

पक्ष्म, वर्त्म, श्वेत, कृष्ण तथा दृष्टि इन में से सब से मध्य में दृष्टि होती है, फिर दृष्टि सहित कृष्णमण्डल शेष आंख के मध्य में होता है। फिर कृष्णसहित

श्वेत भाग आंख के मध्य में होता है फिर वर्त्म होते है । और अन्त में पक्ष्म होते हैं ॥ २ ॥

तत्र नेत्रमण्डलेऽष्टसप्ततिर्व्याधयो भवन्तीत्याह—

द्वादश व्याधयो दृष्ट्यां तत्रैवान्यौ गदावुभौ ।
कृष्णभागे तु चत्वारो दशैकाः शुक्लभागजाः ॥ ३ ॥

दृष्टि के १२ रोग होते हैं और साथ ही दो रोग दृष्टि सम्बन्धि पृथक् और होते हैं अर्थात् सब मिलाकर १४ रोग दृष्टि सम्बन्धि होते हैं । कृष्णमण्डल में ४ रोग होते हैं । श्वेत भाग में ११ रोग होते हैं ।। ३ ॥

वर्त्मन्येको विंशतिश्च पक्ष्मजौ द्वौ प्रकीर्तितौ ।
नव संधिषु सर्वस्मिन्नेत्रे सप्तदशोदिताः ॥ ४ ॥
एवं नेत्रे समस्ताः स्युरष्टसप्ततिरामयाः ।

वर्त्म में २१ रोग होते हैं । पक्ष्म में दो रोग होते हैं । संधिस्थान में ६ रोग होते हैं । सारे नेत्र में १७ रोग होते हैं ॥ ४ ॥ इस प्रकार से नेत्रों के सब रोग मिलाकर ७८ होते हैं ॥

सुश्रुतोक्तान्षट्सप्ततिसंख्यानाह—

वाताद्दश तथा पित्तात्कफाच्चैव त्रयोदश ॥ ५ ॥

वात से १० रोग, पित्त से १० रोग, कफ से १३ रोग ॥ ५ ॥

रक्तात्षोडश विज्ञेयाः सर्वजाः पञ्चविंशतिः ।
बाह्यौ पुनर्द्वौ नयने रोगाः षट्सप्ततिः स्मृताः ॥ ६ ॥

रक्त से १६ रोग, त्रिदोष से २५ रोग । बाहर के नेत्र भाग में दो रोग । इस प्रकार से ७६ रोग नेत्रों में होते हैं ऐसा सुश्रुत का मत है ॥ ६ ॥

अथ नेत्ररोगाणां सामान्यतो विप्रकृष्टं संनिकृष्टं च निदानमाह—

उष्णाभितप्तस्य जलप्रवेशाद्दूरेक्षणात्स्वप्नविपर्ययाच्च ।
स्वेदाद्रजोधूमनिषेवणाच्च च्छर्देर्विघाताद्वमनातियोगात् ॥७॥

धूप में फिरने से अथवा ऐसे ही किसी प्रकार से गरमी से तपे हुए मनुष्य के एकदम शीतल जल में प्रवेश कर लेने से, दूर देखने से, सोने में उलट फेर करने से अर्थात् रात में जागने से तथा दिन में सोने से । स्वेद अर्थात् आंख में स्वेद या पसीने के गिरने से, धूल तथा धुआं इन के आंखों में पड़ने से, वमन के विघात से अर्थात् वमन के रोक लेने से या आती हुई वमन या कै के स्वयं रुक जाने से, अथवा वमन के अत्यन्त आने से ।। ७ ॥

द्रवान्नपानातिनिषेवणाच्च विण्मूत्रवातक्रमनिग्रहाच्च ।
प्रसक्तसंरोदनशोकतापाच्छिरोभिघातादतिमद्यपानात् ॥ ८ ॥

द्रव अर्थात् पतले पदार्थों के तथा अन्न पान के अति सेवन करने से ('द्रवान्नपानान्निशि सेविताच्च' ऐसा भी पाठ है, अर्थात् पतले पदार्थों के अति सेवन करने से तथा

रात में अधिक अन्न खा लेने से, मल, मूत्र तथा वात को क्रमशः धीरे २ रोक रखने से, निरन्तर रोने से, शोक करने से, ताप से, सिर पर चोट लगने से, अत्यन्त मद्य पीने से ॥ ८ ॥

तथा ऋतूनां च विपर्ययेण क्लेशाभितापादतिमैथुनाच्च।
बाष्पग्रहात्सूक्ष्मनिरीक्षणाच्च नेत्रे विकाराञ्जनयन्ति दोषाः ॥ ९ ॥

ऋतुओं के विपर्यय अर्थात् उलट फेर से, ताप से, कामादि क्लेशों के संताप से, अत्यन्त मैथुन से, आंसुओं के रोक लेने से। सूक्ष्म वस्तु के देखने से वातादि दोष नेत्र में विकारों को करते हैं ॥ ९ ॥

नयनरोगसंप्राप्तिः सुश्रुत पठ्यते—**शिरानुसारिभिर्दोषैर्विगुणैरूर्ध्वमाश्रितैः।**
जायन्ते नेत्रभागेषु रोगाः परमदारुणाः।
नेत्रभागेषु नेत्रस्य दृष्ट्याद्यवयवेषु च ॥ १० ॥

शिराओं में अनुकूल गति से चलने वाले दोष जब बिगड़कर ऊपर को चढ़ जाते हैं। तब नेत्रों में परम दारुण रोग हो जाते हैं। नेत्र के भिन्न २ भागों तथा दृष्टि अर्थात् पुतली आदि के अवयवों में दोष हो जाते हैं ॥ १० ॥

अथाऽऽदौ दृष्टिरोगानाह ॥ तत्र दृष्टिलक्षणम्—

मसूरदलमात्रां तु पञ्चभूतप्रसादजाम्।
खद्योतविस्फुलिङ्गाभां सिद्धां तेजोभिरव्ययैः ॥ ११ ॥

मसूर के दाने के समान, पांचों भूतों के प्रसाद अर्थात् स्वच्छ भाग से बनी हुई, जुगनु तथा जलते हुए अंगारे के समान तथा अक्षय तेज से बनी हुई ॥११॥

आवृतां पटलेनाक्ष्णोर्बाह्येन विवराकृतिम्।
शीतसात्म्यां नृणां दृष्टिमाहुर्नयनचिन्तकाः ॥ १२ ॥

केवल छिद्रमात्र आकृति वाली, आंखों के बाहर के पटल से ढकी हुई, शीतलता के सात्म्य रहने वाली, को नेत्रज्ञ लोग दृष्टि कहते हैं ॥ २ ॥

अथ तत्र पटलानि चत्वारि भवन्ति तान्याह—

तेजोजलाश्रितं बाह्यं तेष्वन्यत्पिशिताश्रितम्।
मेदस्तृतीयं पटलमाश्रितं त्वस्थि चापरम्।
पञ्चमांशसमं दृष्टेस्तेषां बाहुल्यमिष्यते ॥ १३ ॥

आंखों का बाहर का पटल तेज तथा जल के आश्रय है। दूसरा पटल मांस के आश्रय है, तीसरा पटल मेद के आश्रय है, चौथा पटल हड्डि में आश्रित है। उन में से प्रत्येक का विस्तार दृष्टि के पांचवें अंश के समान समझना चाहिये ॥१३॥

अथ तत्र प्रथमपटलगतस्य दोषस्य स्वभावमाह—

प्रथमे पटले दोषो यस्य दृष्ट्यां व्यवस्थितः।
अव्यक्तानि च रूपाणि कदाचिदथ पश्यति ॥ १४ ॥

जिस मनुष्य की दृष्टि के प्रथम पटल में दोष ठहर जाता है वह कभी २

अस्पष्ट रूपों को देखता है ॥ १४ ॥

दृष्टेरभ्यन्तरे दोषाः पटले समधिष्ठिताः।
एकैकमनुपद्यन्ते पर्यायात्पटलान्तरम् ॥ १५ ॥

दृष्टि के अन्दर के पटल में दोष ठहरे हुए हों तो पर्याय से एक २ पटल तक पहुंचते जाते हैं ॥ १५ ॥ इति विदेहवचनात्।

अथ द्वितीयपटलगतदोषस्वभावमाह—

दृष्टिर्भृशं विह्वलति द्वितीयं पटलं गते।
मक्षिकामशकान्केशान्जालकानीव पश्यति ॥ १६ ॥

जब दोष दृष्टि के दूसरे पटल को प्राप्त हो जाते हैं तब अनेक बार दृष्टि में कष्ट होता है। और मक्खी, मच्छर, केश तथा जाले दिखाई देते हैं ॥ १६ ॥

मण्डलानि पताकाश्च मरीचीन्कुण्डलानि च।
परिप्लवांश्च विविधान्वर्षमभ्रं तमांसि च ॥ १७ ॥

मण्डल, झण्डे, किरनें, कुण्डल, विविध प्रकार के मेंडक आदि को कूदता फांदता देखता है, वर्षा, बादल तथा अन्धकार को देखता है ॥ १७ ॥

दूरस्थानि च रूपाणि मन्यते च समीपतः।
समीपस्थानि दूरे च दृष्टेर्गोचरविभ्रमात् ॥ १८ ॥
यत्नवानपि चात्यर्थं सूचीपाशं न पश्यति ॥

दूर के रूपों को समीप देखता है, समीप के पदार्थों को दूर देखता है, ये सब दृष्टि के विषयों के भ्रान्त या दूषित हो जाने से होता है ॥ १८ ॥ यत्न करने पर भी सूई के छिद्र को वा धागे को नहीं देखता है ॥

अथ तृतीयपटलगतदोषमाह—

ऊर्ध्वं पश्यति नाधस्तात्तृतीयं पटलं गते ॥ १९ ॥

तीसरे पटल में दोष पहुंच जावे तो न ऊपर देख सकता है न नीचे देख सकता है ॥ १९ ॥

महान्त्यपि च रूपाणि छादितानीव चाम्बरैः।
कर्णनासाक्षिरूपाणि विकृतानीव पश्यति ॥ २० ॥

महान रूपों को भी ऐसा देखता है जैसे कपड़ों में ढक दिये हों। कान, नाक तथा आंख के रूपों को विकृत हुए २ से देखता है ॥ २० ॥

अथात्र रोगप्राप्तिमाह—यथादोषं च रज्येत दृष्टिर्दोषे बलीयसि।
अधःस्थे तु समीपस्थं दूरस्थं चोपरिस्थिते ॥ २१ ॥

दृष्टि दोषों के अनुसार बिगड़ जाती है। जब बलवान दोष दृष्टिमण्डल के नीचे के भाग में होते हैं तब समीप के पदार्थ नहीं दिखाई देते। जब दोष ऊपर के भाग में स्थित होते हैं तब दूर के पदार्थ नहीं दिखाई देते ॥ २१ ॥

पार्श्वस्थिते पुनर्दोषे पार्श्वस्थानि न पश्यति।
समन्ततः स्थिते दोषे संकुलानीव पश्यति ॥ २२ ॥

जब दोष दृष्टि मंडल के दोनों पार्श्वों में स्थित होते हैं तब दोनों पार्श्वों की वस्तुएं दिखाई नहीं देतीं। जब दोष दृष्टिमण्डल में चारों ओर स्थित हों तो मनुष्य वस्तुओं को संकुल अर्थात् अन्य न्य रूपों से मिश्रित देखता है ॥ २२ ॥

दृष्टिमध्यस्थिते दोषे महद्ध्रस्वं प्रपश्यति।
दोषे दृष्टिस्थिते तिर्यगेकं वै मन्यते द्विधा ॥ २३ ॥
द्विधा स्थिते त्रिधा पश्येद्बहुधा वाऽनवस्थिते ॥

दृष्टि के मध्य में दोष स्थित हों तो बड़ी वस्तु को छोटा देखता है। जब दोष दृष्टि में तिरछे ठहरे हुए हों तो एक वस्तु को दो भागों में बंटी हुई देखता है ॥२३॥ जब दोष दो भागों में तिरछे ठहरे हुए हों तो वस्तुओं को तीन भागों में बंटा हुआ देखता है। जब दोष अनिश्चित होकर कहीं २ पर दृष्टि में ठहरे हुए हों तो वस्तुओं को अनेक प्रकार का देखता है ॥

अथ चतुर्थपटलगतदोषमाह—

तिमिराख्यः स वै दोषश्चतुर्थं पटलं गतः ॥ २४ ॥

चौथे पटल में दोष पहुंच गये हों तो तिमिररोग को करते हैं ॥ २४ ॥

रुणद्धि सर्वतो दृष्टिं लिङ्गनाश इति क्वचित्।
अस्मिन्नपि तमोभूते नातिरूढे महागदे ॥ २५ ॥

इस से चारों ओर से दृष्टि रुक जाती है, इसे ही लिंगनाश कहते हैं (लिङ्ग्यते ज्ञायतेऽनेनेति लिंगमिन्द्रियं तन्नाशोऽस्मिन्निति लिंगनाशः) इस महारोग के अत्यन्त प्रबल न होने पर केवल तम अर्थात् अन्धकार मात्र दीखने पर भी ॥२५॥

चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रावन्तरिक्षे च विद्युतः।
निर्मलानि च तेजांसि भ्राजिष्णूनि च पश्यति ॥ २६ ॥
स एव लिङ्गनाशस्तु नीलिका काचसंज्ञितः ॥

मनुष्य, चांद, सूर्य, नक्षत्र, आकाशस्थ विद्युत तथा निर्मल चमकदार तेजों को देखता है ॥ २६ ॥ वही लिंगनाश नीलिका तथा काच कहाता है ॥

अथ दृष्टिरोगाणां संख्यां नामानि चाऽऽह—

दृष्ट्याश्रयाः षट् च षडेव रोगाः षड् लिङ्गनाशा हि भवन्ति तत्र।
वातेन पित्तेन कफेन सर्वैं रक्तात्परिम्लाय्यभिधश्च षष्ठः ॥ २७ ॥

दृष्टि के छहरोग होते हैं तथा छह लिंगनाश होते हैं इस प्रकार से सब मिलाकर दृष्टि के बारह रोग होते हैं। उन में से वात से, पित्त से, कफ से, सन्निपात से, रक्त से तथा परिम्लायी ये छह प्रकार का लिंगनाश होता है ॥२७॥

तथा नरः पित्तविदग्धदृष्टिः कफेन चान्यस्त्वथ धूमदर्शी।

यो ह्रस्वजात्यो नकुलान्धसंज्ञो गम्भीरसंज्ञा च तथैव दृष्टिः ॥२८॥

तथा मनुष्य की पित्त से पित्तविदग्ध दृष्टि होती है, कफ से कफविदग्ध दृष्टि धूमदर्शी, ह्रस्वजात्य, नकुलान्ध्य, गंभीर ये छह दृष्टि के रोग होते हैं। इस प्रकार से सब मिलाकर १२ रोग होते हैं॥ २८॥

तत्रैव द्वावन्यावाह—**तत्रैवान्यौ गदौ द्वौ च संनिपातनिमित्तकौ ॥**

दृष्टि के दो रोग अन्य भी होते हैं जो सन्निपात के कारण होते हैं॥

तेषु वातजस्य लिङ्गनाशस्य लक्षणमाह—

वातेन खलु रूपाणि भ्रमन्तीव स पश्यति ॥ २९ ॥
आविलान्यरुणाभानि व्याविद्धानीव मानवः ॥

मनुष्य वातिक लिंगनाश में रूपों को घूमता हुआ सा देखता है॥ २९॥ तथा गंदले, लाल से रंग के तथा बिंधे हुए रूपों को देखता है॥

अथ पैत्तिकमाह—**पित्तेनाऽऽदित्यखद्योतशक्रचापतडिद्गुणान् ॥ ३० ॥**
नृत्यतश्चैव शिखिनः सर्वं नीलं च पश्यति ॥

पित्तजलिंगनाश में सूर्य, जुगनू, इन्द्रधनुष, बिजली आदि के रूपों को देखता है॥३०॥ मोरों को नाचते हुए देखता है तथा सब कुछ नीला देखता है॥

अथ श्लैष्मिकमाह—**कफेन पश्येद्रूपाणि स्निग्धानि च सितानि च ॥३१॥**
सलिलप्लावितानीव परिजाड्यानि मानवः ॥

कफजलिंगनाश में स्निग्ध तथा श्वेत रूपों को देखता है॥ ३१॥ मानों पानी में डुबाकर पदार्थ गीले हो गये हों ऐसे रूप दिखाई देते हैं॥

अथ संनिपातजमाह—**संनिपातेन चित्राणि विप्लुतानि च पश्यति ॥३२॥**

सन्निपातजलिंगनाश में चित्र विचित्र तथा विपरीत रूपों को देखता है॥३२॥

बहुधाऽपि द्विधा वाऽपि सर्वाण्येव समन्ततः।
हीनाधिकाङ्गान्यथ वा ज्योतींष्यपि च भूयसा ॥ ३३ ॥

अर्थात् सभी पदार्थों को अनेक प्रकार के वा दो प्रकार के चारों ओर देखता है। हीन अंगवाले और अधिक अंगोंवाले तथा ज्योतियों सूर्यादि को भी प्रायः देखता है॥

अथ रक्तजमाह—**पश्येद्रक्तेन रक्तानि तमांसि विविधानि च।**
हरितान्यथ कृष्णानि पीतान्यपि च मानवः॥ ३४ ॥

रक्तज लिंगनाश में मनुष्य लाल देखता है, विविध अंधकारों को देखता है, हरे, काले तथा पीले रूपों को देखता है॥ ३४॥

अथ परिम्लायिनमाह—**रक्तेन मूर्च्छितं पित्तं परिम्लायिनमाचरेत्।**
तेन पीता दिशः पश्येदुद्यन्तमिव भास्करम् ३५॥
विकीर्यमाणान्खद्योतैर्वृक्षांस्तेजांसि चैव हि ॥

रक्त से मूर्च्छित हुआ २ पित्त परिम्लायी रोग को कर देता है। उस से

दिशाओं को मनुष्य पीला देखता है, मानो सूर्य निकलने लगा हो ॥ ३५ ॥ तथा जुगुनुओं से वृक्षों को भरे हुए देखता है तथा तेजों को बिखरे हुए देखता है ॥

अथ नेत्रवर्णैः षड्विधं लिङ्गनाशमाह—

वातादिजनितैर्नेत्रवर्णैरपि च षड्विधः ॥ ३६ ॥
लिङ्गनाशो निगदितो वर्णो वातादिजो यथा ॥

वातादि से उत्पन्न हुए २ नेत्रों के रंग से भी छह प्रकार का लिंगनाश होता है उस का रंग भी वातादि रंग के समान ही होता है ॥३६॥

रागोऽरुणो मारुतजः प्रदिष्टो म्लायी च नीलश्च तथैव पित्तात्।
कफात्सितः शोणितजः सरक्तः समस्तदोषप्रभवो विचित्रः ॥ ३७ ॥

वायु से लाल रंग आंखों का होजाता है । पित्त से म्लायी अर्थात् पीला नीला मिला हुआ रंग होजाता है तथा नीला रंग हो जाता है । कफ से श्वेतरंग होजाता है, रक्त से लाल रंग हो जाता है सारे दोषों से अर्थात् सन्निपात से विचित्र रंग होजाता है ॥ ३७ ॥

अथ वातादिना हेतुभूतेन जनिते नेत्रमण्डले रूपविशेषमाह—

अरुणं मण्डलं वाताच्चञ्चलं परुषं तथा ।
पित्तान्मण्डलमानीलं कांस्याभं पीतमेव च ॥ ३८ ॥

वात से लाल रंग का दृष्टिमण्डल होता है, चंचल तथा कठोर होता है। पित्त से दृष्टिमंडल कुछ २ नीला कांसी के रंग का तथा पीला होजाता है ॥३८॥

श्लेष्मणा बहलं स्निग्धं शङ्खकुन्देदुपाण्डुरम् ।
चलत्पद्मपलाशस्थः शुक्लो बिन्दुरिवाम्भसः ॥ ३९ ॥

कफ से दृष्टिमण्डल घना होजाता है, स्निग्ध होजाता है, शंख, कुन्द के फूल तथा चन्द्रमा के समान श्वेत होजाता है । हिलते हुए कमल के पत्ते पर स्थित जल के श्वेत बिन्दु के समान श्वेत रंग का होता है ॥ ३९ ॥

संकुचत्यातपेऽत्यर्थं छायायां विस्तृतो भवेत् ।
मृद्यमाने तु नयने मण्डलं तद्विसर्पति ॥ ४० ॥

वह मंडल वा बूंद धूप में अत्यन्त संकुचित होजाती है अर्थात् सिकुड़ जाती है, छाया में फैल जाती है । आंख के मलने से वह मण्डल इधर उधर फैल जाता है ॥

मण्डलं तु भवेच्चित्रं लिङ्गनाशे त्रिदोषजे ।
प्रवालपद्मपत्राभं मण्डलं शोणितात्मकम् ॥ ४१ ॥

त्रिदोषज लिंगनाश में दृष्टिमण्डल चित्र विचित्र रंगों का हो जाता है । रक्तज लिंगनाश में मूंगे के समान तथा लाल कमलपत्र के समान लालरंग का दृष्टि मंडल हो जाता है ॥ ४१ ॥

रक्तजं मण्डलं दृष्टौ स्थूलं काचारुणप्रभम् ।
परिम्लायिनि रोगे स्यान्म्लानं नीलं च मण्डलम् ॥ ४२ ॥

दोषक्षयात्स्वयं तत्र कदाचित्स्यात्तु दर्शनम् ॥

रक्तज मण्डल दृष्टि में स्थूल लाल कांच की प्रभा के सदृश होता है। परिम्लायी रोग में म्लान तथा नीला मण्डल होता है ॥ ४२ ॥ कभी २ दोषों के स्वयं क्षय हो जाने से पदार्थों का दर्शन भी हो जाता अर्थात् पदार्थ दीखने लगते हैं।

अनुक्तव्यथादाहगौरवादिदोषलिङ्गसंग्रहार्थमाह—

यथास्वं दोषलिङ्गानि सर्वेष्वेव भवन्ति हि ॥ ४३ ॥

सभी लिंगनाशों में वातादि दोषों के अपने २ चिन्ह प्रकाशित होते हैं ॥४३॥

अथ पित्तविदग्धदृष्टेर्लक्षणमाह—

पित्तेन दुष्टेन गतेन वृद्धिं पीता भवेद्यस्य नरस्य दृष्टिः।
पीतानि रूपाणि च तेन पश्येत्स वै नरः पित्तविदग्धदृष्टिः ॥४४॥

बढ़े हुए दुष्टपित्त से जिस मनुष्य की दृष्टि पीली हो जाये वह पीले रंग के ही रूपों को देखता है। इसे पित्तविदग्धदृष्टि कहते हैं ॥ ४४ ॥

तस्मिन्नेव पित्ते दृष्टौ तृतीयं पटलं गते रूपविशेषेण दिवान्धलक्षणमाह—

प्राप्ते तृतीयं पटलं तु दोषे दिवा न पश्येन्निशि वीक्षते सः।
रात्रौ स शीतानुगृहीतदृष्टिः पित्ताल्पभावात्सकलानि पश्येत् ॥४५

तीसरे पटल में दोष के अर्थात् पित्त के पहुंच जाने पर मनुष्य दिन में नहीं देख सकता, वह रात को देख सकता है। रात के समय शीत होने से उसकी दृष्टि को सहायता मिलती है और पित्त के कम हो जाने से सभी पदार्थों को वह देख सकता है ॥ ४५ ॥

अथ श्लेष्मविदग्धदृष्टिलिङ्गमाह—

तथा नरः श्लेष्मविदग्धदृष्टिस्तान्येव शुक्लानि हि मन्यते तु ॥

इसी प्रकार से कफ के बढ़ जाने से दृष्टि बिगड़ जाती है उसे कफविदग्धदृष्टि कहते हैं। उसमें सभी रूपों को मनुष्य श्वेत रंग का देखता है।

अथ नक्तान्ध्यमाह—

त्रिषु स्थितो यः पटलेषु दोषो नक्तान्ध्यमापादयति प्रसह्य ॥४६॥
दिवा स सूर्यानुगृहीतदृष्टिः पश्येत्तु रूपाणि कफाल्पभावात् ॥

जब दोष अर्थात् कफ तीनों पटलों में स्थिर हो गया हो तो नक्तान्ध्य अर्थात् रात को मनुष्य अन्धा हो जाता है जिसे अन्धराता कहते है ॥ ४६ ॥ दिन के समय सूर्य के होने से कफ का नाश होकर दृष्टि में सहायता मिलती है इस लिये वह मनुष्य दिन में पदार्थ देख सकता है ॥

अथ धूमदर्शिनमाह—

शोकज्वरायासशिरोभितापैरभ्याहता यस्य नरस्य दृष्टिः ॥४७॥
धूम्रांस्तु यः पश्यति सर्वभावान्स धूमदर्शीति नरः प्रदिष्टः ॥

शोक, ज्वर, परिश्रम, सिरदर्द इन कारणों से जिस मनुष्य की दृष्टि नष्ट हो गई हो ॥४७॥ वह सभी पदार्थों को धूंए वाले देखता है उसे धूमदर्शी भी कहते हैं।

अथ ह्रस्वजात्यमाह—

यो वासरे पश्यति कष्टतोऽथ रूपं महच्चापि निरीक्षतेऽल्पम् ॥४८॥
रात्रौ पुनर्यः प्रकृतानि पश्येत्स ह्रस्वजात्यो मुनिभिः प्रदिष्टः ॥

जो मनुष्य दिन में कठिनता से देख सके, महानरूप का छोटा देखे ॥ ४८ ॥ और रात को वही मनुष्य सब पदार्थों को ठीक २ अवस्था में देखे उस रोग को ह्रस्वजात्य कहते हैं ॥

तन्त्रान्तरे—**दृष्टिमध्यस्थिते दोषे महद्ध्रस्वं च पश्यति ।**
रात्रौ पित्तालपभावाच्च तानि रूपाणि पश्यति ॥

दोष के दृष्टि के मध्यभाग में होने पर मनुष्य महान वस्तु को छोटा देखता है। रात को पित्त के थोड़ा होने पर उन्हीं रूपों को सुस्पष्ट देखता है ॥

अथ नकुलान्ध्यमाह—

विद्योतते यस्य नरस्य दृष्टिर्दोषाभिपन्ना नकुलस्य यद्वत् ॥ ४६ ॥
चित्राणि रूपाणि दिवा स पश्येत्स वै विकारो नकुलान्ध्यसंज्ञः ॥

जिस मनुष्य की दृष्टि दोषों से युक्त होकर न्योले के नेत्रों के समान चमचमाती हो ॥ ४६ ॥ वह दिन में विचित्र रंगों के रूपों को देखता है इसे नकुलान्ध्य रोग कहा जाता है। इसमें दोष चतुर्थ पटल में पहुंचे हुए होते हैं ॥

अथ गम्भीरकामाह—

दृष्टिर्विरूपा श्वसनोपसृष्टा संकोचमभ्यन्तरतस्तु याति ॥ ५० ॥
रुजावगाढा च तमक्षिरोगं गम्भीरकेति प्रवदन्ति वृद्धाः ।

दृष्टि बिगड़ जाती है, वात से युक्त हुई २ दृष्टि अन्दर को संकुचित होती जाती है ॥ ५० ॥ इसमें अत्यन्त पीड़ा होती है, इस आंख के रोग को वृद्धलोग गम्भीरका कहते हैं ॥

अथ बाह्यौ निमित्तानिमित्तसंज्ञौ लिङ्गनाशावाह—

बाह्यौ पुनर्द्वाविह संप्रदिष्टौ निमित्ततश्चाप्यनिमित्ततश्च ॥ ५१ ॥

बाहर के लिंगनाश दो प्रकार से होते हैं एक निमित्त से दूसरा बिना ही निमित्त से ॥ ५१ ॥

निमित्ततस्तत्र शिरोभितापाज्ज्ञेयस्त्वभिष्यन्दनिदर्शनः सः ।
सुरर्षिगन्धर्वमहोरगाणां संदर्शनेनापि च भास्करस्य ॥ ५२ ॥
हन्येत दृष्टिर्मनुजस्य यस्य स लिङ्गनाशस्त्वनिमित्तसंज्ञः ॥

इन में से जो निमित्त से होता है वह शिर के अभिताप या दर्द से अर्थात् विषैले फूलादि के सूंघने से हुए २ समस्त शिर के उत्ताप से हुए २ नयनस्थ रुधिर का

अधिक कोप हो जाता है और इसी कारण दृष्टिशक्ति भी मारी जाती है। इस लिङ्गनाश के चिन्ह अभिष्यन्द रोग के समान होते हैं। जिस मनुष्य की दृष्टि सुर, ऋषि, गन्धर्व, महासर्प तथा सूर्य के अधिक देखने से नष्ट हो जाती है उसे अनिमित्त लिङ्गनाश कहते हैं॥

अथानिमित्ततो लिङ्गनाशस्य लक्षणमाह—

तत्राक्षि विस्पष्टमिवावभाति वैदूर्यवर्णा विमला च दृष्टिः॥ ५३॥

अनिमित्तज लिंगनाश में आंख निर्मल वैदूर्यमणि के समान स्पष्ट दीखती है, दृष्टि अर्थात् पुतली भी निर्मल दीखती है। देवादि आठों महा प्रभाव वाले होने के कारण भौतिक इन्द्रियों को नष्ट न करते हुए भी इनकी शक्ति को नष्ट कर देते हैं। (चरक में भी कहा है—"देवादयोऽष्टौ हि महाप्रभावा न दूषयन्तः पुरुषस्यदेहम्। विशन्त्यदृश्यास्तरसा यथैव छायातपौ दर्पणसूर्यकान्तौ।") ॥ ५३॥

अथ दृष्टिमण्डलप्रत्यासन्नतया कृष्णगतविकारानाह—

यत्सव्रणं शुक्रमथाव्रणं च पाकात्ययश्चाप्यजका तथैव।
चत्वार एते नयनामयास्तु कृष्णप्रदेशे नियता भवन्ति॥ ५४॥

सव्रण शुक्र, अव्रण शुक्र, पाकात्यय, अजक ये चारों नेत्ररोग आंख के काले भाग में रहते हैं॥ ५४॥

तत्र सव्रणशुक्रलिङ्गमाह—

निमग्नरूपं तु भवेद्धि कृष्णे सूच्येव विद्धं प्रतिभाति यद्वै।
स्रावं स्रवेद्दुष्टमतीव यच्च तत्सव्रणं शुक्रमुदाहरन्ति॥ ५५॥

आंख के काले भाग में कुछ दबा हुआ सा प्रतीत हो तथा सूई से कुछ बिंधा हुआ सा प्रतीत हो। तथा जिसमें से अत्यधिक दूषित स्राव निकले उसे सव्रण शुक्र कहते हैं॥ ५५॥

विदेहेऽप्युक्तम्—**रक्तराजिनिभं कृष्णे छिन्नाभं यत्र लक्ष्यते।**
सूच्यग्रेणेव तच्छुक्रमुष्णाश्रुस्रावि सव्रणम्॥

जिस कृष्ण भाग में रक्त की लकीरें या लालरंग की लकीरें सी पड़ी हों, तथा जो सुई से अगले भाग से कटा हुआ सा प्रतीत हो, जिसमें से गरम २ आंसु या स्राव निकलता हो उसे सव्रण शुक्र कहते हैं॥ ५५॥

अथास्य साध्यासाध्यलक्षणमाह—

दृष्टेः समीपे न भवेत्तु यच्च न चावगाढं न च संस्रवेच्च।
अवेदनं वा न च युग्मशुक्रं तत्सिद्धिमायाति कदाचिदेव॥ ५६॥

जो सव्रण शुक्र दृष्टि अर्थात् पुतली के समीप न हो, जो गहरा न हो तथा जो अधिक बहता न हो जिसमें वेदना न होती हो तथा यदि दो शुक्र इकट्ठे न हो गये हों तो सव्रण शुक्र कभी सिद्ध अर्थात् अच्छा भी हो जाता है॥ ५५॥

अथाव्रणशुक्रमाह—

स्यन्दात्मकं कृष्णगतं तु शुक्रं शङ्खेन्दुकुन्दप्रतिमावभासम्।
वैहायसाभ्रप्रतनुप्रकाशं तं चाव्रणं साध्यतमं वदन्ति ॥ ५७ ॥

अभिष्यन्द से उत्पन्न हुआ २ कृष्ण भाग में जो शुक्र अर्थात् फोला होता है वह शंख, चांद तथा कुन्द के फूल के समान श्वेतरंग का होता है, आकाश के निर्जल बादल के समान स्वच्छ प्रकाश-वाला (पर्वतीय बादल जल से भरे हुए नील होते हैं वे पार्वताभ्र कहाते हैं ऐसा कार्तिक का मत है) होता है उसे अव्रण शुक्र कहते हैं यह साध्यतम होता है ॥ ५७ ॥

साध्यतमस्याप्यवस्थाभेदेन कृष्टसाध्यतामाह—

गम्भीरजातं बहुलं च शुक्रं चिरोत्थितं चापि वदन्ति कृच्छ्रम् ॥

गम्भीर अर्थात् दो तीन त्वचाओं की गहराई तक पहुंचा हुआ, सूक्ष्म बादल की अपेक्षा घना, तथा देर से उत्पन्न हुआ २ शुक्र कष्टसाध्य होता है ॥

अथासाध्यतां चाऽऽह—

विच्छिन्नमध्यं पिशितावृतं वा चलं शिरासूक्ष्ममदृष्टिकृच्च ॥ ५८ ॥
द्वित्वग्गतं लोहितमन्ततश्च चिरोत्थितं चापि विवर्जनीयम् ॥

जिस शुक्र या फोले का मध्यभाग विदीर्ण हो गया हो या फटा हुआ हो तथा चारों ओर से मांस से घिरा हुआ हो, एक स्थान में स्थिर न हो प्रत्युत चंचल हो, शिराओं से घिरा होने के कारण सूक्ष्म हो तथा दृष्टि नष्ट कर चुका हो।

दो त्वचाओं तक पहुंचा हो अर्थात् दूसरे पटल तक पहुंचा हो, किनारों से लाल रंग का हो (मध्य में श्वेत रंग का हो) तथा पुराना हुआ २ हो तो असाध्य समझना चाहिये ॥

अपरमसाध्यलक्षणमाह—

उष्णाश्रुपातः पिटिका च नेत्रे यस्मिन्भवेन्मुद्गनिभं च शुक्रम् ॥ ५९ ॥
तदप्यसाध्यं प्रवदन्ति केचिदन्यच्च वा तित्तिरिपक्षतुल्यम् ॥

गरम आंसु आंखा में टपकते हों, नेत्र में पिडिका हो गई हो तथा मूंग के दाने के समान शुक्र या फोला हो ॥ ५९ ॥

उसे भी कई वैद्य असाध्य कहते हैं। तथा तित्तिर के पंखों के समान शबल अर्थात् चित्रित हो तो भी असाध्य समझो ॥

अथाक्षिपाकात्ययमाह—

श्वेतः समाक्रामति सर्वतो हि दोषेण यस्यासितमण्डलं तु ॥ ६० ॥
तमक्षिपाकात्ययमक्षिकोपं सर्वात्मकं वर्जयितव्यमाहुः ॥

दोष से हुआ २ जो श्वेत फूला सारे कृष्णमण्डल में फैल जाये ॥ ६० ॥ उसे अक्षिपाकात्यय नामक आंख का रोग कहते हैं वह त्रिदोषज होता है तथा असाध्य होता है ॥

अथाजकाजातमाह—

अजापुरीषप्रतिमो रुजावान्सलोहितो लोहितपिच्छिलाश्रु ॥ ६१ ॥
विगृह्य कृष्णं प्रचयोऽभ्युपैति तं चाजकाजातमिति व्यवस्येत् ॥

बकरी की सूखी हुई मींगनी के समान आकार का, लाल रंग का, पीड़ा देनेवाला, लाल तथा पिच्छिल आंसुओं को बहानेवाला ॥ ६१ ॥ सारे काले भाग पर फैलकर उभर कर उपर उठ आवे उसे अजकाजात कहते हैं ॥

अथात्र विदेहः—**कृष्णेक्षणोद्भवं शुष्कच्छगलीविट्समप्रभम् ।**
सान्द्रपिच्छलरक्तास्रं त्रित्वग्गं वाजकेति सा ॥ ६२ ॥

आंख के काले भाग में उत्पन्न हुए २ सूखी हुई बकरी के मींगनी के समान गाढा पिच्छिल तथा लाल स्राव बहानेवाले तीसरी त्वचा में पहुंचे हुए इस शुक्र को अजका कहते हैं ॥ ६२ ॥ इति कृष्णजाः ॥

अथ शुक्लभागजा रोगाः ।

तेषां नामानि संख्यां चाऽऽह—

प्रस्तारिशुक्लक्षतजाधिमांसस्नाय्वर्मसंज्ञाः खलु पञ्च रोगाः ॥६३॥

प्रस्तारि, शुक्ल, क्षतज अर्थात् रक्तज, अधिमांस, स्नायु ये ५ अर्म संज्ञकरोग श्वेत भाग में होते हैं ॥ ६३ ॥

स्याच्छुक्तिका सार्जुनपिष्टकाख्या जालं शिराणां पिटिकाश्च तासाम्॥
रोगा बलासग्रथितेन सार्धमेकादशोक्ताः खलु शुक्लभागे ॥ ६४ ॥

शुक्तिका, अर्जुन, पिष्टक, शिराजाल, शिरापिटिका तथा बलासग्रथित ये छहरोग मिलाकर शुक्लभाग में सब ग्यारह रोग होते हैं ॥ ६४ ॥

तेषु प्रस्तार्यर्मणो लक्षणमाह—**प्रस्तारि तनु विस्तीर्णं श्यावं रक्तनिभं सिते॥**

शुक्लभाग में पतला, फैला हुआ कुछ नीला और लाल मिला हुआ जा अर्म होता है उसे प्रस्तार्यर्म कहते हैं ॥

अथ शुक्लार्माऽऽह—**सश्वेतं मृदु शुक्लार्म शुक्ले तद्वर्धते चिरात् ॥ ६५ ॥**

श्वेत रंग का कोमल शुक्लार्म होता है यह श्वेत भाग में देर से बढ़ता है (यह कफज होता है) ॥ ६५ ॥

अथ रक्तार्माऽऽह—**पद्माभं मृदु रक्तार्म यन्मांसं चीयते सिते ॥**

कमल के लालपत्र के समान लाल रंग का कोमल मांस जो श्वेत भाग में उभर आता है उसे रक्तार्म कहते हैं ॥ (यह रक्तज होता है) ।

अथाधिमांसार्माऽऽह—**पृथु मृद्वधिमांसार्म बहलं च यकृन्निभम् ॥ ६६ ॥**

फैला हुआ, कोमल, स्थूल तथा यकृत् के समान कुछ नीला लाल रंग का

---

१. 'कृष्णेऽक्ष्णोर्यद्भवेच्छुक्लं छागलीविट्समप्रभम् सान्द्रपिच्छलरक्तास्रं त्रित्वग्गमजकेतिसा ।" इति पाठान्तरम् ॥

अधिमांसार्म होता है । यह त्रिदोषज होता है ॥ ६६ ॥

अथ स्नाय्वर्माऽऽह—**स्थिरं प्रस्तारिमांसाढ्यं शुष्कं स्नाय्वर्म पञ्चमम् ॥**

स्थिर अर्थात् कठिन, सूखा हुआ अर्थात् न बहने वाला, प्रस्तारि अर्म पर उत्पन्न हुआ २ बहुत मांसवाला स्नाय्वर्म कहाता है । (तथा च निमिः—"प्रस्तारिणोऽर्मणः स्रावं निरुणद्धि यदाऽनिलः । विना स्रावं विशुष्कं तत्स्नाय्वर्मेति प्रकीर्तितम् ।" अर्थात् प्रस्तार्यम का स्राव जब वायु से सूख जाता है और वह सूखकर कठिन हो जाता है उसे ही स्नाय्वर्म कहते हैं ।) यह सन्निपातज होता है ।

अथ शुक्तिकामाह—

श्यावाः स्युः पिशितनिभास्तु बिन्दवोये
शुक्त्याभास्त्वसितसिताः स शुक्तिसंज्ञः ॥

आंख के श्वेत भाग में जो मांस के समान कान्ति वाले पाण्डु श्याम रंग के बिन्दु हो जाते हैं तथा काले श्वेत रंग के जल की सीप के समान बिन्दु होते हैं उन्हें शुक्तिका कहते हैं । यह पित्तज होता है ।

अथार्जुनमाह—

एको यः शशरुधिरोपमश्च बिन्दुः शुक्लस्थो भवति तदर्जुनं वदन्ति ६७॥

श्वेत भाग में उत्पन्न हुआ २, शशक के खून के समान लालरंग का एक ही बिन्दु अर्जुन कहाता है । यह रक्तज होता है ॥ ६७ ॥

अथ पिष्टकमाह—**श्लेष्ममारुतकोपेन शुक्ले मांसं समुन्नतम् ।**
पिष्टवत्पिष्टकं विद्धि मलाक्तादर्शसंनिभम् ॥ ६८ ॥

कफ तथा वायु के कोप से शुक्लभाग में उभरे हुए पीठी के समान श्वेत काले से रंग के मांस को जो मैल से भरे शीशे के समान कुछ २ मैला तथा श्वेत हो उसे पिष्टक कहते हैं ॥ ६८ ॥

अथ शिराजालमाह—

जालाभः कठिनशिरो महान्सरक्तः संतानः स्मृत इह जालसंज्ञितस्तु॥

ऊपर नीचे बुनी हुई रस्सियों के जाल के समान जो शिराओं से जाल बन गया हो, जिस में शिरायें कठिन हो गई हों, जो महान हों तथा लाल रंग का फैलाव हो, ऐसा जालवत् बिन्दु शिराजाल कहाता है । यह रक्त से होता है ॥ (बिन्दुशब्दोऽत्र सर्वत्रानुवर्त्तनीयः)

अथ शिरापिटिकामाह—

शुक्लस्थाः सितपिटिकाः शिरावृता या
स्ताब्रूयादसितसमीपजाः शिराजाः ॥ ६९ ॥

शुक्लभाग में उत्पन्न हुई श्वेत रंग की पिटिका अर्थात् फुंसी जो शिराओं से घिरी हुई हो तथा काले भाग के समीप ही श्वेत भाग में उत्पन्न हुई २ हो उसे शिरापिटिका कहते हैं ॥ (यह सन्निपातज होती है तथा साध्य होती है) ॥६९॥

अथ बलासग्रथितमाह—

कांस्याभोऽमृदुरथ वारिबिन्दुकल्पो विज्ञेयो नयनसिते बलाससंज्ञः ७०

कांसी के पात्र के समान है आभा वाली अर्थात् श्वेत रंग का, कठिन, पानी की बूंद के समान फूला हुआ नेत्र के श्वेत भाग में हुआ २ फोला बलासग्रथित कहाता है ॥ ७० ॥ इति शुक्लभागजा रोगाः ॥

अथ वर्त्मपद्मजाः[1] ।

तत्रत्यानां रोगाणां नामानि संख्यां चाऽऽह—

उत्सङ्गिन्यथ कुम्भीका पोथकी वर्त्मशर्करा ।
तथाऽर्शोवर्त्म शुष्कार्शस्तथैवाञ्जननामिका ॥ ७१ ॥
बहलं वर्त्म यच्चापि तथोक्तो वर्त्मबन्धकः ।
क्लिष्टवर्त्म तथा वर्त्मकर्दमः श्याववर्त्म च ॥ ७२ ॥

उत्सङ्गिनी, कुम्भीका, पोथकी, वर्त्मशर्करा, अर्शोवर्त्म, शुष्कार्श, अञ्जननामिका, बहुलवर्त्म, वर्त्मबन्धक, क्लिष्टवर्त्म, वर्त्मकर्दम, श्याववर्त्म ॥७२॥

प्रक्लिन्नवर्त्म चाक्लिन्नवर्त्म वातहतं च तत् ।
वर्त्मार्बुदं निमेषश्च शोणितार्शस्तथैव च ॥ ७३ ॥

प्रक्लिन्नवर्त्म, अक्लिन्नवर्त्म, वातहत, वर्त्मार्बुद, निमेष, शोणितार्श ॥७३॥

लगणो बिसवर्त्मापि कुञ्चनं नाम तत्परम् ।
एकविंशतिरित्येते विकारा वर्त्मसंश्रयाः ॥ ७४ ॥

लगण, बिसवर्त्म, कुञ्चन ये २१ रोग वर्त्म में होते हैं ॥ ७४ ॥

अथ तेषूत्सङ्गपिटिकामाह—**अभ्यन्तरमुखी ताम्रा बाह्यतो वर्त्मनश्च या ।**
सोत्सङ्गोत्सङ्गपिटिका सर्वजा स्थूलकण्डुरा॥ ७५॥

नेत्रों के आवरण अर्थात् दोनों पलकों को वर्त्म कहते हैं। उन पलकों के अन्दर ही एक पिड़िका होती है जिस का मुंह पलकों के अन्दर होता है, यह तांबे के रंग की होती है, और पलकों के बाहर की ओर को उभरी हुई होती है। (बाहर पलकों के स्पर्श से प्रतीत होती है)। यह त्रिदोष से उत्पन्न हुई २ होती है, स्थूल तथा खुजली युक्त होती है। इसे उत्सङ्गपिटिका या उत्सङ्गिनी कहते हैं ॥ ७५॥

अथ कुम्भीकामाह—**वर्त्मान्तःपिटिका ध्माता भिद्यन्ते च स्रवन्ति च ।**
कुम्भीकाबीजसदृशा कुम्भीकाः संनिपातजाः॥७६॥

पलकों के अन्दर बहुत सी पिड़िकायें अपने आप भरकर फूटती तथा स्राव करती हों। वे पिड़िकायें कुम्भीका के बीजों के समान जो अनार के फल के बीजों के समान होते हैं, होती हैं, उन्हें कुम्भीका पिडिका कहते हैं ये सन्निपात से उत्पन्न होती है (कुम्भीका, कच्छदेश में उत्पन्न होनेवाली अनार के फलों के

---

१. वर्त्मनाम नेत्राच्छादकं चर्मपुटम् ।

समान आकारवाले फलों की बेल होती है, उस के बीजों के समान पिड़िका हों। अथवा "कुम्भीकबीज" पाठ हो तो कुम्भीक का अर्थ कुम्भाण्डुलता होता है, इस बेल के बीज भी अनार के बीजों के सदृश होते हैं) ॥ ७६ ॥

अथ पोथकीमाह—स्राविण्यः कण्डुरा गुर्व्यो रक्तसर्षपसंनिभाः।
रुजावत्यश्च पिटिकाः पोथक्य इति संज्ञिताः ॥७७॥

जो पिड़िकायें पलकों के अन्दर उत्पन्न हुई २ हों, बहुत स्राव बहाती रहें, जिन में खुजली होती हो, जो गौरवयुक्त अर्थात् कुछ भारी हों, लाल सरसों के समान आकारवाली हों, तथा पीड़ा करती हों उन्हें पोथकी कहते हैं ॥ ७७॥

अथ वर्त्मशर्करामाह—पिटिकाभिः सुसूक्ष्माभिर्घनाभिरभिसंवृता।
पिटिका या खरा स्थूला वर्त्मस्था वर्त्मशर्करा॥७८

आंखों के वर्त्म अर्थात् पलकों में जो एक पिड़िका कठोर स्पर्शवाली तथा स्थूल हो तथा सूक्ष्म २ अनेक कठिन पिड़िकाओं से घिरी हुई हो उसे वर्त्मशर्करा कहते हैं ॥ ७८ ॥

अथार्शोवर्त्माऽऽह—एर्वारुबीजप्रतिमाः पिटिका मन्दवेदनाः।
श्लक्ष्णाः खराश्च वर्त्मस्थास्तदर्शोवर्त्म कीर्त्यते ॥७९॥

ककड़ी के बीज के समान पिड़िकायें, मन्द वेदनावाली तथा चिकनी और कठोर जो पलकों के बाहर वा बीच में उत्पन्न होजाती हैं उन्हें अर्शोवर्त्म कहते हैं॥

तथा च निमिः—नीरुजा कठिना वर्त्मपक्ष्मान्ते बाह्यगाऽपि वा।
पिटिका संनिपातेन तदर्शोवर्त्म कीर्तयेत्॥

आंखों के पलकों के अन्दर की ओर या बाहर की ओर जो पिड़िका पीड़ारहित तथा कठिन हो उसे अर्शोवर्त्म कहते हैं, यह सन्निपात से होती है ॥

अथ शुष्कार्श आह—दीर्घाङ्कुरः खरः स्तब्धो दारुणोऽभ्यन्तरोद्भवः।
व्याधिरेषोऽभिविख्यातः शुष्कार्शो नाम नामतः॥८०॥

लम्बा अंकुर, जो कर्कश तथा कठोर हो, अति दुःखदायी हो और पलकों के अन्दर हो गया हो इसे शुष्कार्श कहते हैं (यह सन्निपातजरोग है तथा साध्य है)॥

अथाञ्जननामिकामाह—दाहतोदवती ताम्रा पिटिका वर्त्मसंभवा।
मृद्वी मन्दरुजा सूक्ष्मा ज्ञेया साञ्जननामिका ॥८१

जो पिडिका पलकों में उत्पन्न हो उसमें दाह तथा शूल हो, तांबे के समान लाल रंगवाली हो, कोमल हो, मन्द २ पीड़ा वाली हो, सूक्ष्म हो उसे अञ्जननामिका कहते हैं (यह रक्तज तथा साध्य होती है) ॥ ८१ ॥

अथ बहलवर्त्माऽऽह—वर्त्मोपचीयते यस्य पिटिकाभिः समन्ततः।
सवर्णाभिः स्थिराभिश्च विद्याद्बहलवर्त्म तत् ॥८२॥

जिसकी पलकें अर्थात् वर्त्म चारों ओर से पिड़िकाओं से भर जायें। वे पिड़ि-

कायें त्वचा के समान लाल रंगवाली हों तथा स्थिर हों उसे बहलवर्त्मरोग कहते हैं। (यह सन्निपात से होता है) ॥ ८२ ॥

अथ वर्त्मबन्धकमाह—कण्डुरेणाल्पतोदेन वर्त्मशोफेन मानवः।
असमं छादयेदक्षि यत्रासौ वर्त्मबन्धकः ॥ ८३ ॥

जब पलकें सूज जायें और उनमें खुजली और थोड़ा २ शूल भी होता हो और आंख बन्द करते समय आंख पूरी बन्द न हो वर्त्मबन्धक कहते हैं। (यह भी सन्निपातज होता है) ॥ ८३ ॥

अथ क्लिष्टवर्त्माऽऽह—मृद्वल्पवेदनं ताम्रं यद्वर्त्म सममेव च।
अकस्माच्च भवेद्रक्तं क्लिष्टवर्त्मेति तद्विदुः ॥८४॥

जब वर्त्म या पलकें कोमल, अल्प वेदना वाली, तांबे के रंग की तथा समान हों अर्थात् सूजी हुई न हो परन्तु अकस्मात् ही लाल हो जायें उसे क्लिष्टवर्त्म कहते हैं। (यह कफरक्तज होता है) ॥ ८४ ॥

तथा च निमिः—श्लेष्मा दुष्टेन रक्तेन क्लिष्टमांसगतः समम्।
बन्धुजीवनिभं वर्त्म क्लिष्टवर्त्म तदुच्यते ॥

दूषित रक्त से मिलकर कफ कष्टदायक पलकों के मांस में पहुंचकर दोनों पलकों को समावस्था में रखता हुआ अर्थात् सूजन के बिना ही बन्धुजीव अर्थात् दुपहरिया के फूल के समान लाल रंग की पलकों को कर दें उसे क्लिष्टवर्त्म कहते हैं॥

अथ वर्त्मकर्दममाह—क्लिष्टं पुनः पित्तयुतं शोणितं विदहेद्यदा।
तदा क्लिन्नत्वमापन्नमुच्यते वर्त्मकर्दमम् ॥ ८५ ॥

पूर्व लिखे हुए क्लिष्टवर्त्म को जब पित्तयुक्त रक्त दूषित होकर जला देता है तब वही वर्त्म क्लिन्न अर्थात् भीग जाते हैं उसे ही वर्त्मकर्दम रोग कहते हैं ॥ ८५ ॥

अथ श्याववर्त्माऽऽह—वर्त्म यद्बाह्यतोऽन्तश्च श्यावं शूनं च जायते।
तदाहुः श्याववर्त्मेति वर्त्मरोगविशारदाः ॥८६॥

जब वर्त्म अन्दर तथा बाहर से श्याव अर्थात् श्याम रंग का हो जाये तथा सूज जाये तो उसे वर्त्मरोग के ज्ञानी वैद्य श्याववर्त्म कहते हैं ॥ ८६ ॥

तथा च निमिः—दुष्टं श्लेष्मानिलात्पित्तं वर्त्मनोश्चीयते यदा।
अग्निदग्धनिभं श्यावं श्याववर्त्मेति तद्विदुः ॥ ८७ ॥

दुष्ट हुए कफ तथा वायु से जब वर्त्मों में पित्त बढ़ जाता है। तब अग्नि से जले हुए के समान काले रंग के वर्त्म या पपोटे हो जाते हैं, इन्हें श्याववर्त्म कहते हैं

अथ प्रक्लिन्नवर्त्माऽऽह—अरुजं बाह्यतः शूनं वर्त्म यस्य नरस्य च।
प्रक्लिन्नवर्त्म तद्विद्यात्क्लिन्नमत्यर्थमन्ततः ॥ ८८॥

जिस मनुष्य के वर्त्म पीड़ा रहित हों, बाहर से सूजे हुए हों तथा अन्दर से अत्यन्त क्लिन्न या भीगे हुए हों उसे प्रक्लिन्नवर्त्म रोग कहते हैं ॥ ८८ ॥

अथाक्लिन्नवर्माऽऽह—यस्य धौतान्यधौतानि संबध्यन्ते पुनःपुनः।
वर्मान्यपरिपक्वानि विद्यादक्लिन्नवर्त्म तत् ॥८९॥

जिस मनुष्य के वर्त्म या पलकें धोने से वा बिना धोने से भी बार २ एक दूसरे से चिपक जाते हों तथा पके हुए भी न हों उसे अक्लिन्नवर्त्म कहते हैं ॥८९॥

अथ वातहतवर्माऽऽह—विमुक्तसंधि निश्चेष्टं वर्त्म यस्य निमील्यते।
तद्वातनिहतं वर्त्म जानीयादक्षिचिन्तकः ॥९०॥

जो वर्त्म सन्धिमुक्त होकर निश्चेष्ट अर्थात् क्रिया शक्ति रहित होकर स्वयं ही बन्द हो जावे उसे अक्षिचिकित्सक वैद्य (Eye specialist) वातहतवर्त्म कहते हैं। (यह असाध्य है। "न मील्यते ऐसा भी कहीं २ पाठ है अर्थात् पलकें खुली ही रह जाती हैं बन्द नहीं होती। अभिप्राय एक ही है अर्थात् पलकें काम नहीं कर सकतीं। न खुल सकती हैं न बन्द हो सकती हैं। परन्तु "निमील्यते" अर्थात बन्द ही रहती हैं। यह पाठ उचित है और यही लोक में दिखाई भी देता है) ॥ ९० ॥

अथ वर्मार्बुदमाह—वर्मान्तरस्थं विषमं ग्रन्थिभूतमवेदनम्।
आचक्षतेऽर्बुदमिति सरक्तमविलम्बितम् ॥ ९१ ॥

वर्त्म के अन्दर ऊंचा नीचा गांठदार, पीड़ारहित, लाल, शीघ्र उत्पन्न हुआ२ अर्बुद होता है उसे वर्मार्बुद कहते हैं॥ (कहीं "अवलम्बितं" पाठ भी है, उस का अर्थ लटकता हुआ है यह सन्निपात से होता है ॥) ॥ ९१ ॥

अथ निमेषमाह—निमेषणीः शिरा वायुः प्रविष्टः संधिसंश्रयः।
संचालयति वर्मानि निमेषः स न सिध्यति ॥९२॥

वर्त्म तथा शुक्लभाग की संधियों में स्थित निमेष करानेवाली अर्थात् आंख बन्द करने वाली शिराओं में प्रविष्ट हुआ २ व्यान वायु वर्त्मों को खूब चलाता है। अर्थात् पलकें बार २ झपकती रहती हैं, यह रोग असाध्य है ॥ ९२ ॥

अथ शोणितार्शोलक्षणमाह—वर्त्मस्थो यो विवर्धेत लोहितो मृदुरङ्कुरः।
तद्रक्तजं शोणितार्शश्छिन्नं वाऽपि विवर्धते ॥९३॥

वर्त्मों के अन्दर जो लाल रंग का कोमल मांस का अंकुर बढ़ता जाये, यदि उसे काट दें तो भी बढ़ता रहे उसे रक्तज समझो। इसे शोणितार्श रोग कहते हैं॥९३॥

तथा च विदेहः—वायुः शोणितमादाय शिराणां प्रमुखे स्थितः।
जनयत्यङ्कुरं ताम्रं वर्त्मनि च्छिन्नरोहिणम्।
तच्छोणितार्शोऽसाध्यं स्याद्रक्तस्राव्यथरक्तजम् (नीरुजम्) ॥९४॥

वायु रक्त को साथ लेकर शिराओं के सन्मुख स्थित होकर तांबे के रंग का मांसांकुर वर्त्म में उत्पन्न कर देता है, जो काटने से फिर २ निकलता रहता है। उसे शोणितार्श कहते हैं वह रक्त से उत्पन्न हुआ २ होता है तथा वह पीड़ा रहित होता है ॥ ९४ ॥

अथ लगणमाह—अपाकी कठिनः स्थूलो ग्रन्थिर्वर्त्मभवोऽरुजः ।
सकण्डूः पिच्छिलः कोलप्रमाणो लगणः स्मृतः ॥९५॥

जो गांठ वर्त्म में हो जाये, जो पकती न हो, कठिन हो, स्थूल हो, पीड़ारहित हो, कण्डुयुक्त तथा पिच्छिल हो, तथा बेर के समान हो उसे लगण कहते हैं ॥ (यह रोग कफ से उत्पन्न होता है) ॥ ९५ ॥

अथ बिसवर्त्माऽऽह—त्रयो दोषा बहिः शोथं कुर्युश्छिद्राणि वर्त्मनाम् ।
प्रस्रवन्त्यन्तरुदकं बिसवद्बिसवर्त्म तत् ॥ ९६ ॥

तीनों दोष वर्त्मों के बाहर सूजन कर देते हैं, वर्त्मों के अन्दर भिस के समान छिद्र होजाते हैं जिन में से पलकों के अन्दर पानी निकलता रहता है उस रोग को बिसवर्त्म कहते हैं ॥ ९६ ॥

अथ कुञ्चनमाह—वाताद्या वर्त्मसंकोचं जनयन्ति मला यदा ।
तदा द्रष्टुं न शक्नोति कुञ्चनं नाम तद्विदुः ॥ ९७ ॥

जब वातादि दोष वर्त्मों के संकोच को कर देते हैं अर्थात् पलकों को संकुचित कर देते हैं तब रोगी आंखों से देख नहीं सकता । इसे कुञ्चन नामक रोग कहते हैं ॥ (इस रोग को सुश्रुत ने नहीं पढ़ा है । हां श्रीमाधवकर ने माधवनिदान में न जाने किस ग्रन्थ से लेकर लिख दिया है । सुश्रुत ने इस के स्थान में "पक्ष्म-कोप" रोग पढ़ा है) ॥ ९७ ॥ इति वर्त्मरोगाः ॥

अथ पक्ष्मरोगौ ।

तत्रत्ययो रोगयोर्नामनी आह—

पक्ष्मकोपः पक्ष्मशातो रोगौ द्वौ पक्ष्मसंश्रयौ ॥

पक्ष्म अर्थात् पलकों के बालों के अन्दर रहनेवाले दो रोग और भी कहे हैं, पक्ष्म कोप तथा पक्ष्मशात ॥

अथ तत्र पक्ष्मकोपमाह—प्रचालितानि वातेन पक्ष्माण्यक्षि विशन्ति हि ।
असिते सितभागे च मूलकोशात्पतन्त्यपि ॥ ९८ ॥

वायु से प्रचालित किये हुए पलकों के बाल आंखों के अन्दर की ओर घुसने लगते हैं अर्थात् पलकों के अन्दर की ओर उत्पन्न हो जाते हैं । वे बाल काले तथा श्वेत भाग पर लगते हैं तथा अपने मूल स्थान से उखड़कर गिरते भी रहते हैं तथा नहीं भी गिरते ॥ ९८ ॥

घृष्यन्त्यक्षि मुहुस्तानि संरम्भं जनयन्ति च ।
पक्ष्मकोपः स विज्ञेयो व्याधिः परमदारुणः ॥ ९९ ॥

वे बार २ आंखों को घिसते हैं तथा वहां शोथ उत्पन्न कर देते हैं । इस रोग को पक्ष्मकोप कहते हैं । यह परम भयंकररोग है । पड़वाल भी इसे कहते हैं॥

अथ पक्ष्मशातमाह—वर्त्मपक्ष्माशयगतं पित्तं रोमाणि शातयेत् ।
कण्डूं दाहं च कुरुते पक्ष्मशातं तमादिशेत् ॥१००॥

पलकों के बालों के आशय के अन्दर पहुंचा हुआ पित्तरोमों को गिरा देता है। खुजली तथा दाह को उत्पन्न कर देता है इसे पक्ष्मशात रोग कहते हैं॥ यह रोग भी वर्त्मरोगों के अन्दर ही समावेश हो सकते हैं क्योंकि वर्त्मों के ही आश्रित होते हैं। यह रोग भी सुश्रुत ने नहीं पढ़ा है)॥ १००॥ इति पक्ष्मरोगौ। इति वर्त्मपक्ष्मजाः॥

अथ संधिरोगाः।

तत्र संधयः षट् तानाह—**पक्ष्मवर्त्मगतः संधिर्वर्त्मशुक्लगतोऽपरः।
शुक्लकृष्णगतस्त्वन्यः कृष्णदृष्टिगतोऽपि च॥
ततः कनीनिकागतः षष्ठश्चापाङ्गसंश्रितः॥ १०१॥**

पक्ष्म तथा वर्त्म के अन्दर एक सन्धि होती है, वर्त्म तथा शुक्लभाग के मध्य में दूसरी सन्धि होती है। शुक्ल तथा कृष्ण भाग के मध्य में तीसरी सन्धि होती है, कृष्ण तथा दृष्टि अर्थात् पुतली के मध्य में चौथी सन्धि होती है। तथा कनीनिका के अन्दर अर्थात् नाक के पास आंख के भाग की सन्धि एक पांचवीं सन्धि होती है, तथा अपांगसन्धि अर्थात् आंख की पूंछ के नीचे नेत्र के अन्त का कोना या भाग अपांग कहाता है उसकी सन्धि को अपांग सन्धि कहते हैं। यह छठी सन्धि है॥ १०१॥

तत्रस्थानां रोगाणां नामानि संख्यां चाऽऽह—

**पूयालसः सोपनाहः स्रावाश्चत्वार एव च।
पर्वणीकाऽलजी जन्तुग्रन्थिः संधौ नवाऽऽमयाः॥ १०२॥**

पूयालस, उपनाह, चार प्रकार के स्राव, पर्वणिका, अलाजी, जन्तुग्रन्थि ये नौ रोग सन्धियों में होते हैं॥ १०२॥

अथ तेषु पूयालसमाह—

पक्वः शोथः संधिजो यः सतोदः स्रवेत्पूयं पूति पूयालसाख्यः॥

जो सन्धि में हुआ २ शोथ पक गया हो, जिसमें तोद या शूल हो जिसमें से दुर्गन्धित पीप निकलती हो उसे पूयालस रोग कहते हैं। यह कनीनिका सन्धि अर्थात् नाक के पास जो आंखों के सिरे से मिली हुई सन्धि होती है उसमें होता है॥

अथोपनाहमाह—

ग्रन्थिर्नाल्पो दृष्टिसंधावपाकी कण्डूप्रायो नीरुजश्चोपनाहः॥१०३॥

दृष्टि सन्धि में होने वाली गांठ जो बड़ी हो, जो पकती न हो, जिसमें प्रायः खुजली होती हो, और जिसमें पीड़ा न होती हो उसे उपनाह कहते हैं। (इसमें वातश्लेष्म का कोप रहता है)॥ १०३॥

अथ स्रावाणां संप्राप्तिमाह—

**गत्वा संधीनश्रुमार्गेण दोषाः कुर्युः स्रावाँल्लक्षणैः स्वैरुपेतान्।
तं हि स्रावं नेत्रनाडीति चैके तस्या लिङ्गं कीर्तयिष्ये चतुर्धा॥१०४॥**

आंसुओं के मार्ग से अर्थात् आंसुओं के बहाने वाली धमनियों के मार्ग से दोष सन्धियों में जाकर अर्थात् सारे नेत्र के अन्दर गई हुई चारों सन्धियों में जाकर अपने २ वातादि लक्षणों से युक्त स्रावों को करते हैं। उस स्राव को अनेक वैद्य नेत्रनाड़ी कहते हैं। उसके चार भेद लक्षणों के सहित आगे लिखते हैं॥१०४॥

अथ पैत्तिकं स्रावमाह—

हरिद्राभं पीतमुष्णं जलं वा पित्तस्रावः संस्रवेत्संधिमध्यात् ॥

जब सन्धियों में से हल्दी के रंग का पीला २ गरम जल निकलता हो तो पैत्तिकस्राव कहाता है॥

अथ श्लेष्मस्रावमाह—

श्वेतं सान्द्रं पिच्छिलं यः स्रवेत्तु श्लेष्मस्रावोऽसौ विकारः प्रदिष्टः१०५

जब सन्धियों में से श्वेत रंग का गाढ़ा, पिच्छिल स्राव निकले तो उसे श्लेष्मस्राव कहते हैं॥ १०५॥

अथ संनिपातस्रावमाह—

शोथः संधौ संस्रवेद्यस्तु पक्वः पूयं स्रावः सर्वजः संमत सः॥

जब सन्धियों में शोथ हो जाये और वह पककर पीप को बहाता हो उसे सन्निपातज स्राव कहते हैं॥

अथ रक्तस्रावमाह—

रक्तस्रावः शोणिताद्यो विकारो गच्छेद्दुष्टं तत्र रक्तं प्रभूतम् ॥१०६॥

जो रक्त से रक्तस्राव हुआ हो उसमें दूषित हुआ २ खून बहुत निकलता रहता है॥ १०६॥

अथ पर्वणीकालज्यावाह—

ताम्रा तन्वी दाहपाकोपपन्ना रक्ताज्ज्ञेया पर्वणी वृत्तशोफा।
जाता संधौ कृष्णशुक्लेऽलजी स्यात्तस्मिन्नेव व्याहृता पूर्वलिङ्गैः॥१०७॥

कृष्ण तथा शुक्ल भाग की सन्धि में तांबे के रंग की सूक्ष्म, दाह तथा पाक वाली, गोल २ सूजी हुई एक फुंसी हो जाती है इसे पर्वणी कहते हैं। यह रक्त से उत्पन्न होती है। और उसी सन्धि में (प्रमेहरोग में कहे हुए समान लक्षणों से युक्त) अलजी नामक पिड़िका होती है। (त्रिदेह ने लिखा है—"कफपित्ते तु सम्मूर्च्छ्य सह रक्तेन मारुतः। शुक्लकृष्णान्तः सन्धौ तु जनयेद्गोस्तनाकृतिम्। पिड़िकामलजीं तां तु विद्धि तोदाश्रुसंकुलाम्।" अर्थात् त्रिदोषों सहित रक्त कुपित होकर सन्धि स्थान में गोस्तन के सदृश या दाख के सदृश एक पिड़िका आंख में कर देता है इसे अलजी कहते हैं। इसमें तोद अर्थात् शूल सा चुभना तथा आंसुओं का बहना अधिक होता रहता है) ॥ १०७॥

अथ जन्तुग्रन्थिमाह—

जन्तुग्रन्थौ वर्त्मनः पक्ष्मणश्च कण्डूं कुर्युर्जन्तवः संधिजाताः।

नानारूपा वर्त्मशुक्लान्तसंधौ चरन्त्यन्तर्लोचनं दूषयन्तः ॥ १०८ ॥

वर्त्म तथा पक्ष्म की सन्धि में उत्पन्न होकर नाना रूप के जन्तु अर्थात् सूक्ष्म कृमि वर्त्म तथा पक्ष्मों में खुजली को उत्पन्न कर देते हैं । फिर वे ही जन्तु वर्त्म तथा शुक्लभाग के मध्य की सन्धि में जाकर विचरते हैं तथा अन्दर से आंखों को दूषित कर देते हैं । (विदेह ने भी लिखा है—" वर्त्मशुक्लस्यसन्धौ तु ग्रन्थिः पित्तकफात्मकः । ऊष्मणा पच्यते गाढं तत्र मूर्च्छन्ति जन्तवः । सुसूक्ष्मजातचरणा वर्त्मपक्ष्मसमाश्रयाः । ततस्ते पूयसंसृष्टाः पतन्ति कृमयस्तथा । लक्षणैर्विविधैर्युक्ताः सन्निपातसमुत्थिताः । क्रिमिग्रन्थिं तु तं विद्याद्देहिनां नेत्रदूषणम् ।" अर्थात् वर्त्म-शुक्लगत सन्धि में पित्त कफ से गांठ से उत्पन्न होकर पकती है उसमें कृमि हो जाते हैं । वे नाना प्रकार के सूक्ष्म कृमि वर्त्म तथा पक्ष्मों को आश्रय कर लेते हैं । फिर वहां भी पीप पड़कर कीड़े निकलते हैं । इस गांठ से नेत्र दूषित हो जाते हैं । " जन्तुग्रन्थौ " आदि श्लोक का अर्थ दो प्रकार से माधव के टीकाकार वाचस्पति वैद्य ने किया है । एक अर्थ से तो पहले वर्त्म शुक्लगत सन्धि में कीड़े उत्पन्न होकर पक्ष्मों की ओर जाते हैं, यही अर्थ विदेह से भी संगत है । दूसरा अर्थ वह है जो हमने इस श्लोक की टीका में लिखा है अर्थात् वर्त्म पक्ष्म गत सन्धि से ही पहले कृमि उत्पन्न होकर अन्दर की ओर जाते हैं । यह रोग सन्निपातज है) ॥ १०८ ॥ इति संधिजारोगाः ॥

अथ समस्तनेत्रजा रोगाः ।

तेषां नामानि संख्यां चाऽऽह—

स्यन्दाश्चतुष्का इह संप्रदिष्टाश्चत्वार एवेह तथाऽधिमन्थाः ।
पाकः सशोथः स च शोथहीनो हताधिमन्थोऽनिलपर्ययश्च ॥ १ ॥

चार प्रकार के स्यन्द या अभिष्यन्दरोग, चार प्रकार के अधिमन्थरोग, सशोथपाक, अशोथपाक, हताधिमन्थ, अनिलपर्यय या वातपर्यय ॥ १ ॥

शुष्काक्षिपाकस्त्विह कीर्तितश्च तथाऽन्यतो वात उदीरितश्च ।
दृष्टिस्तथाऽम्लाध्युषिता शिराणामुत्पातहर्षौ च समस्तनेत्रे ॥ २ ॥

शुष्काक्षिपाक, अन्यतोवात, अम्लाध्युषिता दृष्टि, शिरोत्पात, शिराहर्ष ये १७ रोग सारे नेत्र में होते हैं ॥ २ ॥

एवं समस्तनेत्रे स्युरामया दश सप्त च ।
तेषामिह पृथग्वक्ष्ये यथावल्लक्षणान्यपि ॥ ३ ॥

इस प्रकार से ये १७ रोग सारे नेत्र में होते हैं । इनके यथावत् लक्षण आगे लिखे जाते हैं ॥ ३ ॥

तत्राऽभिष्यन्दाश्चत्वार इत्याह—

वातात्पित्तात्कफाद्रक्तादभिष्यन्दश्चतुर्विधः ।
प्रायेण जायते घोरः सर्वनेत्रामयाकरः ॥ ४ ॥

वात, पित्त, कफ तथा रक्त से प्रायः चार प्रकार का अभिष्यन्द रोग होता है, वह भयंकर तथा सभी नेत्ररोगों को करने वाला होता है ॥ ४ ॥

तेषु वातिकमभिष्यन्दमाह—

निस्तोदनस्तम्भनरोमहर्षसंघर्षपारुष्यशिरोभितापाः।
विशुष्कभावः शिशिराश्रुता च वाताभिपन्ने नयने भवन्ति ५ ॥

वातज अभिष्यन्द रोग में आंखों में सुईयों के चुभने के समान शूल होता है, जड़ता होती है, रोम हर्ष होता है, पलकें घिसते रहते हैं, कठोरता होती है अर्थात् रूखापन होता है. सिर में पीड़ा हाती हैं। आंखों सूखी अर्थात् मैल नहीं आता है, ठण्डे २ आंसु या पानी निकलता है ॥ ५ ॥

अथ पैत्तिकमभिष्यन्दमाह—

दाहप्रपाकौ शिशिराभिनन्दा धूमायनं बाष्पसमुद्भवश्च।
उष्णाश्रुता पीतकनेत्रता च पित्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ६ ॥

पित्तज अभिष्यन्द रोग में दाह तथा पाक होते हैं, शीतल स्पर्श को मन चाहता है तथा आंख को शीतल स्पर्श अच्छा लगता है, धुंआं सा निकलता है, आंखों से आंसु निकलते हैं। गरम आंसु निकलते हैं, नेत्र पीले हो जाते हैं ॥६॥

अथ श्लैष्मिकमभिष्यन्दमाह—

उष्णाभिनन्दा गुरुताऽक्षिशोथः कण्डूपदेहावतिशीतता च।
स्रावो बहुः पिच्छिल एव चापि कफाभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ७ ॥

श्लेष्मा से हुए अभिष्यन्द रोग में आंखों को गरमी अच्छी लगती है, आंखें भारी तथा सूजन युक्त हो जाती है, खाज होती है, लिपालिपाहट होती है, आंखें अति शीतल होती हैं। आंखों से बहुत अधिक पिच्छिल स्राव होता रहता है ॥७॥

अथ रक्तजमभिष्यन्दमाह—

ताम्राश्रुता लोहितनेत्रता च राज्यः समन्तादतिलोहिताश्च।
पित्तस्य लिङ्गानि च यानि तानि रक्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ८ ॥

तांबे के रंग के समान आंसु निकलते हैं, लाल नेत्र होते हैं, चारों ओर आंखों में अति लाल २ लकीरें हो जाती हैं। तथा अन्य सभी पित्ताभिष्यन्द के लक्षण भी रक्ताभिष्यन्द में हो जाते हैं ॥ ८ ॥

अथाधिमन्थानामभिष्यन्दजन्यत्वमाह—

वृद्धैरेतैरभिष्यन्दैर्नराणामक्रियावताम्।
तावन्तस्त्वधिमन्थाः स्युर्नयने तीव्रवेदनाः ॥ ९ ॥

इन अभिष्यन्दों की यदि चिकित्सा न की जावे तो इनसे चारों प्रकार के अधिमन्थ रोग हो जाते हैं। इन अधिमन्थों से नेत्रों में तीव्र पीड़ा होती है ॥९॥

अथाधिमन्थानां सामान्यं लक्षणम्—

उत्पाट्यत इवात्यर्थं तथा निर्मथ्यतेऽपि च।

शिरसोऽर्धं तु तं विद्यादधिमन्थं स्वलक्षणैः ॥ १० ॥

सिर का आधा भाग मानो कोई उखाड़ रहा हो तथा मथित अर्थात् मथानी के समान मानों चलायमान होता हो उसे अपने लक्षणों अर्थात् वातिक आदि अभिष्यन्द में कहे लक्षणों से युक्त अधिमन्थ रोग समझो ॥ १० ॥

स चाधिमन्थो यदात्मको यावता कालेन मिथ्याचाराद्दृष्टिं हन्ति तदाह—

हन्याद्दृष्टिं श्लैष्मिकः सप्तरात्राद्याधिर्घोरो रक्तजः पञ्चरात्रात्।
षड्रात्राद्वा वातिको वै निहन्यान्मिथ्याचारात्पैत्तिकेः सद्य एव ११॥

श्लेष्मज अधिमन्थ सात रात में दृष्टि नष्ट होजाती है। तथा पांच रात में रक्तजनित भयंकर अधिमन्थ से दृष्टि नष्ट होजाती है। छह रात में वातिक अभिष्यन्द दृष्टि को नष्ट कर देता है। और पित्तजाभिष्यन्द में मिथ्या अर्थात् अहित आचार करें तो तुरन्त ही दृष्टि नाश होजाती है ॥ ११ ॥

अथ सशोथं पाकमाह—कण्डूपदेहाश्रुयुतः पक्वोदुम्बरसंनिभः।
संरम्भी पच्यते यस्तु नेत्रपाकः सशोथकः ॥१२॥

खुजली से युक्त, आंसुओं से युक्त, पके हुए गूलर के समान, शोथ से युक्त जो नेत्र पक जाते हैं वह रोग सशोथ नेत्रपाक कहाता है ॥ १२ ॥

अथाशोथपाकमाह—शोथहीनानि लिङ्गानि नेत्रपाके त्वशोथके ॥

अशोथक नेत्रपाक में शोथहीन सभी लक्षण होते हैं ॥

अथ हताधिमन्थमाह—

उपेक्षणादक्षि यदाऽधिमन्थो वाताधिकः शोषयति प्रसह्य ॥
रुजाभिरुग्राभिरसाध्य एष हताधिमन्थः खलु नाम रोगः ॥ १३ ॥

उपेक्षा अर्थात् बिना चिकित्सा किये हुए वाताधिक अधिमन्थ आंख को बल से सुखा देता है। यह रोग अत्यन्त पीड़ाओं से युक्त होता है और असाध्य होता है, इस का नाम हताधिमन्थ रोग कहाता है ॥ १३ ॥

अथ वातपर्ययमाह—वारं वारं च पर्येति भ्रुवौ नेत्रे च मारुतः।
रुजाभिः सह तीव्राभिः स ज्ञेयो वातपर्ययः ॥१४॥

दोनों भवों में तथा नेत्रों में बार २ वायु पर्याय से घूमता है अर्थात् कभी भवों में कभी नेत्रों में घूमता है। तथा तीव्र पीड़ायें करता है उसे वातपर्यय रोग कहते हैं ॥ १४ ॥

अथ शुष्काक्षिपाकमाह—

यत्कूणितं दारुणरूक्षवर्त्म संदह्यते चाऽविलदर्शनं यत्।
सुदारुणं यत्प्रतिबोधने च शुष्काक्षिपाकोपहतं तदक्षि ॥ १५ ॥

जो आंखों के बन्द करने पर कठिन तथा रूखा वर्त्म प्रतीत हो, जो जलता हो तथा जो आविल अर्थात् आकुल दिखाई देता हो तथा आंखों के खोलने पर

जो कठिन हो अर्थात् कठिनता से आंखें खुलती हों उसे शुष्काक्षिपाक रोग कहते हैं १५

अथान्यतोवातमाह—

यस्यावटूकर्णशिरोहनुस्थो मन्यागतो वाप्यऽनिलोऽन्यतो वा।
कुर्याद्रुजं वै भ्रुवि लोचने च तमन्यतोवातमुदाहरन्ति ॥ १६ ॥

जिस मनुष्य के "अवटू" अर्थात् गरदन के पीछे के भाग में, कान में, शिर में, हनु में, मन्याओं में स्थित वायु तथा अन्यत्र पीठादि स्थानो में स्थित वायु भ्रुओं में तथा नेत्रों में पीड़ा कर देती है उसे अन्यतोवातरोग कहते हैं ॥ १६ ॥

विदेहेनाप्युक्तम्—**मन्यानामन्तरे वायुरुत्थितः पृष्ठतोऽपि वा।**
करोति भेदं निस्तोदं शङ्खे चाक्ष्णोर्भ्रुवोस्तथा ॥ १७ ॥

मन्या अर्थात् ग्रीवा के दोनों पार्श्वों की दो शिराओं में वा पीठ में से उठा हुआ वायु शंख में, आंखों में तथा भौंहों में भेद अर्थात् तोड़ने की सी पीड़ा करता है तथा "निस्तोद" अर्थात् सुई चुभोने की सी पीड़ा को करता है ॥ १७ ॥

तमाहुरन्यतोवातं रोगं दृष्टिविदो जनाः ॥ १८ ॥

इस रोग को आंखरोग के ज्ञानी Eye specialist अन्यतो वातरोग कहते हैं१८

अथाम्लाध्युषितमाह—**श्यावं लोहितपर्यन्तं सर्वमक्षि प्रपच्यते।**
सदाहशोथं सास्रावमम्लाध्युषितमम्लतः ॥ १९ ॥

जिस रोग में सारी आंख श्याव अर्थात् कुछ नीले रंग की होजाती है तथा अन्त के भाग लाल रंग के होजाते हों तथा सारी आंख पक गई हो, दाह तथा शोथ हो तथा स्राव बहता हो उस रोग को अम्लाध्युषित कहते हैं। यह रोग अम्ल अर्थात् खट्टे रस के अधिक खाने से होता है ॥ १९ ॥

अथ शिरोत्पातमाह—

अवेदना वाऽपि सवेदना वा यस्याक्षिराज्यो हि भवन्ति ताम्राः।
मुहुर्विरज्यन्ति च याः स तादृग्व्याधिः शिरोत्पात इति प्रदिष्टः २०॥

वेदना से रहित वा वेदना से युक्त हुई २ जिस मनुष्य की आंख की नसें तांबे के समान लाल रंग की होगई हों तथा बार २ विशेष लाल रंग की होजाती हों उस रोग को शिरोत्पातरोग कहते हैं ॥ २० ॥

अथ शिराप्रहर्षमाह—

मोहाच्छिरोत्पात उपेक्षितस्तु जायेत रोगः स शिराप्रहर्षः।
ताम्राभमस्रं स्रवति प्रगाढं तथा न शक्नोत्यभिवीक्षितुं च ॥ २१ ॥

यदि मोहवश शिरोत्पात की उपेक्षा की जाये तो शिराप्रहर्षरोग होजाता है। उस में तांबे के रंग के समान नेत्रों से लाल २ गाढ़ा पानी गिरता है और मनुष्य देख नहीं सकता। इस रोग को शिराप्रहर्षरोग कहते हैं ॥ २१ ॥

अथ नेत्रस्य सामतालक्षणमाह—

उदीर्णवेदनं नेत्रं रागशोफसमन्वितम्।

घर्षनिस्तोदशूलाश्रुयुक्तमामान्वितं विदुः ॥ २२ ॥

जिस नेत्र में वेदना अर्थात् पीड़ा बढ़ी हुई हो, राग अर्थात् पीला लाल आदि रंग नेत्रों का होगया हो, तथा नेत्रों में सूजन होगई हो। घर्ष अर्थात् कुछ रगड़ सी प्रतीत हों, सूईयें सी चुभती प्रतीत हों, शूल हो, आंसु आते हों ऐसे नेत्र को आम नेत्र कहते हैं ॥ २२ ॥

अथ नेत्रस्य निरामतालक्षणमाह—

मन्दवेदनता कण्डूः संरम्भाश्रुप्रशान्तता।
प्रसन्नवर्णता चाक्ष्णोर्निरामस्य च लक्षणम् ॥ २३ ॥

जब वेदना मन्द हो, आंखों में खुजली हो, सूजन तथा आंसु प्रशान्त हों, आंखों का रंग प्रसन्न हो अर्थात् स्वच्छ हो, इस अवस्था में आंखें निराम कहाती हैं ॥ २३ ॥ इति नेत्रजा रोगाः ॥

अथ नेत्ररोगाणां चिकित्सा।

तथा च तन्त्रान्तरे—सेको दिनानि चत्वारि लङ्घनं भोजने रसः।
स्वादुस्तिक्तश्च लेपश्च बाष्पस्वेदनमेव च ॥
एतानि नेत्ररोगाणां सामानां पाचनानि हि ॥ १ ॥

आंखों के सिंचन करना, चार दिन लंघन करना, भोजन में मधुर तथा तिक्तरस खाना, भाप का स्वेद देना ॥ १ ॥

अञ्जनं सर्पिषः पानं कषायं गुरुभोजनम्।
नेत्ररोगेषु सामेषु स्नानं च परिवर्जयेत् ॥ २ ॥

ये सभी बातें नेत्ररोगों की आमावस्था की पाचन हैं ॥ नेत्ररोगों की साम अवस्था में आंखों में अंजन लगाना, घी का पीना, कषाय रस पीना तथा भारी भोजन करना तथा स्नान करना ये सभी बातें वर्जित हैं ॥ २ ॥

अथ लंघने नेत्ररोगाणां शान्तिः—

अक्षिकुक्षिभवा रोगाः प्रतिश्यायव्रणज्वराः।
पञ्चैते पञ्चरात्रेण रोगा नश्यन्ति लङ्घनात् ॥ ३ ॥

आंख के रोग, कुक्षि अर्थात् पेट के रोग, प्रतिश्याय, व्रण तथा ज्वररोग, ये पांचों रोग पांच रात तक उपवास करने से नष्ट होजाते हैं ॥ ३ ॥

षट्सप्ततिर्लोचनजा विकारास्तेषामभिष्यन्दसमुद्भवानाम्।
श्लेष्माश्रयत्वादिह लङ्घनं प्राक्प्रशस्यते मुद्गरसौदनं च ॥ ४ ॥

आंखों के रोग ७६ हैं, उन में से जो रोग अभिष्यन्द से उत्पन्न होते हैं, उन में से जो रोग अभिष्यन्द से उत्पन्न होते हैं, उन में श्लेष्मा का आश्रय होने से पहले लंघन कराना ही प्रशस्त है, भोजन में मूंग का रस तथा चावलों का भात दें ॥ ४ ॥

सामे चक्षौनिषिद्धकर्माणि—अञ्जनं पूरणं क्वाथपानमामे न शस्यते।
आ चतुर्थाद्दिनादाममभिष्यन्देऽपि लोचनम् ॥५॥

आम चक्षु में अंजन करना, आंखों में औषध पूरन करना, क्वाथ पीना ये सब वर्जित हैं। अभिष्यन्दरोग में चौथे दिन तक आंख आम ही होती है ॥५॥

गण्डूषादिहीनानामक्षिरोगसंभवमाह—

गण्डूषाञ्जननस्यादिहीनानां कफकोपतः।
षट्सप्ततिर्नेत्ररोगा दुःसहाः स्युरुपेक्षिताः ॥ ६ ॥

गण्डूष धारण न करने वाले, अञ्जन न करनेवाले तथा नस्यादि न लेनेवाले मनुष्यों को कफ के कोप से तथा उपेक्षा करने से ७६ प्रकार के भयंकर नेत्ररोग हो जाते हैं ॥ ६ ॥

अथ उपचाराः—सेकः आश्चोतनं पिण्डी बिडालस्तर्पणं तथा।
पुटपाकोऽञ्जनं चैभिः कल्पैर्नेत्रमुपाचरेत् ॥ ७ ॥

सेक अर्थात् रसादि का सिंचन करना, आश्चोतन, पिण्डी, बिडाल, तर्पण, पुटपाक, अञ्जन इन सब से नेत्रों की चिकित्सा करे ॥ ७ ॥

अथ दृष्टिगतरोगचिकित्सामाह—वर्जयेदुपसर्गोत्थां गम्भीरां ह्रस्वसंज्ञिताम्।
काचांस्तु यापयेत्सर्वान्नकुलान्ध्यं तथैव च ॥१॥

उपसर्ग अर्थात् किसी बाह्य कारण से हुई २ गंभीरा तथा ह्रस्वसंज्ञक दृष्टि रोग को असाध्य समझ कर चिकित्सा न करे, सब प्रकार के काचों को तथा नकुलान्ध्य को याप्य समझे ॥ १ ॥

तिमिरं नेत्ररोगेषु कष्टं तद्यत्नतो हरेत्।
मूलं दृष्टिविनाशस्य तिमिरं समुदाहृतम्।
ऋषिभिस्तूदितं तस्मात्तस्य कुर्याच्चिकित्सितम् ॥ २ ॥

नेत्ररोगों में तिमिररोग कष्टदायक है उस को यत्नपूर्वक दूर करे। क्योंकि दृष्टि के विनाश करने का मूल तिमिररोग ही ऋषियों ने कहा है। इसलिये उस की चिकित्सा करे ॥ २ ॥

अथ वातिकतिमिरचिकित्सामाह—

स्निग्धानि नस्याञ्जनशोधनानि पाकाः पुटनामथ तर्पणं च।
घृतस्य पानान्यथ बस्तिकर्म कुर्यादभीक्ष्णं तिमिरेऽनिलोत्थे ॥१॥

वातज तिमिररोग में स्निग्ध नस्य, अंजन, शोधन, पुटपाक, तर्पण, घी का पीना, बस्तिकर्म ये सभी कर्म बार २ करने चाहियें ॥ १ ॥

अथ दशमूलघृतम्—दशमूलादिना पक्वं घृतं दुग्धचतुर्गुणम्।
त्रिफलाकल्कसंयुक्तं तिमिरे वातजे पिबेत् ॥ २ ॥

त्रिफला का कल्क एक भाग, गौ का घी ४ भाग, दशमूलादि का क्वाथ १६ भाग, दूध १६ भाग। सब को मिलाकर घी पकावें। इस घी को वातज-

तिमिररोग में पीवें ॥ २ ॥

अथ रास्नादिघृतम्—रास्नाफलत्रयक्वाथे दशमूलरसे श्रृतम्।
कल्केन जीवनीयानां घृतं तिमिरनाशनम् ॥ ३ ॥

रास्ना तथा त्रिफला समभाग लेकर क्वाथ करे। यह क्वाथ १६ भाग, दशमूल का क्वाथ १६ भाग ले। गौ का घी ४ भाग ले, जीवनीयगण की औषधियों का कल्क एक भाग लेकर घी पका लेवे। इस घी से वातिक तिमिररोग का नाश होता है॥३

अपरं दशमूलीघृतम्—वातिके तिमिरे पक्व दशमूलीरसे घृतम्।
त्रिवृच्चूर्णसमायुक्तं विरेकार्थं प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥

दशमूल का रस अर्थात् १६ भाग, गौ का घी ४ भाग, त्रिवी का कल्क एक भाग। इससे घी पका ले। इस घी को वातिकतिमिर में विरेचनार्थ देवे ॥४॥

त्रिफलादिघृतम्—त्रिफलादशमूलानां निर्यूहं दुग्धमिश्रितम्।
गन्धर्वतैलसंयुक्तं प्रयुञ्जीत विरेचनम् ॥ ५ ॥

त्रिफला तथा दशमूल के मिलित क्वाथ में दूध मिलाकर एरण्ड का तेल डाल दें। इसको पिलाकर वातिकतिमिररोग में विरेचन देवें तो लाभ होता है ॥५॥

अथ पैत्तिकतिमिरचिकित्सा—

शीताञ्जनाश्च्योतनतर्पणैश्च नस्यैर्विरेकैर्मृदुभिर्घृतैश्च।
तिक्तप्रधानैस्तिमिरं निहन्यात्पित्तात्मिकं शोणितमोक्षणैश्च ॥ १ ॥

शीतल अंजन, शीतल आश्च्योतन, शीतल तर्पण, नस्य, विरेचन तथा मृदु वीर्य घी पिलाने से तथा तिक्त रस प्रधान द्रव्य सेवन कराने से तथा रक्त मोक्षण कराने से पैत्तिक तिमिर का नाश होता है ॥ १ ॥

तिमिरे पित्तजे सर्पिर्जीवनीयवराश्रृतम्।
पाययित्वा शिरां विध्येत्सितैलाकुम्भसैन्धवैः ॥ २ ॥
चूर्णैर्माक्षिकसंयुक्तै रेचनं कारयेन्नरः।

पैत्तिक तिमिर में जीवनीयगण के द्रव्यों तथा त्रिफला से पकाया हुआ घी पिलाकर शिरा को वींध दें। श्वेत इलायची, त्रिवी तथा सेंधानमक सबको समभाग लेकर चूर्ण करे ॥ २ ॥ इस चूर्ण में शहद मिलाकर चटावे इससे विरेचन होता है ॥

अथ बलादिघृतम्—बलाशतावरीवीरासिताशैलेयकैः पचेत् ॥ ३ ॥
त्रिफलासहितं सर्पिस्तिमिरघ्नमनुत्तमम्।

खिरेंटी, शतावर, पृष्टपर्णी, श्वेतत्रिवी, शिलारस ॥ ३ ॥ इनका कल्क १ भाग करे, गौ का घी चौगुना ले, घी से चौगुना त्रिफला का क्वाथ लेवे। सबको मिलाकर घी पका लेवे। इससे तिमिररोग का नाश होता है ॥

सारिवादिवर्तिः—सारिवात्रिफलोशीरमुक्ताचन्दनपद्मकैः।
पिष्टं वर्तीकृतं हन्ति पित्तोत्थं तिमिरं नृणाम् ॥ ४ ॥

सारिवा, त्रिफला, खस, रास्ना, चन्दन, पद्माख इन सबको समभाग लेकर पीसकर जल से पीठी करके बत्ती बना लेवे इसके आंखों में लगाने से पित्तजतिमिर का नाश होता है ॥ ४ ॥

अथ श्लैष्मिकतिमिरचिकित्सामाह—

तीक्ष्णानि नस्याञ्जनशोधनानि पाकः पुटानामपतर्पणं च।
घृतानि वासात्रिफलापटोलसंज्ञानि कुर्यात्तिमिरे कफोत्थे ॥१॥

तीक्ष्ण नस्य, तीक्ष्ण अंजन, तीक्ष्ण शोधन, पुटपाक तथा अपतर्पण, घी, बांसा, त्रिफला, परवल या पटोलपत्र इन सब पदार्थों का उपयोग कफज तिमिर रोग मे करने से लाभ होता है ॥ १ ॥

कफोद्भवे वराचव्यशृते क्वाथे शृतं हविः।
पाययित्वा शिरां विध्येद्रेचनं तिमिरे भिषक् ॥ २ ॥

कफज तिमिररोग में त्रिफला तथा चव्य के क्वाथ में, गौ का घी चौथाई भाग लेकर पका लेवे, इस घी को पकाकर शिरा को बींधे। इस घी के खाने से तिमिररोग में रेचन होता है ॥ २ ॥

यूथी पथ्या कणा शुण्ठी कुसुम्भस्याम्बुनिर्झरः।
गोमूत्रक्वथिता शुण्ठी त्रिवृत्सिद्धा विरेचनम् ॥ ३ ॥

जूही, हरड़, पीपल, सोंठ, कुसुम्भ के फूल के रस का टपकाना अथवा कुसुम्भे का रस, तथा पहाड़ के झरने का पानी, गोमूत्र में उबाली हुई सोंठ, त्रिवी ये सभी कफ के नाश करने के लिये उत्तम विरेचन हैं ॥ ३ ॥

मरीचादिनस्यम्—**नस्यं मरीचयष्ट्याह्वविडङ्गामरदारुभिः।**

मिरच, मुलठी, वायविडंग, देवदारु इन सबको पीसकर नस्य लेना भी श्लैष्मिकतिमिर में उत्तम है ॥

नेपालादि वर्त्यञ्जनम्—**नेपालत्रिफलाशङ्खकान्ताव्योषं च पेषितम्।**
वर्तीकृतं बलासोत्थमञ्जनं तिमिरापहम् ॥ ४ ॥

तांबा का चूर्ण, हरड़, बहेड़ा, आंवला, शंख, रेणुका, सोंठ, मिरच, पीपल इन सबको समभाग लेकर पीसकर बत्ती बनाकर अंजन करें तो कफजातिमिररोग नाश होता है ॥ ४ ॥

अथ सांनिपातिकतिमिरचिकित्सा—

संसर्गे संनिपाते च यथादोषोदयक्रियाम्।
धात्री रसाञ्जनं क्षौद्रं सर्पिर्भिस्तु रसक्रिया ॥ १ ॥
पित्तानिलाक्षिरोगघ्नी तैमिर्यपटलापहा।
दद्यादुशीरनिर्यूहे चूर्णितं कणसैन्धवम् ॥ २ ॥

दो दोषों के या त्रिदोषों से हुए २ तिमिररोग में दोषों के अनुसार कही हुई क्रिया करे। आंवला, रसौंत, शहद, घी इनसे मिलाकर जो रस क्रिया की जाये

यह पित्तवात से हुए २ आंख के रोगों को नाश करती है और तिमिर के पटल को नाश करती है। खस का क्वाथ बनाकर उसमें सूक्ष्म सेंधानमक डाल दे ॥२॥

तच्छृतं सघृतं भूयः पचेत्क्षौद्रं घने ततः।
शीते चास्मिन्हितमिदं सर्वजे तिमिरे हितम् ॥ ३ ॥

उसमें चौथाई भाग गौ का घी डालकर पका लें। इस घी में समभाग शहद डालकर फिर पकावें जब घना हो जाये तो उतारकर शीतल कर लें। इसको आंखों में लगावें तो सन्निपातज तिमिररोग में यह हित करता है ॥ ३ ॥

शिग्रुपल्लवरसयोगः—

वातपित्तकफसंनिपातजां नेत्रयोर्बहुविधामपि व्यथाम्।
शीघ्रमेव जयति प्रयोजितः शिग्रुपल्लवरसः समाक्षिकः ॥४॥

सुहांजने के कोमल पत्तों का स्वरस शहद से मिलाकर आंखों में डालें तो वात, पित्त, कफ तथा सन्निपात से होने वाली अनेक प्रकार की नेत्रों की व्यथा को नष्ट करता है ॥ ४ ॥

अथ तिमिरे सामान्यचिकित्सा।

अथाञ्जनविधिः—अथ संपक्वदोषस्य प्राप्तमञ्जनमाचरेत्।
• अञ्जनं क्रियते येन तद्द्रव्यं चाञ्जनं मतम् ॥ १ ॥

जब दोष पक गये हों तब आंखों में अंजन करना चाहिये। जिस द्रव्य से अंजन किया जाता है उसे भी अञ्जन कहते हैं ॥ १ ॥

तद्यथा—गुटिकारसचूर्णानि त्रिविधान्यञ्जनानि तु।
कुर्याच्छलाकयाऽङ्गुल्या हीनानि च यथोत्तरम् ॥ २ ॥

गुटिका, रस तथा चूर्ण ये तीन प्रकार के अञ्जन होते हैं। इनको शलाका वा अंगुली से आंखों में लगाते हैं। गुटिका से रस तथा रस से चूर्ण क्रमशः हीन अर्थात् कम गुण वाले होते हैं ॥ २ ॥

स्नेहनं रोपणं चापि लेखनं तत्त्रिधा पृथक्।
मधुरं स्नेहसंपन्नमञ्जनं स्नेहनं मतम् ॥ ३ ॥

स्नेहन, रोपण तथा लेखन ये तीन प्रकार के अंजनों के भेद हैं। मधुर रस वाले स्नेह से युक्त द्रव्यों का अंजन करना स्नेहन अञ्जन कहलाता है ॥ ३ ॥

कषायतिक्तरसयुक्सस्नेहं रोपणं स्मृतम्।
अञ्जनं क्षारतीक्ष्णाम्लरसैर्लेखनमुच्यते ॥ ४ ॥

कसैले तथा कड़वे रस से युक्त स्नेह सहित अंजन रोपण अंजन कहाता है। क्षार, तीक्ष्णाम्लरस आदि से किया हुआ अंजन लेखन अञ्जन कहाता है ॥४॥

हरेणुमात्रां कुर्वीत वर्तिं तीक्ष्णाञ्जने भिषक्।
प्रमाणं मध्यमे सार्धं द्विगुणं तु मृदौ भवेत् ॥ ५ ॥

"हरेणु" अर्थात् बड़े चने वा मटर के समान मोटी बत्ती बनाये और तीक्ष्णांजन के लिये इसका प्रयोग करे। मध्यम अंजन में डेढ़ा प्रमाण हो अर्थात् बत्ती डेढ़ी मोटी हो, मृदु अंजन हो अर्थात् अंजन के द्रव्य मृदुवीर्य्य हों तो दुगनी मोटी बत्ती बनावे ॥ ५ ॥

रसक्रिया तूत्तमा स्यात्त्रिविडङ्गमिता हिता।
मध्यमा द्विविडङ्गा सा हीना त्वेकविडङ्गिका ॥ ६ ॥

उत्तम रसक्रिया तो तीन विडंग के दानों के समान पदार्थ से करनी चाहिये। मध्यम रसक्रिया दो विडंग के दानों के समान औषध से करनी चाहिये। हीनरस क्रिया एक विडंग के दाने के समान द्रव्य से करनी चाहिये ॥ ६ ॥

शलाकाः स्नेहने चूर्णे चतस्रः प्राहुरञ्जने।
रोपणे तास्तु तिस्रः स्युस्ते उभे लेखने स्मृते ॥ ७ ॥

स्नेहन अंजन में तथा चूर्णांजन में चार शलाकायें लगानी चाहिये। रोपण अंजन में तीन शलाकायें आंख में लगानी चाहियें। लेखांजन में दो शलाकायें ही लगानी चाहियें ॥ ७ ॥

अथ शलाकालक्षणम्—**मुखयोः कुञ्चिता श्लक्ष्णा शलाकाऽष्टाङ्गुलोन्मिता।**
अश्मजा धातुजा या स्यात्कलायपरिमण्डला ॥ ८ ॥

दोनों ओर के मुंह पतले हों, और सारी शलाका चिकनी हो (खुरदरी न हो) तथा आठ उंगल भर लम्बी हो। वह पत्थर की बनी हुई हो वा धातु की बनी हुई हो। उसका मध्यभाग मटर के बराबर मोटा हो ॥ ८ ॥ ८ ॥

सुवर्णरजतोद्भूता शलाका स्नेहने स्मृता।
ताम्रलोहाश्मसंजाता शलाका लेखने मता।
अङ्गुलिस्तु मृदुत्वेन रोपणे कथिता बुधैः ॥ ९ ॥

सोने तथा चांदी की बनी हुई शलाका स्नेहनांजन में लाभ देती है। तांबे, लोहे वा पत्थर की बनी हुई शलाका लेखनांजन में लाभ देती है। अंगुली क्योंकि कोमल होती है इस लिये रोपण में लाभ देती है ॥ ९ ॥

अञ्जने केवलमपि शलाकाविशेषमाह—

त्रिफलाभृङ्गशुण्ठीनां रसैस्तद्वच्च सर्पिषा।
गोमूत्रमध्वजाक्षीरैः सिक्तो नागः प्रतापितः ॥ १ ॥

नाग अर्थात् सीसे को गरम करके त्रिफला के क्वाथ में, भांगरे के स्वरस में सोंठ के क्वाथ में या अदरक के स्वरस में, घी में, गोमूत्र में, शहद में, बकरी के दूध में बुझावे ॥ १ ॥

तच्छलाका हरत्येव सकलान्नयनामयान्।
कृष्णभागादधः कुर्यादपाङ्गं यावदञ्जनम् ॥ २ ॥

फिर इस सीसे की शलाका में अर्थात् सलाईयें बना लेवें। इस सलाई को लगा लेने से ही सभी प्रकार के नेत्ररोग दूर हो जाते हैं। काले गोले से नीचे के भाग से आंखों के अपांग तक अर्थात् नाक की ओर से कान की ओर तक आंख में अंजन करना चाहिये ॥ २ ॥

अथाञ्जनक्रमः—प्रथमं सव्यमञ्जीयात्पश्चाद्दक्षिणमञ्जयेत्।
शलाकया साञ्जनया न च तन्नयनं स्पृशेत् ॥ ३॥

अंजन युक्त शलाका से पहले बांई आंख में अंजन लगाना चाहिये। फिर दाई आंख में अंजन लगावे। फिर आंख को हाथ आदि से छूना नहीं चाहिये ॥३॥

हेमन्ते शिशिरे वाऽपि मध्याह्नेऽञ्जनमिष्यते।
पूर्वाह्णे वाऽपराह्णे वा ग्रीष्मे शरदि चेष्यते ॥ ४ ॥

हेमन्त में तथा शिशिर में, मध्यान्हकाल में अंजन लगावे। ग्रीष्म तथा शरद ऋतु में पूर्वाह्ण के समय वा अपराह्ण के समय अंजन लगावें ॥ ४ ॥

वर्षास्वनभ्रे नात्युष्णे वसन्ते च सदैव हि।
प्रातःसायं च तत्कुर्यान्न च कुर्यात्सदैव हि ॥ ५ ॥

वर्षा ऋतु में जिस दिन बादल न हों और वसन्त ऋतु में जिस दिन अधिक गरमी न पड़ती हो प्रातः सायंकाल अंजन करे। परन्तु प्रतिदिन अर्थात् वर्षा में बादलों के दिन तथा वसन्त में बहुत गरमी वाले दिन सदा ही अंजन नहीं करना चाहिये ॥ ५ ॥

श्रान्ते प्ररुदिते भीते पीतमद्ये नवज्वरे।
अजीर्णे वेगघाते च नाञ्जनं संप्रशस्यते ॥ ६ ॥

थके हुए, रोये हुए, डरे हुए, शराब पिये हुए, नये ज्वरवाले, अजीर्ण में, मलमूत्रादि वेगों को रोके हुए मनुष्य को अंजन न करे ॥ ६ ॥

सौवीरमञ्जनं नित्यं हितमक्ष्णोः प्रयोजयेत्।
पञ्चरात्रेऽष्टरात्रे वा स्रावणार्थं रसाञ्जनम् ॥ ७ ॥

नित्य ही सौवीराञ्जन आंखों में लगाना चाहिये। पांचवीं रात में अथवा आठवीं रात में स्रावण के लिये रसाञ्जन अर्थात् रसौत डालनी चाहिये वा द्रव्यों के रसों का अंजन करना चाहिये ॥ ७ ॥

अथ मुक्तादिमहाञ्जनं भावप्रकाशात्—

मुक्ताकर्पूरकाचागुरुमरिचकणासैन्धवं सैलवालं
शुण्ठीकङ्कोलकांस्यत्रपुरजनिशिलाशङ्खनाभ्यभ्रतुत्थम्।
दन्ताण्डत्वक् च साक्षातजयुतशिवाक्षीतकं राजवर्तं
जातीपुष्पं तुलस्याः कुसुममभिनवं बीजमस्यास्तथैव ॥१॥

मोती, कपूर, काचलवण वा शीशा, अगर, गोलमिरच, पीपली, सेंधानमक, एलवा अथवा तेजबल के बीज, सोंठ, कंकोल, कांसी, सीसा, हल्दी, मनसिल,

शंख की नाभि, अभ्रक, नीलाथोथा, कुक्कुड़ के अण्डे का छिलका, बहेड़ा, केसर कश्मीरी, हरड़, मुलठ्ठी, लाजवर्द, चमेली के फूल, तुलसी के नये फूल तथा तुलसी के बीज ॥ १ ॥

पूतीकनिम्बाञ्जनभद्रमुस्तं सताम्रसारं रसगर्भयुक्तम् ।
प्रत्येकमेषां खलु माषकैकं पलेन पिष्यान्मधुनाऽतिसूक्ष्मम् ॥ २ ॥

करंज के बीज, नीम के पत्ते, सौवीराञ्जन, भद्रमोथा, लाल चन्दन, रसौंत । इन में से प्रत्येक द्रव्य एक २ माशा लेकर सूक्ष्मतम चूर्ण करले । फिर इस में एक पल शहद डालकर खूब पीस ले ॥ २ ॥

भवन्ति रोगा नयनाश्रिता ये नितान्तमात्रोपचिताश्च तेषाम् ।
विधीयते शान्तिरवश्यमेव मुक्तादिनाऽनेन महाञ्जनेन ॥ ३ ॥

नेत्रों के सभी प्रकार के रोगों में से जो रोग अधिक प्रबल होजाते हों उन सब की शान्ति इस मुक्तादि महाञ्जन से अवश्य ही होजाती है ॥ ३ ॥

अथ नयनशाणनामाञ्जनम्—कणा सलवणोषणा सहरसाञ्जना साञ्जना
सरित्पतिकफः शिफा सितपुनर्नवासंभवा ।
रजन्यरुणचन्दनं मधुकतुत्थपथ्या शिला
अरिष्टदलशाबरस्फटिकशङ्खनाभीन्दवः ॥ १ ॥

पिप्पली, सेंधानमक, काली मिरच, रसौंत, सौवीरांजन, समुद्रफेन, श्वेत पुनर्नवा की जड़, हल्दी, लाल चन्दन, मुलठ्ठी, नीलाथोथा, हरड़, मनसिल, नीम के पत्ते, लोध, फिटकरी, शंखनाभि, कपूर ॥ १ ॥

इमानि तु विचूर्णयेन्निबिडवाससा शोधये-
त्ततोऽयसि विमर्दयेत्समधुताम्रखण्डेन तत् ।
इदं मुनिभिरीरितं नयनशाणनामाञ्जनं
करोति तिमिरक्षयं पटलपुष्पनाशं बलात् ॥ २ ॥

इन में से प्रत्येक द्रव्य एक २ भाग लेकर खूब बारीक चूर्ण करले । फिर बारीक सघन कपड़े से छानकर सूक्ष्म करले । तब सारे चूर्ण को लोहे के पात्र में डालकर उस में शहद डालकर तांबे के डंडे से खरल करे अथवा तांबे का खण्ड एक डंडे के नीचे लगाकर फिर खरल करे । इस को मुनियों ने नयनशाण नामक अंजन कहा है । इसे लगावें तो तिमिररोग का क्षय होता है, पटल तथा पुष्प अर्थात् फोले को अवश्य नाश करता है ॥ २ ॥

अथ चन्द्रोदयावर्तिः—शङ्खनाभिर्बिभीतस्य मज्जा पथ्या मनःशिला ।
पिप्पली मरिचं कुष्ठं वचा चेति समांशकम् ॥ १ ॥

शंखनाभि, बहेड़े की मज्जा अर्थात् बीज की गिरी, हरड़, मनसिल, पिप्पली, कालीमिरच, कूठ, बच इन सब का चूर्ण पृथक् २ एक २ भाग लेवें ॥ १ ॥

छागक्षीरेण संपिष्य वर्तीं कुर्याद्यवोन्मिताम्।
हरेणुमात्रां संघृष्य जलेनाञ्जनमाचरेत्॥ २॥

इन चूर्णों को एकत्र मिलाकर बकरी के दूध से पीसकर जौ के समान आकार की गोली बना लेवें। फिर चनें के वा रेणुका के बीज के समान जल में घिसकर आंखों में अंजन लगावे॥ २॥

तिमिरं मांसवृद्धिं च काचं पटलमर्बुदम्।
रात्र्यन्धं वार्षिकं पुष्पं वर्तिश्चन्द्रोदया हरेत्॥ ३॥

इस के लगानें से तिमिररोग, मांसवृद्धि, काच, पटल, अर्बुद, रात को न दीखना अर्थात् अन्धराता, एक साल का पुराना पुष्प अर्थात् फोला इन सबको यह चन्द्रोदयावर्त्ति नष्ट करती है॥ ३॥

अथ चन्द्रप्रभावर्तिः—**रजनी निम्बपत्राणि पिप्पली मरिचानि च।**
विडङ्गं भद्रमुस्तं च सप्तमी त्वभया स्मृता॥ १॥

हल्दी, नीम के पत्ते, पीपल, मिरच, वायविडंग, भद्रमोथा, हरड़॥ १॥

अजामूत्रेण संपिष्य छायायां शोषयेद्वटी।
वारिणा तिमिरं हन्ति गोमूत्रेण तु पिष्टिकाम्॥ २॥

इन में से प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण कर के एक २ भाग लें। सब को एकत्र मिलाकर बकरी के मूत्र से पीसकर गोलियें बनाकर छाया में सुखा लेवे। इस गोली को जल में घिसकर लगावें तो तिमिररोग नष्ट होते हैं। गोमूत्र में घिसकर लगावें तो पिष्टिका या पिष्टरोग दूर होता है॥ २॥

मधुना पटलं हन्ति नारीक्षीरेण पुष्पकम्।
एषा चन्द्रप्रभा वर्तिः स्वयं रुद्रेण निर्मिता॥ ३॥

शहद से घिसकर लगावें तो पटलरोग का नाश होता है, स्त्री के दूध से लगावें तो पुष्प अर्थात् फोले का नाश होता है। यह चन्द्रप्रभावर्त्ति स्वयं रुद्र महाराज ने बनाई थी॥ ३॥

अथ शशिकलावर्तिः—

रसकजलजनाभिः पौरतुत्थं समांशं
वसनगलितमेतन्निम्बुनीरेण पिष्टम्।
हरति शशिकलैतद्वर्तिरभ्यञ्जिताऽक्ष्णो-
स्तिमिरकुसुमकण्डूस्रावरागार्मपिल्लान्॥१॥

फिटकरी, शंख की नाभि, नखी, नीलाथोथा ये चारों पदार्थ समभाग लेकर चूर्ण कर के वस्त्र में से छान लेवे। फिर नीबू के स्वरस से पीस लेवे। इस शशिकलावर्त्ति का आंखों में घिसकर अंजन लगावें तो तिमिर, पुष्प या फोला, कण्डू, स्राव, राग अर्थात् आंखों का लाल पीला रंग होना, अर्म तथा पिल्लरोग नष्ट होते हैं॥ १॥

अथ लोचनशूलघ्नी पोटली—

कृतलाजसुराष्ट्रजाहिफेनं रुचिरं नागजगालवोत्थचूर्णम् ।
सुकुमार्युदकेन शुल्बपात्रे मृदितं दृष्टिरुजं जयेत्पटस्थलम् ॥ १ ॥

खस, फिटकरी, अफीम, कश्मीरी केसर, सिन्दूर तथा लोध का चूर्ण इन सब का चूर्ण समभाग लेकर चमेली के फूलों के रस से तांबे के पात्र में खरल करें । फिर इसे एक कपड़े में डालकर पोटली बांधकर आंख पर फेरें तो यह पोटली दृष्टि की पीड़ा को नष्ट करती है ॥ १ ॥

अथ नयनामृतम्—रसेन्द्रभुजगौ तुल्यौ तयोर्द्विगुणमञ्जनम् ।
सूततुर्यांशकर्पूरमञ्जनं नयनामृतम् ॥ १ ॥

शुद्ध पारा एक भाग, शुद्ध सीसा एक भाग, दोनों से दुगना सौवीरांजन ले, पारे से चौथाई भाग कपूर लेवे । इन सब को एकत्र विधिपूर्वक पीसकर कपड़े में से छानकर शीशी में बन्द कर के रखे ॥ १ ॥

तिमिरं पटलं काचं शुक्रमर्मार्जुनानि च ।
क्रमात्पथ्याशिनो हन्ति तथाऽन्यानपि दृग्गदान् ॥ २ ॥

इसे आंखों में लगाने से तिमिर, पटल, काच, शुक्र, अर्म, अर्जुन तथा अन्यान्य आंख के रोग क्रमशः नष्ट होते हैं, परन्तु पथ्यसेवन करते रहना चाहिये ॥१

अथ कुसुमिकावर्तिः, रोपणी—

तिलपुष्पाण्यशीतिः स्युः षष्टिः पिप्पलितण्डुलाः ।
जात्याः कुसुमपञ्चाशन्मरिचानि च षोडश ॥ १ ॥

तिल के फूल ८० लें, पीपली से निकले हुए तण्डुल या दाने ६० लेवें, चमेली के फूल ५० लवें, काली मिरचें १६ लेवें ॥ १ ॥

सूक्ष्मपिष्टा जलैर्वर्तिः कृता कुसुमिकाभिधा ।
तिमिरार्जुनशुक्राणां नाशनी मांसवृद्धिनुत् ।
एतस्याश्चाञ्जने मात्रा प्रोक्ता सार्धहरेणुका ॥ २ ॥

इन सब को जल से अत्यन्त सूक्ष्म पीसकर बत्ती बनालें । इस का नाम कुसुमिकावर्त्ति है । इस से तिमिर, अर्जुन तथा शुक्र का नाश होता है, मांसवृद्धि दूर होती है । इस की मात्रा अंजन करने में डेढ़ चने वा रेणुका के बराबर है ॥२॥

अथ दार्व्याद्यञ्जनम्—

दार्वीवरामधुकमम्भसि नारिकेले
पक्त्वाऽष्टभागपरिशिष्टरसं पुनस्तम् ।
सान्द्रं विपाच्य शशिसैन्धवमाक्षिकाढ्यं
युञ्ज्याद्व्रणार्तितिमिरार्तिषु पित्तजेषु ॥ १ ॥

दारुहल्दी, हरड़, बहेड़ा, आंवला, मुलठ्ठी इन सब को समभाग लेकर

नारियल के १६ गुने जल में डालकर पकावें। जब आठवां भाग शेष रह जावे तो छानकर फिर मन्द २ अग्नि पर पकाकर गाढ़ा करलें। उस में कपूर, सेंधा नमक तथा शहद मिलाकर रखे। इस दार्व्याद्यञ्जन को पित्तज आंख के व्रणरोगों में तथा पित्तज तिमिर की पीड़ाओं में लगावें तो ये रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथ शङ्खादिवटी—शङ्खस्य भागाश्चत्वारस्तदर्धेन मनःशिला ।
मनःशिलार्धे मरिचं मरिचार्धेन पिप्पली ॥ १ ॥

शंख चार भाग, मनसिल दो भाग, मिरच एक भाग, पिप्पली आधा भाग॥१

सर्वमेकत्र संमर्द्य गुटिकां कारयेत्ततः ।
वारिणा तिमिरं हन्ति चार्बुदं हन्ति मस्तुना ॥
पिच्चटं मधुना हन्ति स्त्रीक्षीरेण तथाऽर्जुनम् ॥ २ ॥

इन सब को एकत्र पीसकर जल से गोली बना लेवे। इस गोली को जल से पीसकर आंख में लगावें तो तिमिररोग का नाश होता है, दही के जल से पीसकर आंख में लगावें तो अर्बुदरोग का नाश करती है। शहद से पीसकर लगावें तो पिच्चिटरोग को नाश करती है, स्त्री के दूध से पीसकर लगावें तो अर्जुन रोग को नष्ट करती है ॥ २ ॥

अथ पुनर्नवाद्यञ्जनम्—दुग्धेन कण्डूं क्षौद्रेण नेत्रस्रावं च सर्पिषा ।
पुष्पं तैलेन तिमिरं काञ्जिकेन निशान्धताम् ।
पुनर्नवा हरत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १ ॥

पुनर्नवा का चूर्ण वा रस दूध से मिलाकर आंख में डाले तो कण्डू अर्थात् नेत्रों की खुजली को नाश करता है। शहद से मिलाकर आंखों में डालें तो नेत्रों के स्राव या पानी बहने को नष्ट करता है, घी से मिलाकर लगावें तो पुष्प या फोले को नष्ट करता है, तेल से मिलाकर लगावें तो तिमिररोग को नष्ट करता है, कांजी से मिलाकर लगावें तो अंधराते को दूर करता है। ये सब रोग इस प्रकार पुनर्नवा से नष्ट होते हैं जैसे सूर्य से अन्धकार नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ गुडूच्याद्यञ्जनम्—गुडूचीस्वरसः कर्षः क्षौद्रं स्यान्माषकोन्मितम् ।
सैन्धवं क्षौद्रतुल्यं स्यात्सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥ १ ॥

हरी गिलोय का स्वरस एक कर्ष ले, शहद एक माषाभर लें, सेंधानमक एक माषाभर ले। सब को एकत्र मर्दन कर लेवे ॥ १ ॥

अञ्जयेन्नयनं तेन पिल्लार्मतिमिरं जयेत् ।
काचं कण्डूं लिङ्गनाशं शुक्लकृष्णगतान्गदान् ॥ २ ॥

इस से आंखों में अंजन लगावें तो पिल्ल, अर्म तथा तिमिररोगों का नाश होता है। काच, कण्डू, लिङ्गनाश, शुक्ल तथा कृष्णमण्डल गत सभी रोगों का नाश होता है ॥ २ ॥

अथ कतकफलादि—कतकस्य फलं घृष्ट्वा मधुना नेत्रमञ्जयेत्।
ईषत्कर्पूरसहितं तत्स्यान्नेत्रप्रसादनम् ॥ १ ॥

निर्मली के फल को शहद में घिसकर थोड़ा सा कपूर मिलाकर, आंखों में अंजन करे तो इस से नेत्रों का प्रसादन होता है अर्थात् नेत्र निर्मल होजाते हैं ॥१॥

अन्यच—कतकस्य फलं शङ्खः सैन्धवं त्र्यूषणं सिता।
फेनो रसाञ्जनं क्षौद्रं विडङ्गानि मनःशिला।
सर्वमेतत्समं कृत्वा नारीक्षीरेण पेषयेत् ॥ १ ॥

निर्मली का फल, शंख, सेंधानमक, सोंठ, मिरच, पीपल, खांड, समुद्रफेन, रसौंत, शहद, विडंग, मनसिल, इन में से प्रत्येक पदार्थ का चूर्ण एक २ भाग लेकर सब को स्त्री के दूध से एकत्र पीसकर मिला लेवे ॥ १ ॥

तिमिरं पटलं काचमर्मशुक्रं व्यपोहति।
कण्डूक्लेदार्बुदान्हन्ति मलं वा सुसुखावति ॥ २ ॥

इसे आंखों में लगावें तो तिमिर, पटल, काच, अर्म तथा शुक्र का नाश होता है। कण्डू, क्लेद, अर्बुद इनका नाश होता है तथा आंख का मैल भी नष्ट होता है और आंखों को सुख मिलता है ॥ २ ॥ इति शार्ङ्गधरः।

अथ पिप्पल्याद्यञ्जनम्—पिप्पलीत्रिफलालाक्षालोध्रकं च ससैन्धवम्।
भृङ्गराजरसे घृष्टं गुटिकाञ्जनमिष्यते ॥ १ ॥

पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, लोध, सेंधानमक सबका पृथक् २ चूर्ण एक २ भाग लेकर भांगरे के स्वरस में घोटे और गुटिका बना ले ॥ १ ॥

अर्मं सतिमिरं काचं कण्डूं शुक्रं तथाऽर्जुनम्।
अञ्जनं नेत्रजान्रोगान्निहन्त्येव न संशयः ॥ २ ॥

इनका अंजन लगावें तो अर्म, तिमिर, काच, कण्डू, शुक्र, अर्जुन तथा अन्य नेत्र के रोगों को निस्सन्देह नाश करता है ॥ २ ॥

अथ गुञ्जामूलाद्यञ्जनम्—

गुञ्जामूलं बस्तमूत्रेण पिष्टं निघृष्टा वा वारिणा भद्रमुस्ता।
आन्ध्यं सद्यस्तैमिरं हन्ति पुंसामत्युद्गाढं नेत्रयोरञ्जनेन ॥१॥

रत्तियों की जड़ को बकरे के मूत्र से पीसकर आंखों में अंजन करे। अथवा भद्रमोथे को जल से घिसकर आंखों में अंजन करें तो अन्धता तथा तिमिररोग चाहे कितने ही गाढ़े हों तुरन्त ही नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

अथ तुलस्यादि—तुलस्या बिल्वपत्रस्य रसो ग्राह्यः समांशकः।
ताभ्यां तुल्यं पयो नार्यास्त्रितयं कांस्यपात्रके ॥ १ ॥

तुलसी के पत्तों का स्वरस एक भाग, बिल के पत्तों का स्वरस एक भाग, स्त्री का दूध दो भाग, इन सबको कांसी के पात्र में डालकर ॥ १ ॥

गजवल्ल्या इदं मर्द्यं ताम्रेण प्रहरं पुनः।
कज्जलत्वं समुत्पाद्य तेनाञ्जितविलोचनः।
सद्यो नेत्ररुजं हन्ति सशूलां पाकसंभवाम् ॥ २ ॥

इसमें पान के रस को डाल और तांबे के टुकड़े या पैसे आदि से एक पहर तक रगड़े। जब कज्जल के समान काला हो जावे तब आंखों में इस अंजन को लगावे। तो यह नेत्रों की पीड़ा को जो नेत्रों के पकने से हो गई हो तथा जिसमें शूल होता हो तुरन्त दूर कर देता है ॥ २ ॥

अथ क्वाथाः। अथ महावासादि क्वाथः—

वासा घनं निम्बपटोलपत्रं तिक्तामृताचन्दनवत्सकत्वक्।
कलिङ्गदार्वीदहनं सनागरं भूनिम्बधात्री ह्यभया बिभीतकम् ॥१॥

बांसा, मोथा, नीम, पटोलपत्र, कुटकी, गिलोय, लालचन्दन, कुड़े की छाल, इन्द्रजौ, दारुहल्दी, चीता, सोंठ, चिरायता, आंवला, हड़, बहेड़ा ॥ १ ॥

तथा यवक्वाथमथाष्टमांशं पिबेदिमं पूर्वदिने कषायकम्।
तैमिर्यकण्डूपटलार्बुदं च शुक्रं तथा सव्रणमव्रणं च।
दाहं सरागं सरुजं सपिल्लं हन्यात्समस्तानपि नेत्ररोगान् ॥२॥

इन सबका क्वाथ तथा जौ का अष्टमांश क्वाथ मिलाकर अथवा पूर्वोक्त द्रव्य तथा जौ इनमें से प्रत्येक द्रव्यों को समभाग लेकर क्वाथ करके आठवां भाग शेष रखकर दिन के पहले भाग में अर्थात् प्रातःकाल पीवे तो तिमिररोग, कण्डू, पटल, अर्बुद, सव्रण, शुक्र तथा अव्रण शुक्र, आंखों की दाह, राग तथा पीड़ा, पिल्ल तथा समस्त नेत्र के रोगों को यह क्वाथ नष्ट कर देता है ॥ २ ॥ इति महावासादिक्वाथः।

अथ त्रिफलाक्वाथः—अयःस्थं त्रिफलाक्वाथं सर्पिषा सह योजितम्।
भुक्तोपरि पिबेत्सायं मासेनान्धोऽपि पश्यति ॥ १ ॥

त्रिफला के क्वाथ को लोहे के पात्र में डालकर, गौ का घी मिलाकर, सायंकाल भोजन करने के बाद पीवे तो एक मास में अन्धा भी देखने लगता है ॥१॥

अथ चित्रकादिक्वाथः—चित्रकमूलत्रिफलापटोलयवसाधितं पिबेदम्भः।
सघृतं निशि चक्षुष्यं तिमिरं च विशेषतो हन्ति १॥

चीते की जड़, हरड़, बहेड़ा, आंवला, पटोलपत्र तथा जौ इन सबको समभाग लेकर क्वाथ करके गौ के घी से मिलाकर रात को पीवें तो आंखों का हित करता है तथा तिमिररोग को विशेष करके नष्ट करता है ॥ १ ॥

अथ चूर्णानि।

तत्राऽऽदौ त्रिफलाचूर्णम्। रूप्य मृतलोहो वा।

त्रिफलात्वचमायसं च चूर्णं समयष्टीमधुकं त्रिसप्तरात्रम्।

मधुना सह सर्पिषा दिनान्ते पुरुषो निष्परिहारमाददीत ॥१॥

हरड़, बहेड़ा आंवला, लोहे की भस्म, मुलठी का चूर्ण इन सबको समभाग लेकर एकत्र चूर्ण करें। इसमें शहद तथा घी मिलाकर दिन के अन्त में जो पुरुष नित्य ही सेवन करता है ॥ १ ॥

तिमिरार्बुदरक्तराजिकण्डूक्षणदान्ध्यामयदाहशूलतोदान्।
पटलं च सशुक्लकाचपिल्लं शमयत्येव निषेवितः प्रयोगः ॥ २ ॥

उसके तिमिर, अर्बुद, रक्तराजी अर्थात् आंखों में लाल डोरे होने, कण्डू, रात्र्यन्ध वा अन्धराता, दाह, शूल, तोद, पटल, शुक्ल, काच तथा पिल्ल ये सभी रोग अवश्य नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

न च केवलमेव लोचनानां विहितो रोगनिबर्हणाय योगः।
दशनश्रवणोर्ध्वजत्रुजानां प्रशमे हेतुरयं महामयानाम् ॥ ३ ॥

यह योग केवल नेत्ररोगों के नाश करने के लिये ही नहीं कहा है । प्रत्युत दांत, कान तथा ऊर्ध्वजत्रुगत सभी महारोगों के नाश करने के लिये यह उत्तम है॥३

गुदजानि भगंदरप्रमेहान्सहकुष्ठानि हलीमकं किलासम्।
पलितानि विनाशयेत्तथाऽग्निं चिरनष्टं कुरुते रविप्रचण्डम् ॥४॥

बवासीर के मस्से, भगन्दर, प्रमेह, कुष्ठ, हलीमक, किलास तथा पलितरोग इन सबको नष्ट करता है। देर से नष्ट हुई २ अग्नि को सूर्य के समान प्रचण्ड करता है ॥ ४ ॥

प्रमदाभिरयं जराधिरूढः स्फुटचन्द्राभरणासु यामिनीषु।
सुरतानि पदे पदे निषेवेत्पुरुषो योगमिमं निषेवमाणः ॥ ५ ॥

बूढा मनुष्य भी इस योग को सेवन करता रहे तो चांदनी रातों में स्त्रियों के साथ प्रतिदिन मैथुन कर सकता है ॥ ५ ॥

स्मृतिविक्रमबुद्धिशक्तियुक्तः शरदां जीवति वै शतं समग्रम् ॥ ६ ॥

स्मृति, विक्रम, बुद्धि तथा शक्ति से युक्त होकर पूरे सौ वर्ष की आयु तक जीता रहता है ॥ ६ ॥

मुखेन नीलोत्पलचारुगन्धिना शिरोरुहैरञ्जनमेचकप्रभैः।
भवेत्तु गृध्रस्य समानलोचनश्चिरं नरो वर्षशतं तु जीवति ॥ ७ ॥

मुख में से नीले कमल के समान रम्य गन्ध आती है, बाल अंजन के समान काले हो जाते हैं, गीध के समान तेज देखने वाले लोचन हो जाते हैं तथा मनुष्य सौ वर्ष तक जीता रहता है ॥ ७ ॥ इति सप्त मृतोलौहः।

अथ मधुकादिलोहचूर्णम्—मधुकत्रिफलाचूर्णं लोहचूर्णं समं लिहेत्।
मधुसर्पिर्युतं सम्यग्गव्यक्षीरं पिबेदनु ॥ १ ॥

मुलठी, हरड़, बहेड़, आंवला इन में से प्रत्येक पदार्थ एक भाग लेवें। लोहभस्म चार भाग लेवे। सबको मिलाकर शहद तथा घी से घोटकर चाटे और

ऊपर से गौ का दूध पीवे ॥ १ ॥

छर्दि सतिमिरां शूलमम्लपित्तं ज्वरं क्लमम्।
आनाहं मूत्रसङ्गं च शोथं चैव निहन्ति हि ॥ २ ॥

इससे वमन, तिमिररोग, शूल, अम्लपित्त, ज्वर, क्लम, आनाह, मूत्र का रुकना तथा शोथ ये सभी रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

अथ शतावर्यादिचूर्णम्—

शतावरी सूर्यसमा प्रदेया एला तथा रावणमूर्धतुल्या।
देयं विडङ्गं वसुभिः समानमृतोः समं चाऽऽमलकास्थिबीजम् ॥१॥

शतावर का चूर्ण १२ भाग, छोटी इलायची का चूर्ण १० भाग, विडङ्ग का चूर्ण ८ भाग, आमले के बीज की मज्जा ६ भाग ॥ १ ॥

विष्णोर्भुजैस्तुल्यगुणं मरीचं तद्विक्रमैर्मागधिका प्रदेया।
चूर्णं समध्वाज्यकमर्धकर्षमद्यामयानां विनिवारणार्थम् ॥ २ ॥

मिरच का चूर्ण ४ भाग ले। तथा मघ पीपल ३ भाग (अथ विष्णुविचिक्रमे त्रेधा निदधे पदम् इति वेदे०) लें। सबके चूर्णों को एकत्र मिला लें। इसमें से आधा कर्ष चूर्ण लेकर शहद तथा घी मिलाकर खावें तो आंखों के सभी रोग नष्ट होते हैं२

कण्डूं सधूमं तिमिरं सुघोरमर्माणि काचं पटलं त्रिदोषम्।
ये चापरे रक्तभवा विकारास्तेषामयं चूर्णवरो निहन्ता ॥ ३ ॥

कण्डू, धूम, घोर तिमिर रोग, अर्म, काच, पटल तथा त्रिदोष नाश होते हैं। अन्य भी जो रक्त से उत्पन्न हुए २ रोग हैं उन सबको यह चूर्ण नष्ट करने में श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयं त्रिफलादिचूर्णं वङ्गसेनात्—

लिह्यात्सदा वा त्रिफलां सुचूर्णितां घृतप्रगाढां तिमिरेऽथ पित्तजे।
समीरणे तैलयुतां कफात्मके मधुप्रगाढां विदधीत युक्तितः ॥ १ ॥

हरड़, बहेड़ा, आंवला इन तीनों के समभाग चूर्ण को पित्तज तिमिररोग में गौ के घी स मिलाकर चाटें। वातज तिमिररोग में तेल से मिलाकर चाटें, कफज तिमिररोग में शहद से मिलाकर चाटें ॥ १ ॥

अथ घृतानि।

अथ विभीतकादिघृतम्—विभीतकशिवाधात्रीपटोलारिष्टवासकैः।
पक्वमेभिर्घृतं सर्वानक्षिरोगान्व्यपोहति ॥ १ ॥

बहेड़ा, हरड़, आंवला, पटोलपत्र, नीमपत्र, बांसे के पत्ते इनके कल्क से गौ का घी चौगुना जल डालकर पकायें। यह घी सब प्रकार के आंख के रोगों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

अथ महात्रिफलाद्यं घृतम्—त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृङ्गरसस्य च।
वृषस्य च रसप्रस्थं शतावर्याश्च तत्समम् ॥२॥

त्रिफला का क्वाथ एक प्रस्थ, भांगरे का स्वरस एक प्रस्थ, बांसे का स्वरस एक प्रस्थ, शतावर का स्वरस एक प्रस्थ लें ॥ २ ॥

अजाक्षीरं गुडूच्याश्च आमलक्या रसं तथा।
प्रस्थं प्रस्थं समाहृत्य सर्वैरेभिर्घृतं पचेत् ॥ ३ ॥

बकरी का दूध एक प्रस्थ ले, गिलोय का स्वरस एक प्रस्थ ले, आमले का स्वरस एक प्रस्थ ले। इन सबको एक २ प्रस्थ लेकर गौ का घी एक प्रस्थ डाल कर पका लेवे ॥ ३ ॥

कल्कः कणासिताद्राक्षात्रिफला नीलमुत्पलम्।
मधुकं क्षीरकाकोली मधुपर्णी निदिग्धिका ॥ ४ ॥

साथ ही पिप्पली, खांड, दाख, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नीलाकमल, मुलठ्ठी, क्षीर काकोली, मुलठ्ठी, छोटी कटेली, इनको समभाग लेकर एकत्रकर घी से चौथाई भाग लेकर कल्क करें और घी में डालकर पका लेवे ॥ ४ ॥

तत्साधु सिद्धं विज्ञाय शुभे भाण्डे निधापयेत्।
ऊर्ध्वपानमधःपानं मध्ये पानं च शस्यते ॥ ५ ॥

उस घी को अच्छी प्रकार से पका हुआ जानकर, छानकर उत्तम पात्र में रखे। इस घी को भोजन के पूर्व, पीछे तथा मध्य में पीना चाहिये ॥ ५ ॥

यावन्तो नेत्रजान्रोगान्पानादेवापकर्षति।
सरक्ते रक्तदुष्टे च रक्ते वा विस्रुते तथा ॥ ६ ॥

सभी नेत्र के रोग इसके पीने से ही नष्ट हो जाते हैं। नेत्र लाल हों, रक्त दुष्ट नेत्र, रक्तस्राव युक्त नेत्र ॥ ६ ॥

नक्तान्ध्ये तिमिरे काचे नीलिकापटलार्बुदे।
अभिष्यन्देऽधिमन्थे च पक्ष्मकोपे सुदारुणे ॥ ७ ॥

नक्तान्ध्य तिमिर, काच, नीलिका, पटल, अर्बुद, अभिष्यन्द, अधिमन्थ, भयंकर पक्ष्मकोप ॥ ७ ॥

नेत्ररोगेषु सर्वेषु दोषत्रयकृतेष्वपि।
परं हितमिदं प्रोक्तं त्रिफलाद्यं महाघृतम् ॥ ८ ॥

सभी प्रकार के नेत्ररोगों में, तथा त्रिदोषज नेत्ररोगों में भी यह महा त्रिफलाद्यघृत परम लाभदायक होता है ॥ ८ ॥

अथ द्वितीयं त्रिफलाद्यं घृतम्—

शतमेकं हरीतक्या द्विगुणं च विभीतकम्।
चतुर्गुणं त्वामलकं वृषमार्कवयोः समम् ॥ १ ॥
चतुर्गुणोदकं दत्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत्।
भागं चतुर्थं संरक्ष्य क्वाथं तमवतारयेत् ॥ २ ॥

बड़ी हरड़ें एक सौ, बहेड़ा २००, आमला ४०० संख्या लेकर इनके छिलके उतार ले। इन सब को एकत्र करके चौगुना पानी डाल कर पका लेवे और चौथाई भाग अर्थात् एक प्रस्थ शेष रखे। बांसे का स्वरस तथा भांगरे का स्वरस भी एक २ प्रस्थ ले लें। दूध एक प्रस्थ लें। गौ का घी एक प्रस्थ लें ॥ २ ॥

शर्करा मधुकं द्राक्षा मधुयष्टी निदिग्धिका।
काकोली क्षीरकाकोली त्रिफला नागकेशरम् ॥ ३ ॥

खांड, मुलठी, दाख, मुलठी, छोटी कटेली, काकोली, क्षीरकाकोली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नागकेसर असली ॥ ३ ॥

पिप्पली चन्दनं मुस्तं त्रायमाणा तथोत्पलम्।
घृतप्रस्थं समं क्षीरं कल्कैरेतैः शनैः पचेत् ॥ ४ ॥

पिप्पली, लालचन्दन, मोथा, त्रायमान, नीलाकमल, इन सब द्रव्यों को पीस कर मिलाकर घी से चौथाई भाग लेकर कल्क करे। सब द्रव्यों को एकत्र करके घी को धीमी २ अग्नि पर पका लेवे ॥ ४ ॥

हन्यात्सतिमिरं काचं नक्तान्ध्यं शुक्रमेव च।
तथा स्रावं च कण्डूं च श्वयथुं च कषायताम् ॥ ५ ॥

इसे सेवन करें तो तिमिर, काच, नक्तान्ध्य, शुक, स्राव, कण्डू, सूजन, आंखों का कषाय अर्थात् लाल रंग होना ॥ ५ ॥

कलुषत्वं च नेत्रस्य विड्वर्त्मपटलान्वितम्।
बहुनाऽत्र किमुक्तेन सर्वान्नेत्रामयान्हरेत् ॥ ६ ॥

नेत्रों का मैलापन, नेत्रों में मैल या गीड़ आना, वर्त्मरोग, पटल रोग, और अधिक क्या कहें सभी नेत्र रोगों को यह त्रिफलाद्यघृत अच्छा करता है ॥ ६ ॥

यस्य चोपहता दृष्टिः सूर्याग्निभ्यां प्रपश्यतः।
तस्मै तद्भेषजं प्रोक्तं मुनिभिः परमं हितम् ॥ ७ ॥

जिस मनुष्य दृष्टि की सूर्य तथा अग्नि को अधिक देखने से नष्ट होगई हो। उस दृष्टि को फिर ठीक करने के लिये मुनियों ने इस घी को उत्तम कहा है ॥७॥

मार्जितं दर्पणं यद्वत्परां निर्मलतां व्रजेत्।
तद्वदेतेन पीतेन नेत्रं निर्मलतामियात् ॥
वारि द्रोणद्वयं चात्र वृषमार्कवयोस्तुले ॥ ८ ॥

जैसे दर्पण मांजने से परम निर्मल होजाता है, उसी प्रकार से इस घी को पीने से नेत्र निर्मल होजाते हैं। इसमें बांसा १०० पल तथा भांगरा एक सौ पल लेकर दो द्रोण जल में सब को डालकर पका लेवें और चौथाई भाग अर्थात् आधा द्रोण शेष रखें ॥ ८ ॥

अथ लघुत्रिफलाघृतम्—त्रिफलाक्वाथकल्काभ्यां सपयस्कं घृतं शृतम्।
तिमिराण्यचिराद्धन्यात्पीतमेतन्निशामुखे ॥१॥

त्रिफला का क्वाथ ४ सेर, गौ का घी एक सेर, त्रिफला का कल्क १ पाव सबको एकत्र मिलाकर घी पका लेवे। (क्वाथार्थ त्रिफला दो सेर, जल १६ सेर पकाकर शेष ४ सेर रखे।) ॥ इसे रात के आरम्भ में पिलाया जाय तो इससे सब प्रकार के तिमिर रोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥१॥ इति घृतानि।

अथ भृङ्गराजतैलम्—भृङ्गप्रस्थं तैलात्कुडवं तथा पलं च मधुकस्य।
क्षीरप्रस्थविपक्वं गतमपि चक्षुर्निवर्तयते ॥ १ ॥

भांगरे का स्वरस एक प्रस्थ, तिल का तेल एक कुडव, मुलठ्ठी का कल्क एक पल ले। सबको एकत्र करके तेल पकावे। फिर दूध एक प्रस्थ डालकर तैल पकावे। इस तेल के लगाने से नष्ट हुई २ आंखें भी ठीक हो जाती हैं ॥ १ ॥

अथ धावनम्—स्नानं कृष्णतिलैश्चापि चक्षुष्यमनिलापहम्।
मधुकामलकस्नानं पित्तघ्नं तिमिरापहम् ॥ १ ॥

काले तिलों का कल्क सिरपर मलकर स्नान करें तो आंखों का हित होता है तथा वायु की शान्ति होती है। मुलठ्ठी तथा आंवले से स्नान करें तो पित्तनाश होता है तथा तिमिर नाश होता है ॥ १ ॥

वचाद्यैः स्नानमिच्छन्ति श्लेष्मघ्नं तिमिरापहम्।
आमलैः सततं स्नानं परं दृष्टिबलावहम् ॥ २ ॥

वच आदि के जल से स्नान करें तो श्लेष्मा का नाश होता है तथा तिमिररोग का नाश होता है। आंवलों से निरन्तर स्नान करना दृष्टि तथा बल को बढ़ाता है।

त्रिफलायाः कषायस्तु धावनान्नेत्ररोगजित्।
कवलान्मुखरोगघ्नः पानतः कामलापहः ॥ ३ ॥

त्रिफला के क्वाथ से आंखों को धोवें तो नेत्रों के रोग नष्ट होते हैं। त्रिफला के क्वाथ के मुंह में कवल धारण करें तो मुख रोग नष्ट होते हैं। त्रिफला के क्वाथ को पिलावें तो कामला रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्यदि दीयते।
अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति ॥ ४ ॥

भोजन करने के बाद जल से हाथ धोकर उन हाथों को खूब रगड़ कर आंखों पर लगावें और धीरे २ फेरें तो तिमिररोग शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। यह नित्य करना चाहिये ॥ ४ ॥ इति तिमिर चिकित्सा।

अथ काचोपक्रमः।

काचे रक्तं जलौकाभिर्हृत्वा पूर्वोक्तमाचरेत्।
शाणार्धं मरिचं द्वौ च पिप्पल्यर्णवफेनयोः ॥ १ ॥

काचरोग में पहले जोंकें लगाकर रक्त निकलवा देवे फिर पूर्वोक्त व्रणनाशक क्रिया करे। काली मिरच आधा शाण, पिप्पली दो शाण, समुद्रफेन दो शाण ॥१॥

शाणार्धं सैन्धवाच्छाणा नव सौवीरकाञ्जनात्।
पिष्टं सुसूक्ष्मं चित्रायां चूर्णाञ्जनमिदं शुभम् ॥ २ ॥

सेंधानमक आधा शाण, सौवीराञ्जन नौ शाण, इन सबको एकत्र करके चित्रा नक्षत्र के दिन पीस ले। यह शुभ चूर्णाञ्जन है, इसका अंजन करे तो ॥२॥

कण्डूकाचकफार्तानां मलानां च विशोधनम् ॥ ३ ॥

कण्डू, काच, कफजनेत्र तथा नेत्रों के मल को दूर करता है ॥ ३ ॥ इति शार्ङ्गधरात् ॥

अथ मेषशृंगाद्यञ्जनम्—

समेषशृङ्ग्यञ्जनभागसंमितः शङ्खोऽञ्जनात्काचमलं व्यपोहति ॥१॥

मेढासिंगी, सौवीराञ्जन, शंख प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर अंजन करे इससे काच तथा मल दूर होते हैं ॥ १ ॥

अथ शिलारसादि रसक्रिया—**शिलासैन्धवकासीसशङ्खव्योषरसाञ्जनैः।**
सक्षौद्रैः काचशुक्रार्मतिमिरघ्नी रसक्रिया ॥ २ ॥

मनसिल, सेंधानमक, कसीस, शंख, सोंठ, मिरच, पीपल, रसौंत इनको सम-भाग पीसकर शहद से मिलाकर आंखों में लगावें तो काच, शुक्र, अर्म तथा तिमिर का नाश होता है ॥ २ ॥ इति काचोपक्रमः।

अथ पित्तविदग्धदृष्टेश्चिकित्सा—**रसाञ्जनं घृतक्षौद्रतालीसस्वर्णगैरिकैः।**
गोशकृद्रससंयुक्तं पित्तोपहतदृष्टये ॥ १ ॥

रसौंत, घी, शहद, तालीसपत्र, सुनहरीगेरु इन सबको समभाग लेकर चूर्ण करके गौ के गोबर के स्वरस सें खरल करके आंख में लगावें तो पित्त विदग्धदृष्टि में लाभ होता है ॥ १ ॥

अथ काश्मर्यादि—**काश्मरीपुष्पमधुकदार्वीलोध्ररसाञ्जनैः।**
सक्षौद्रमञ्जनं कुर्यात्पित्तव्याधिप्रशान्तये ॥ २ ॥

गम्भारी के फूल, मुलहठी, दारुहल्दी, लोध, रसौंत, इन सबको पीसकर शहद मिलाकर अंजन करें तो पित्तज व्याधि अर्थात् पित्त विदग्ध दृष्टि तथा पित्तज नेत्र रोग दूर होते हैं ॥ २ ॥

अथ श्लेष्मविदग्धदृष्टेश्चिकित्सा—

हरेणुमगधाबीजमज्जानं यकृदन्वितम्।
शकृद्रसेनाञ्जनं वा श्लेष्मोपहतदृष्टये ॥ १ ॥

रेणुका, मघपीपली, बिजौरे नीबू के बीजों की मज्जा सबको मिलाकर बकरे के यकृत वा जिगर कें रस से वा गौ के गोबर के स्वरस से खरल करके आंखों में लगावें तो कफोपहत दृष्टि ठीक हो जाती है ॥ १ ॥

अथ दिवान्धरात्र्यन्धयोश्चिकित्सामाह—

नलिनोत्पलकिञ्जल्कगैरिकं सयकृद्रसम् ।
गुटिकाञ्जनमेतस्य दिनरात्र्यन्धयोर्हितम् ॥ १ ॥

कमलिनी तथा नीलोफर दोनों का एक २ भाग केसर ले, गेरु एक भाग ले। सबको (बकरी के) यकृत् के रस में पीसकर गोली बना ले, इसका अंजन करें तो दिवसान्ध्य तथा रात्र्यन्ध दोनों का नाश होता है ॥ १ ॥

अथ नदीजादिगुटिका—

नदीजशङ्खत्रिकटून्रसाञ्जनं मनःशिला द्वे च निशे गवां शकृत् ।
सचन्दनेयं गुटिकाऽऽशु कृत्वा प्रशस्यते रात्रिदिने न पश्यताम् २

सौवीरांजन, शंख, सोंठ, मिरच, पीपल, रसौंत, मनसिल, हल्दी, दारुहल्दी, गौ के गोबर का स्वरस, लालचन्दन। इन सबको समभाग लेकर गुटिका बना लें। इस गुटिका को आंखों में अंजन के समान लगावें तो शीघ्र ही रात्र्यन्ध तथा दिवसान्ध्य रोगों को नष्ट करती है ॥ २ ॥

सूर्यादिदर्शनैर्दग्धे तत्र शीतं प्रयोजयेत् ।
हेम घृष्टं घृतोपेतमञ्जनं चापिशस्यते ॥ ३ ॥

सूर्यादि के देखने से दग्ध हुई २ आंखों में शीत वस्तु का प्रयोग करे। सोने को घिसकर घी में मिलाकर अंजन करें तो लाभ होता है ॥ ३ ॥

अथ केवलरात्र्यन्धचिकित्सा। रसाञ्जनादिगुटी—

रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे मालती निम्बपल्लवाः ।
गोशकृद्रससंयुक्ता वटी नक्तान्ध्यनाशनी ।
एतस्याश्चाञ्जने मात्रा प्रोक्ता सार्धहरेणुका ॥ १ ॥

रसौंत, हल्दी, दारुहल्दी, चमेली के फूल, नीम के पत्ते इन सबको समभाग लेकर गोबर के स्वरस से पीसकर गोली बना लें। इसे घिसकर आंखों में लगावें तो रात्र्यन्ध रोग नष्ट होता है। इसके अंजन में डेढ़ चने के बराबर या डेढ़ रेणुका के समान मात्रा कही है ॥ १ ॥

कणादिगुटी—कणा छागशकृन्मध्ये पक्वा तद्रसपेषिता ।
अचिराद्धन्ति नक्तान्ध्यं तद्वत्सक्षौद्रमूषणम् ॥ २ ॥

पिप्पली को बकरी की मीगनों में (यकृत् भी पाठ है अर्थात् बकरी के जिगर में भरकर पकावें। यही पाठ ठीक भी है) पकावें फिर मीगनों (जिगर) के रस से पीस लें। इसे आंखों में लगावें तो शीघ्र ही नक्तान्ध्य रोग दूर होता है। इसी प्रकार से कालीमिरच को पीसकर शहद से मिलाकर आंखों में लगावें तो भी नक्तान्ध्य रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

करंजादिवटी—करंजपद्मकिञ्जल्कचन्दनोत्पलगैरिकैः ।
गोशकृद्रससंपिष्टैर्नक्तान्ध्ये हितमञ्जनम् ॥ ३ ॥

करंज के बीज, कमल का केसर, चन्दन, नीलाकमल, गेरु। इन सबको गोबर के स्वरस में पीसकर आंखों में अंजन करें तो नक्तान्ध्य में लाभ होता है ॥३॥

रसाञ्जनाद्यञ्जनम्—**रसाञ्जनं शिला दारु जातीपत्ररसो मधु।**
नक्तान्धतां जयेदेतदंजनं साधु योजितम् ॥ ४ ॥

रसौंत, मनसिल, दारुहल्दी, चमेली के पत्तों का रस, शहद इन सबको मिलाकर अच्छी प्रकार से अंजन करें तो यह रात्र्यन्ध को नष्ट कर देता है ॥ ४ ॥

मालतीपत्राद्यञ्जनम्—**मालतीपत्रक्षौद्रं च निशाद्वयरसांजनैः।**
नक्तान्ध्यमञ्जनं हन्यात्कृष्णा वा गोमयान्विता ॥५॥

चमेली के पत्तों का स्वरस, शहद, हल्दी, दारुहल्दी तथा रसौंत इन सबको पीसकर अंजन करें तो रात्र्यन्ध का नष्ट करता है। पिप्पली को गोबर के रस से मिलाकर अंजन करें तो भी रात्र्यन्ध का नाश होता है ॥ ५ ॥

दधिमरिचयोगः—**दध्ना घृष्टं मरीचं वा रात्र्यन्धाञ्जनमुत्तमम् ॥ ६ ॥**

दही से काली मिरच को घिसकर आंखों में लगावें तो भी रात्र्यन्धरोग को नाश करने में यह योग उत्तम है॥६॥इति दिनरात्र्यन्धयोश्चिकित्सा ॥

अथ नकुलान्ध्यरोगस्य रागरहितस्य चिकित्सा—

वचा त्रिवृच्चन्दनकुण्डली च भूनिम्बनिम्बौ रजनी सवासा।
प्रस्थं जलस्य क्वाथिताष्टभागं पिबेत्सुजीर्णे नकुलान्ध्यरोगे ॥१॥

बच, त्रिवी, चन्दन, गिलोय वा अम्लतास का फल, चिरायता, नीम, हल्दी बांसा। इन सब को समभाग लेकर एक प्रस्थ जल में डालकर पकावें जब आठवां भाग शेष रह जावे तो छानकर भोजन पच जाने के पश्चात् पीवे, इस से नकुलान्ध्यरोग का नाश होता है ॥१॥ इति बङ्गसेनात् ॥ इति दृष्टिगतरोगचिकित्सा ॥

अथ कृष्णगतरोगचिकित्सा।

तत्राऽऽदौ सव्रणशुक्रप्रतीकारमाह—

व्रणशुक्रप्रशान्त्यर्थं षडङ्गं गुग्गुलुं पचेत्।
शिरसश्चाऽऽहरेद्रक्तं जलौकाभिश्च लोचनात् ॥ १ ॥

व्रणशुक की शान्ति के लिये षडङ्ग गुग्गुलु बना के खिलावे। सिर से तथा आंखों से जोंकों द्वारा खून निकलवा देवे ॥ १ ॥

ससैन्धवं त्रिवृत्क्वाथे त्रीन्वारान्पाचयेद् घृतम्।
पीत्वा सर्वेषु शुक्रेषु शीघ्रं कुर्याच्छिराव्यधम् ॥ २ ॥

त्रिवी के चतुर्गुण क्वाथ में तीन बार घी को पका लेवे, सेंधानमक का कल्क डालें। इस घी को पिलाकर शीघ्र ही सभी शुक्रों में शिरा बींध देवे ॥ २ ॥

अथ यष्ट्यह्वाद्याश्च्योतनम्—

यष्ट्याह्वदार्व्युत्पलपद्मलाक्षाप्रपौण्डरीकं नलदाम्बुना च।

आश्चोतनं स्त्रीपयसा विपकं निहन्ति तत्सव्रणदाहशुक्रम् ॥१॥

मुलठ्ठी, दारुहल्दी, नीलाकमल, लाल कमल, लाख, पुण्डरिया काष्ठ, खस का पानी तथा स्त्री का दूध सब को पकाकर आंख में आश्चोतन करे चुआवै तो यह व्रण तथा दाहयुक्त शुक्र को नाश करता है ॥ १ ॥

अथ लामज्जकाद्यञ्जनम्—लामज्जकोत्पलसितासारिवाचन्दनद्वयैः।
कार्षिकैः सारिवाप्रस्थं क्राथयेत्सलिलाढके ॥१॥

लामज्जक तृण अर्थात् पीली खस, नीला कमल, खांड, शारिवा, श्वेतचन्दन, लालचन्दन इन में से प्रत्येक द्रव्य एक २ कर्ष लेवे, शारिवा एक प्रस्थ लेवे, सब को कूठकर एक आढक जल में डालकर पकावें ॥ १ ॥

पादशेषं परिस्राव्य पचेदादर्विलेपनात्।
भाजने लोहशैले वा प्रातस्तत्सायमञ्जनम् ॥ २ ॥

जब चौथाई जल बच जाये तब छान लेवें। फिर दुबारा इस जल को तब तक पकावें जब तक वह कढ़छी से लगने योग्य गाढ़ा होजाये। इस को लोहे वा पत्थर के प्याले में पकावें। इस का प्रातःकाल तथा सायंकाल अंजन करें ॥२॥

प्रधानमेतच्छुक्रघ्नं व्रणशुक्रं शमं नयेत्।
श्यामामूलकषायं वा मधुना व्रणशुक्रिणाम् ॥ ३ ॥

तो शुक्रनाश करने में यह प्रधान योग है, तथा व्रणशुक्र को नाश करता है॥ अथवा श्यामशारिवा की जड़ का क्वाथ शहद मिलाकर आंख में डालें और पिलावें तो भी व्रणशुक्र का नाश होता है ॥ ३ ॥

अथ चन्दनादिवर्तिः—चन्दनं गैरिकं लाक्षा मालतीकलिकान्विता।
व्रणशुक्रहरी वर्तिः शोणितस्य प्रसादनी ॥१॥

लालचन्दन, गेरू, लाख, चमेली की कलियां इन सब को पीसकर बत्ती बनावें। इस के लगाने से व्रणशुक्र का नाश होता है तथा खाने से रक्त साफ होता है ॥ १ ॥

अथाव्रण शुक्रचिकित्सा। अथाऽऽश्चोतनम्—

जात्याः प्रवालं मधुकं च सर्पिर्भृष्टं सुखोष्णाम्बुसुशीतलं च।
आश्चोतनं शुक्रहरं प्रदिष्टं शुक्रापहं स्त्रीपयसा महार्हम् ॥ १ ॥

चमेली की बन्द कलियां, मुलठ्ठी इन को घी में भूनकर गरम पानी को खूब ठंडा करले उस का आंखों में आश्चोतन करे तो शुक्र का नाश होता है। और यदि स्त्री का दूध भी मिलाकर इस योग को आंखों में डालें तब तो शुक्र नाश करने में यह महामूल्य योग है ॥ १ ॥

अथ धात्रीफलादिसेचनम्—

धात्रीफलं निम्बकपित्थपत्रं यष्ट्याह्वलोध्रं खदिरं तिलाश्च।
क्वाथः सुशीतो नयनेऽभिषिक्तः सर्वप्रकारं विनिहन्ति शुक्रम् ॥ १ ॥

आंवला, नीम के पत्ते, कैथ के पत्ते, मुलठी, लोध, खैर, तिल इन सब का क्वाथ शीतल कर के आंखों में डालें तो सब प्रकार के शुक्र का नाश करता है ॥१॥

अथ वर्तयः—पलाशपुष्पस्वरसैर्बहुशः परिभाविता।
करञ्जबीजवर्तिस्तु दृष्टेः पुष्पं व्यपोहति ॥ १ ॥

पलाश अर्थात् ढाक के फूलों के स्वरस से बहुत बार भावित किये हुए करंज के बीजों की बत्ती बना लेवे। इसे आंख में लगावें तो दृष्टि के पुष्प अर्थात् पुतली पर उत्पन्न हुए २ फोले का नाश करती है ॥ १ ॥

समुद्रफेनवर्तिः—समुद्रफेनसिन्धूत्थशङ्खदत्ताण्डवल्कलैः।
शिग्रुबीजयुतैर्वर्तिः शुक्रादीन्शस्त्रवल्लिखेत् ॥ २ ॥

समुद्रफेन, सेंधानमक, शंख, कुक्कड़ के अंडों की छाल, सुहांजन के बीज। इन सब को समभाग लेकर बत्ती बनाकर आंख में लगावें तो शुक्रादियों का लेखन करती है। अर्थात् खुरच कर शुक्र को दूर कर देती है ॥ २ ॥

अथ चन्द्रोदयावर्तिः—रसांजनं सशैलेयं कुङ्कुमं समनःशिलम्।
शङ्खं सश्वेतमरिचं शर्करा चेति सप्तमम् ॥ १ ॥

रसौंत, शिलारस, कश्मीरी केसर, मनसिल, शंख, श्वेत मिरच, खांड इन सब को समभाग लेकर पीसकर जल से बत्ती बना लेवे ॥ १ ॥

एषा चन्द्रोदया नाम वर्तिर्वैदेहनिर्मिता।
हन्यात्पिल्लं च कण्डूं च शुक्रं सतिमिरार्बुदम् ॥ २ ॥

यह चन्द्रोदयावर्त्ति बिदेह ने बनाई थी। इसे लगाने से पिल्ल, कण्डू, शुक्र, तिमिर तथा अर्बुदरोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

अथाञ्जनम्—वटक्षीरेण संयुक्तं मुख्यं कर्पूरजं रजः।
क्षिप्रमंजनतो हन्ति कुसुमं तु द्विमासिकम् ॥ १ ॥

बड़ के दूध से कपूर का चूर्ण पीसलें, और आंख में लगा देवें तो दो महीने का पुष्प शीघ्र ही नष्ट होजाता है ॥ १ ॥

संघृष्य पिप्पलीचूर्णं सफेनं कांस्यभाजने।
सक्षौद्रं सैन्धवोपेतमंजनं शुक्रनाशनम् ॥ २ ॥

पिप्पली का चूर्ण, समुद्रफेन, शहद तथा सेंधानमक इन सब को कांसी के पात्र में डालकर पीसलें। इस का अंजन करने से शुक्र नाश होता है ॥ २ ॥

अथ चत्वारः शुक्रनाशनाःयोगाः—

ताप्यं मधूकसारो वा बीजं चाक्षस्य सैन्धवम्।
मधुनाऽञ्जनयोगाः स्युश्चत्वारः शुक्रनाशनाः ॥ ३ ॥

सोनामाखी को शहद से घिसकर आंखों में लगावें तो शुक्रनाश होता है। अथवा महुए का सार वा रस शहद से मिलाकर आंखों में डालें तो भी शुक्रनाश

होता है । बहेड़े के बीज की गिरी को शहद से मिलाकर आंखों में लगावे तो भी शुक्र नाश होता है । अथवा सेंधानमक शहद से मिलाकर आंखों में लगावें तो भी शुक्रनाश होता है । ये चारों योग शुक्रनाशक हैं ॥ ३ ॥

अथ कुक्कुटाण्डाद्यञ्जनम्-कुक्कुटाण्डकपलानि शङ्खः काचोऽथ चन्दनम् ।
सैन्धवार्धांशसंयुक्तमंजनं शुक्रलेखनम् ॥ ४ ॥

कुक्कुड़ के अण्डों के छिलके, शंख, काचलवण, चन्दनलाल प्रत्येक द्रव्य एक २ भाग लें, सेंधानमक आधा भाग सबको मिलाकर पीसकर आंखों में अंजन करें तो शुक्र का लेखन होता ह अर्थात् शुक्र कट जाता है ॥ ४ ॥

अथ लोहादिगुग्गुलुः—

अयश्च यष्टीत्रिफलाकणानां चूर्णानि तुल्यानि पुरेण नित्यम् ।
सर्पिर्मधुभ्यां सह भक्षितानि सर्वाणि शुक्राणि निहन्ति शीघ्रम् ॥१॥

लोहभस्म, हरड़, बहेड़ा, आंवला, पीपल इन सबका चूर्ण एक २ भाग लेकर सबके समान ही शुद्ध गूगल डालकर मिला ले । इसमें शहद तथा घी मिलाकर खिलावें तो सभी प्रकार के शुक्र शीघ्र नष्ट होजाते हैं ॥ १ ॥

अथ पटोलाद्यं घृतम्—पटोलं कटुकादार्वीनिम्बवासाफलत्रिकम् ।
दुरालभां पर्पटकं त्रायन्तीं च पलोन्मिताम् ॥ १ ॥

पटोलपत्र, कुटकी, दारुहल्दी, नीम, बांसा की जड़, हरड़, बहेड़ा, आंवला, जवासा, पित्तपापड़ा, त्रायमाण प्रत्येक द्रव्य एक २ पल लें ॥ १ ॥

प्रस्थमामलकानां च क्वाथयेन्नल्वणेऽम्भसि ।
तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २ ॥

आमले एक प्रस्थ लें । सबको एकत्र मिलाकर एक द्रोण जलमें डालकर पकालें । जब चौथाई जल शेष बचे । तो छानकर उस क्वाथ में एक प्रस्थ घी डालें॥२॥

कल्कैर्भूनिम्बकुटजमुस्तयष्ट्याह्वचन्दनैः ।
सपिप्पलीकैस्तत्सिद्धं चक्षुष्यं शुक्रयोजितम् ॥ ३ ॥

और चिरायता, कुड़े की छाल, मोथा, मुलट्ठी, लालचन्दन, पिप्पली इनमें से प्रत्येक द्रव्य एक २ भाग लेकर सबको मिलाकर चौथाई प्रस्थ लेकर कल्क करें । फिर क्वाथ, घी और कल्क को एकत्र डालकर घी पकालें । इस घी को आंखों में लगावें तो आंखों के लिये लाभदायक है ॥ ३ ॥

घ्राणकर्णाक्षिवर्त्मत्वङ्मुखरोगव्रणापहम् ।
कामलाज्वरवीसर्पगण्डमालापहं परम् ॥ ४ ॥

नाक, कान, आंख, वर्त्म, त्वचा, मुखरोग तथा व्रणों को नाश करता है । कामला, ज्वर, वीसर्प तथा गण्डमाला के नाश करने में परमोत्तम है ॥ ४ ॥

अथ कृष्णाद्यं तैलम्—कृष्णाविडङ्गमधुयष्टिकासिन्धुजन्म-
विश्वौषधैः पयसि सिद्धमिदं छगल्याः ।

तैलं व्रणं तिमिरशुक्रशिरोऽक्षिवर्त्म-
पाकात्ययाञ्जयति नस्यविधौ प्रयुक्तम् ॥ १ ॥

पिप्पली, विडङ्ग, मुलठ्ठी, सेंधानमक, सोंठ इन सब को समभाग लेकर कल्क करे। इस कल्क से चौगुना तिलों का तेल, और तेल से चौगुना बकरी का दूध मिलाकर तेल पकालें। इस तेल की नस्य लें तो तिमिर, शुक्र, शिरोरोग, अक्षि रोग तथा वर्त्मरोग तथा पाकात्यय अथवा अक्षिवर्त्म पाकात्यय को नष्ट करता है॥१

अथाक्षिपाकात्ययचिकित्सामाह—

एर्वारु पुण्डरीकं च गवां क्षीरावशेषितम्।
रागाश्रुवेदनां हन्यादक्षिपाकात्ययं तथा ॥ १ ॥

ककड़ी, पुण्डरीक काष्ठ इन को समभाग लेकर सोलह गुणा गौ के दूध में डालकर दूध से चौगुना जल डालकर पकावें। दूधमात्र शेष रहने पर छान लेवे। इस दूध को आंखों में डालें तो रोग या आंख की लाली अश्रु, वेदना तथा अक्षि पाकात्यय रोगों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

अथाजकाचिकित्सामाह—मूर्धाक्षिकर्णभ्रूगण्डशङ्खवर्त्माश्रिताऽऽजका।
जायते व्यथते नेत्रं मथ्यमानमिवान्तरा ॥१॥

सिर, आंख, कान, भ्रू, गण्ड, शंख, वर्त्म इन स्थानों में हुई २ अजका से नेत्र में पीड़ा होती है तथा बीच २ में मथित होता हुआ नेत्र प्रतीत होता है ॥१॥

उष्णमश्रु स्रवत्यक्षि दूषितं क्लिद्यते भृशम्।
असाध्यरोगसंभूतां दृष्टिजां च विवर्जयेत् ॥ २ ॥

गरम २ आंसू आंख से निकलते हैं आंख दूषित होती है तथा बार २ भीगी रहती है। यह अजका यदि असाध्य रोगों से उत्पन्न हुई हो तथा दृष्टि में उत्पन्न हो गई हो तब चिकित्सा न करे ॥ २ ॥

स्वयं प्रवृद्धां कठिनां चिरकालोत्थितामपि।
साध्यरोगसमुत्पन्नां कृष्णजां त्वजकां जयेत् ॥ ३ ॥

यदि स्वयं ही बढ़ता जाये और कठिन हो फिर चाहे चिरकाल से भी हुई २ हो, परन्तु साध्य रोगों से उत्पन्न हुई हो तो कृष्ण मण्डल की अजका की भी चिकित्सा करे ॥ ३ ॥

अजकायां शिरां मुक्त्वा त्रिवृच्चूर्णैर्विरेचयेत्।
घृतं वातहरैः सिद्धमजकायां प्रयोजयेत्।
सेके पाने तथाऽभ्यङ्गे भोज्ये दृष्टिविदां वरः ॥ ४ ॥

अजका में शिरा बींध देवे, और त्रिवी के चूर्ण से विरेचन देवें। वातनाशक द्रव्यों से पकाया हुआ घी अजका में देवे। इस घी को अजका पर सिंचन करे, पान करावे, मालिश करावे, भोजन में देवे ॥ ४ ॥

पक्ववटपत्रपुटके निधाय मासं धवलकर्कटकान्।
पुटवद्विदह्य बद्ध्वा तद्रससेको जयेदजकाम् ॥ ५ ॥

श्वेत केंकड़ों को पके हुए पीले बड़ के पत्तों के दोने में डालकर एक मास रखे। फिर पुटपाक के समान दग्ध कर के उस का रस निकाल कर आंख में डाले तो अजका नष्ट होती है ॥ ५ ॥

गवामस्थित्वचं कांस्ये विनिर्घृष्य सुखाम्बुना।
पूरयेदक्षि तेनाऽऽशु प्रशाम्यत्यजकामयः ॥ ६ ॥

गौ की हड्डी की ऊपर की खाल कांसी के पात्र में कोसे २ जल से घिसकर आंखों को पूरण करे उस से अजकारोग शीघ्र प्रशान्त होता है ॥ ६ ॥

अङ्गारपक्वशम्बूकरसेनाऽऽश्चोतनाञ्जनम्।
कर्पूरचूर्णयुक्तेन शाम्यते त्वजकामयः ॥ ७ ॥

अंगारों पर पकाये हुए शम्बूक अर्थात् घोंघों के मांस का रस कपूर के चूर्ण से मिलाकर आंखों में आश्च्योतन करें तो अजकारोग शान्त होता है ॥७॥

सैन्धवं वाजिपादं च गोरोचनसमायुतम्।
शेलुत्वग्रससंयुक्तं पूरणं चाजकापहम् ॥ ८ ॥

सेंधानमक, असगंध की जड़ वा बांसे की जड़, गोरोचन, लसूड़े की छाल का रस इन सब को मिलाकर आंख में डाले तो अजका का नाश होता है ॥ ८ ॥

अथ शशकादिघृतम्—शशकस्य कषाये तु घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
कल्कं दद्यात्तु सक्षीरं यथोक्तान्कर्षसंमितान् ॥१॥

शशक के मांस का क्वाथ करें। यह क्वाथ ४ प्रस्थ लें। घी १ प्रस्थ लेवें। दूध भी एक प्रस्थ लेवें ॥ १ ॥

सारिवा मधुकं लाक्षा चन्दनं नीलमुत्पलम्।
बला चातिबला चैव मृणालं पत्रकं तथा ॥ २ ॥

कल्कार्थ, सारिबा, मुलहठी, लाख, चन्दन, नीला कमल, बला, अतिबला, मृणाल या भिस, तेजपात ॥ २ ॥

कार्षिकं सविषं लोध्रं जीवनीयगणान्वितम्।
घृतमेतत्प्रयोक्तव्यं पाने नस्ये च पूरणे ॥ ३ ॥

इन में से प्रत्येक द्रव्य एक २ कर्ष लेवें। शुद्ध वत्सनाभ विष १ कर्ष, लोध एक कर्ष, जीवनीयगण के द्रव्य एक कर्ष। सब का कल्क कर के घी में डाले। और यथाविधि घी पका लेवे। इस घी को पिलाने से, नस्य में देने से, आंखों में पूरन करने से ॥ ३ ॥

अजकामर्जुनं काचं पटलं शुक्रमेव च।
तथाऽक्षिरोगान्सकलान्वातपित्तोत्तराञ्जयेत् ॥ ४ ॥

अजका, अर्जुन, काच, पटल, शुक्र, तथा सभी बात पित्तज आंख के रोगों को नाश करता है ॥ ४ ॥ इति कृष्णगतरोगचिकित्सा ॥

अथ शुक्लजाः।

प्रस्तार्यर्माथ स्नाय्वर्म तथैवार्माधिमांसकम्।
लोहितार्म सशुक्लार्म शुक्लप्राप्तानि वेदयेत् ॥ १ ॥

प्रस्तार्यम, स्नाय्वर्म, अधिमांसार्म, लोहितार्म, शुक्लार्म इनको शुक्ल भाग में हुआ २ जाने ॥ १ ॥

अर्मवाच्यं दधिनिभं नीलं रक्तमथापि वा।
धूसरं तनु यच्चाऽऽशु शुक्रवत्समुपाचरेत् ॥ २ ॥

दही के समान श्वेत अर्म, नील अर्म, रक्तअर्म, धूसर अर्थात् भूरे रंग का पतला तथा जो आशु अर्थात् शीघ्र होने वाला अर्म है उस की शुक्र के समान चिकित्सा करे ॥ २ ॥

अथ कृष्णादिपुटपाकः—कृष्णालोहरजस्ताम्रशङ्खविद्रुमसिन्धुजैः।
समुद्रफेनकासीसस्रोतोजदधिमस्तुभिः ॥
लेखने वा कृते तस्य परं धारणमिष्यते ॥ १ ॥

पीपली, लोहचूर्ण, तांबे का चूर्ण, शंख का चूर्ण, मूंगे का चूर्ण, सेंधानमक, कसीस, सौवीरांजन इन सबको समभाग पीसकर दही के जल से मिलाकर आंखों में लगावें तो लेखन करता है तथा धारण करता है ॥ १ ॥

अथ पिप्पल्यादिगुटिकाञ्जनम्—

पिप्पलीत्रिफलालाक्षालोहचूर्णं ससैन्धवम्।
भृङ्गराजरसे पिष्टं गुटिकाञ्जनमिष्यते ॥ १ ॥

पिप्पली, हरड, बहेडा, आंवला, लाख, लोहे का चूर्ण, सेंधानमक इन सब को समभाग लेकर भांगरे के स्वरस में पीस लें और गोली बना लें। इस का अंजन करें ॥ १ ॥

अर्म सतिमिरं काचं कण्डूं शुक्रमथार्जुनम्।
अजकां नेत्ररोगांश्च हन्यान्निरवशेषतः ॥ २ ॥

अर्म, तिमिर, काच, कण्डू, शुक्र, अर्जुन, अजका, नेत्ररोग इन सबको नष्ट करने में यह श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

अथ मरिचादिलेपः—संचूर्ण्य मरिचाक्ते च रजन्या रसमर्दिते।
लेपनादर्मणां नाशं करोत्येष प्रयोगराट् ॥ १ ॥

मिरच तथा बहेड़ा इन दोनों को समभाग लेकर ताजी हल्दी के स्वरस में मर्दन करके आंखों पर लेप करें तो इस प्रयोगराज से अर्मों का नाश होता है ॥ १ ॥

अथ पुष्पाद्यादिरसक्रिया—पुष्पाद्यतार्क्ष्यजसितोदधिफेनशङ्ख-
सिन्धूत्थगैरिकशिलामरिचैः समांशैः।

पिष्टैस्तु माक्षिकरसेन रसक्रियेयं
हन्त्यर्मकाचतिमिरार्जुनवर्त्मरोगान् ॥ १ ॥

पुष्पाञ्जन अर्थात् श्वेतांजन वा तिल के फूल, बहेड़ा, रसौंत, खांड, समुद्रफेन, शंख, सेंधानमक, गेरु, मनसिल, मिरच, इन सबको समभाग लेकर शहद से मिलाकर पीसकर आंख में लगाया जाये तो अर्म, काच, तिमिर, अर्जुन, वर्त्म के रोग सभी नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

क्रिया शुक्लामये कार्या पित्ताभिष्यन्दजिच्छुभा ।
बलासाह्वयपिष्टे तु कार्यं शोणितमोक्षणम् ॥ २ ॥

शुक्ल पटल के रोगों में पित्ताभिष्यन्द को नष्ट करने वाली क्रिया करनी चाहिये । बलासाह्वय, तथा पिष्ट में रक्त निकलवाना चाहिये ॥ २ ॥

कफाभिष्यन्दजित्सर्वं क्रमं कुर्याद्विचक्षणः ।
अञ्जनं कट्फलव्योषबीजपूररसांजनैः ।
अर्जुने शर्करामस्तुक्षौद्रैराश्चोतनं हितम् ॥ ३ ॥

तथा सभी क्रम कफाभिष्यन्दजित् करना चाहिये । कायफल, सोंठ, मिरच, पीपल, बिजौरा नींबू का स्वरस तथा रसौंत इनका अंजन करे । अर्जुनरोग में खांड, दही का पानी, तथा शहद इन सबको मिलाकर आंखों में डालें तो यह आश्चोतन अर्जुन रोग को दूर करता है ॥ ३ ॥

शंखाद्यञ्जनमर्जुने—शङ्खः क्षौद्रेण संयुक्तः कतकः सैन्धवेन वा ।
सितयाऽर्णवफेनो वा पृथगञ्जनमर्जुने ॥ ४ ॥

शंखाद्यञ्जनमर्जुने—शंख का चूर्ण शहद से मिलाकर आंखों में डालें तो भी अर्जुन का नाश होता है, निर्मली का फल सेंधानमक से डालें तो भी अर्जुन का नाश होता है, मिश्री का चूर्ण, समुद्रफेन का चूर्ण समभाग मिलाकर अर्जुनरोग में अंजन करे । इनसे अर्जुन का नाश होता है ॥ ४ ॥ इति शुक्लगतरोगचिकित्सा ।

अथ वर्त्मपद्मजाः ।

उत्सङ्गिनी बहलकर्दमवर्त्मनी च
श्यावं च यच्च पठितं त्विह अर्शवर्त्म ।
क्लिष्टं च पोथकियुतं खलु वर्त्म यच्च
कुम्भीकिनी च सह शर्करया च लेख्याः ॥
श्लेष्मोपनाहलगणं च बिसं च भेद्या
ग्रन्थिश्च यः कृमिकृतोऽञ्जननामिका च ॥ १ ॥

उत्सङ्गिनी, बहलवर्त्म, कर्दमवर्त्म, श्याववर्त्म, अर्शवर्त्म, क्लिष्टवर्त्म, पोथकी, कुम्भीका, वर्त्मशर्करा ये सभी रोग लेख्य हैं । अर्थात् इनका लेखन करना चाहिये । श्लेष्मा से सूजे हुए लगण, बिसवर्त्म, कृमिकृतग्रन्थि तथा अंजननामिका

इनका भेदन करना चाहिये ॥ १ ॥

अथ अंजननामिकाचिकित्सामाह—

स्विन्नां भित्त्वा विनिष्पीड्य भिन्नामञ्जननामिकाम्।
शिलैलानतसिन्धूत्थैः सक्षौद्रैः प्रतिसारयेत् ॥ २ ॥

पहले अंजननामिका अर्थात् अंजनहारी को स्वेद देवे फिर दबाकर भेदन कर देवे। फिर मनसिल, इलायची, तगर, सेंधानमक इनको समभाग लेकर पीसकर शहद से मिलाकर प्रतिसारन करे। अर्थात् उंगली पर इस कल्क को लगाकर अंजनहारी पर लगाकर उंगली से घिसता रहे ॥ २ ॥

रसाञ्जनमधुभ्यां वा भित्त्वा शस्त्रेण वर्त्मवित्।
प्रतिसार्याञ्जनैर्युज्यादुष्णैर्दीपशिखोद्भवैः ॥ ३ ॥

वर्त्म रोगों को जानने वाला चिकित्सक शस्त्र से अञ्जनहारी को काटकर रसौंत तथा शहद से प्रतिसारण करे। अथवा गरम २ प्रतिसार्याञ्जन से जो दीपक की शिखा पर से बनाये गये हों उसे प्रतिसारन करे ॥ ३ ॥

स्वेदयेत् घृष्टयाऽङ्गुल्या हरेद्रक्तं जलौकया।
करे संघृष्य दुर्वर्णमञ्जयेल्लोचने मुहुः ॥ ४ ॥

उंगली को घिसकर अर्थात् रगड़ने से गरम करके उंगली को अंजनहारी पर लगावे इस प्रकार उसका स्वेदन करे। फिर जोकों से रक्त निकलवा देवे। फिर एलवालुक को हाथ से घिसकर आंखों पर बार २ लगावे ॥ ४ ॥

द्वित्रिवारान्शमयति कण्डूदोषान्विताञ्जनम्।
रसांजनं व्योषयुतं सपिष्टं वटकीकृतम् ॥ ५ ॥

तो यह प्रयोग दो तीन बार में ही कण्डूदोष से युक्त अंजननामिका को नष्ट कर देता है। रसौंत, सोंठ, मिरच, पीपल, (पिष्टं—सीसा या नाग) सीसाभस्म इन सबको समभाग पीसकर गोली बना ले ॥ ५ ॥

कण्डूपाकान्वितं हन्ति नूनमंजननामिकाम्।
रोचनाक्षारतुत्थानि पिप्पल्यः क्षौद्रमेव च ॥ ६ ॥
प्रतिसारणमेकैकं भिन्ने लगण इष्यते।
निमेषं नाशमायाति सर्पिस्तेन च पूरणम् ॥ ७ ॥

इसे आंखों में लगावें तो कण्डू तथा पाक से युक्त अंजननामिका रोग को नष्ट करती है। गोरोचन, यवक्षार, नीलाथोथा, पीपली इन में से एक २ द्रव्य से शहद मिलाकर भिन्न अर्थात् कूटे हुए लगण पर लगाकर प्रतिसारण करे। इससे निमेष का भी नाश होता है, इनही से बने हुए घी से आंखों में पूरन करना चाहिये ७

स्वेदयित्वा विसग्रन्थि छिद्राण्यस्य निराश्रयेत्।
पक्कं भित्त्वा तु शस्त्रेण सैन्धवेन प्रपूरयेत् ॥ ८ ॥

बिसग्रन्थि को स्वेदन करके इसके छिद्रों को निराश्रय करदे अर्थात् आश्रय से अलग करदे वा छील देवे। पक जाने पर शस्त्र से भेदन करके सेंधानमक से छिद्रों को पूरण करदे ॥ ८ ॥ इति निमेष विषग्रन्थी।

अथ क्लिन्नवर्त्म—**आलदारुवचाः पिष्ट्वा सुरसापत्रवारिणा।**
छायाशुष्का कृता वर्तिः क्लिन्नवर्त्मनिवारणी ॥ १ ॥

हड़ताल, दारुहल्दी, बच इन सबको समभाग लेकर तुलसी के पत्तों के स्वरस से घोटकर छाया में सुखाकर बर्त्ति बनाकर आंख में लगावें तो क्लिन्नवर्त्म-रोग का नाश करती है ॥ १ ॥

अथ रसांजनाद्यञ्जनम्—**रसांजनं सर्जरसो जातीपुष्पं मनःशिला।**
समुद्रफेनो लवणं गैरिकं मरिचानि च ॥ २ ॥

रसौंत, राल, चमेली के फूल, मनसिल, समुद्रफेन, लवण, गेरु, मिरचें ॥२॥

एतत्समांशं मधुना पिष्ट्वा प्रक्लिन्नवर्त्मनि।
अंजनं क्लेदकण्डूघ्नं पक्ष्मणां च प्ररोहणम् ॥ ३ ॥

इन सबको समभाग लेकर पीसकर शहद से मिलाकर प्रक्लिन्नवर्त्म में अञ्जन करे। इससे क्लेद तथा कण्डू नष्ट हो जाते हैं। तथा पक्ष्म तथा पलकों के बाल उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ३ ॥

अथ पिल्लम्—**पित्तश्लेष्मप्रकोपेण वर्त्मान्तः संप्रकुप्यते।**
नाम्नाऽतिलोमशं वाऽपि विक्लिष्टं पिल्लमेव च ॥ १ ॥

पित्तकफ के प्रकोप से वर्त्म के अन्दर के भाग प्रकुपित हो जाते हैं। उसका नाम अतिलोमश है वा कष्टदायक पिल्लरोग है ॥ १ ॥

वर्त्मावलेख्यं बहुशस्तद्वच्छोणितमोक्षणम्।
पुनः पुनर्विरेकं च पिल्लरोगातुरो भजेत् ॥ २ ॥

इसमें वर्त्म का अवलेखन करे अर्थात् बहुत बार खुरचे। और रक्त निकलवाता रहे। तथा पिल्लरोगवाला बार २ जुलाब लेवे ॥ २ ॥

पिल्ली स्निग्धो वमेत्पूर्वं क्रियाव्यवसृतेऽसृजि।
शिलारसांजनव्योषगोपित्तैर्वर्तिरंजनम् ॥ ३ ॥

पिल्लरोगी पहले खून निकलवाकर स्निग्ध होवे फिर वमन लेवे। फिर, मनसिल, रसौंत, सोंठ, मिरच, पीपल, गौ का पित्त इन सबको समभाग पीसकर बर्त्ति बनाकर अंजन करे ॥ ३ ॥

पिल्लघ्नं छागमूत्रेण भावितं देवदारु च।
हरितालवचादारुसुरसारसपेषितम्।
अभयारससंपिष्टं तगरं पिल्लनाशनम् ॥ ४ ॥

तो पिल्ल का नाश होता है। देवदारु को बकरे के मूत्र में भावित करके आंख में लगावें तो भी पिल्लरोग नष्ट हो जाता है। हड़ताल, बच, दारुहल्दी सबको

समभाग लेकर तुलसी के स्वरस में घोटकर आंख में लगावें तो पिल्लरोग नष्ट होता है। हरड़ के रस से पीसकर तगर को आंख में लगावे तो पिल्ल रोग नष्ट होता है॥ ४॥

ताम्रपात्रे गुहामूलं सिन्धूत्थं मरिचान्वितम्।
आरनालेन संघृष्टमंजनं पिल्लनाशनम्॥ ५॥

ताम्बे के पात्र में सिंहीपुच्छी नामक पृष्टपर्णी वा शालपर्णी की जड़, सेंधानमक, मिरच। इन सबको कांजी से पीसकर अंजन करने से पिल्लनाश होता है।५

तुत्थकस्य पलं श्वेतमरिचानि च विंशतिः।
त्रिंशता कांजिकपलैः पिष्ट्वा ताम्रे निधापयेत्॥ ६॥

नीलाथोथा एकपल, श्वेत मिरच २० संख्या, कांजी ३० पल इन सबको ताम्बे के पात्र में घोटकर तांबे के पात्र में पड़ा रहने दें॥ ६॥

पिल्लानपिल्लान्कुरुते बहुवर्षोत्थितानपि।
उत्सेकेनोपदेहेन कण्डूशोथांश्च नाशयेत्॥ ७॥

इसे आंख में लगावें सो अनेक वर्षों से हुए २ पिल्लरोग भी नष्ट होते हैं। इसे लगाने से तथा उपदेह अर्थात् लेप करने से कण्डू तथा शोथ नष्ट होते हैं॥७॥

अथ पद्मरोगयोश्चिकित्सा—**रक्षन्नक्षि दहेत्पद्म तप्तलोहशलाकया।**
पद्मकोपे पुनर्नैवं कदाचिद्रोमसंभवः॥ १॥

पद्मकोपरोग में आंख की रक्षा करते हुए अग्नि में तपी हुई लोहे की शलाका से पद्म को जला देवे इस प्रकार से फिर रोम कभी नहीं निकलते॥१॥

पुष्पकासीसचूर्णं वा सुरसारसभावितम्।
ताम्रे दशाहं तद्योज्यं पद्मशातनलेपनम्॥ २॥

अथवा पुष्प कासीस का चूर्ण तुलसी के स्वरस से ताम्र के पात्र में १० दिन तक भावित करे। इसे फिर पद्मों पर लगावें तो पद्मशातन अर्थात् बाल गिरने के रोग में यह लेप उत्तम है॥ २॥ इति वर्त्मपद्मजाः॥

अथ संधिजानां चिकित्सामाह।

तत्र पूयालसचिकित्सा—**पूयालसे शिरां भित्त्वा लेपोपनाहकर्मभिः।**
नेत्रपाकविधिं कुर्यात्परमुक्ताञ्जनं हितम्॥१॥

पूयालसरोग में शिरा को भेदन कर के लेप तथा उपनाह कर्म करे तथा नेत्रपाक बिधि में कहे हुए अंजन को लगावे॥ १॥

आर्द्रकस्वरसैर्घृष्टं सिन्धुकासीससंमितम्।
छायाशुष्कां वर्टी कुर्यात्पूयाख्ये हितमञ्जनम्॥ २॥

सेंधानमक तथा कसीस समभाग लेकर अदरक के स्वरस में घिसकर गोली बना छाया में सुखा लेवें। इस का पूयालसरोग में अंजन लगावें तो हितकारी है॥२

अथोपनाहालज्योश्चिकित्सा—हितोपनाहे त्वलजे पिप्पलीमधुसैन्धवैः ।
विलिखेन्मण्डलाग्रेण छेदयेद्वा समन्ततः ॥१॥

उपनाह तथा अलज में पिप्पली, मधु, सेंधानमक इन सब को मिलाकर लेखन करे । अथवा सब ओर से मण्डलाग्र शस्त्र से छेदन कर देवे ॥ १ ॥

अथ स्रावाः—स्रावेषु त्रिफलाक्वाथं यथादोषं प्रयोजयेत् ।
क्षौद्रेणाऽऽज्येन पिप्पल्या मिश्रं विध्येच्छिरां तथा ॥ १ ॥

कफादि दोषों के स्रावों में दोषों के अनुसार ही त्रिफला के क्वाथ में शहद, घी तथा पिप्पली मिलाकर पिलावें, और शिरा को बेधें ॥ १ ॥

अथ पथ्यादिवर्त्तिः—

पथ्याक्षधात्रीफलमध्यबीजैस्त्रिद्व्येकभागैर्विदधीत वर्त्तिम् ।
तयाऽञ्जयेदस्रमतिप्रवृद्धमदणोहरेत्कष्टमपि प्रकोपम् ॥ २ ॥

हरड़, बहेड़ा, आंवला इन सब के बीजों का गूदा क्रमशः तीन, दो तथा एक भाग लेवे । इन सब को पीसकर बत्ती बनाकर आंखों में अंजन करे तो अति बढ़े हुए नेत्रस्राव और कष्टदायक आंखों के प्रकोप को नष्ट करता है ॥ २ ॥

अथ कार्पासाद्यञ्जनम्—कार्पासीफलजम्ब्वाम्रजलैर्घृष्टं रसाञ्जनम् ।
मधुयुक्तं चिरोत्थं च चक्षुःस्रावमपोहति ॥ ३ ॥

कपास के फल, जामुन तथा आम के जल में रसौंत को घिसकर शहद मिलाकर अंजन करें तो चक्षुःस्राव पुराना भी हो तो भी नष्ट होता है ॥ ३ ॥

अथ पर्वणी—पर्वणीपिटकां संधिभागे छिन्द्यादसंशयम् ।
हितमाश्चोतनं तत्र योजयेन्मधुसैन्धवैः ॥ १ ॥

पर्वणीपिटिका को संधि भाग में अवश्य छेदन करे । और शहद तथा सेंधा नमक मिलाकर आंखों में आश्चोतन करे । इस से पर्वणीरोग नष्ट होता है ॥१॥

अथ जन्तुग्रन्थिः—त्रिफलामृतकासीससैन्धवैः सरसाञ्जनैः ।
रसक्रियां कृमिग्रन्थौ भिन्ने स्यात्प्रतिसारणम् ॥ १ ॥

कृमिग्रन्थिरोग में त्रिफला, गिलोय, कासीस, सेंधानमक तथा रसौंत इन सब की रसक्रिया कर के लगावे । और जब वह कृमिग्रन्थि फूट जावे तो प्रतिसारण क्रिया करे ॥ १ ॥ इति सन्धिजाः ॥

अथ समस्तनेत्रजरोगचिकित्सामाह ।

तत्र सेकविधिः—सेकस्तु सूक्ष्मधाराभिः सर्वस्मिन्नयने हितः ।
मीलिताक्षस्य मर्त्यस्य प्रदेयश्चतुरङ्गलः ॥ १ ॥

सभी नेत्ररोगों में मनुष्य की आंखें बंद करा के अम्लतास की छाल के क्वाथ को सूक्ष्म धाराओं से आंखों पर डालना चाहियें ॥ १ ॥

सर्वोऽपि स्नेहनो वाते रक्ते पित्ते च रोपणः ।

लेखनश्च कफे कार्यस्तत्र मात्राऽधुनोच्यते ॥ २ ॥

सभी स्नेहन कर्म वात में करें, रक्त तथा पित्त में रोपण कर्म करे, कफ में लेखन कार्य करे। इन में मात्रा अर्थात् कितनी २ देर तक ये कर्म करने चाहियें आगें लिखते हैं ॥ २ ॥

षड्वाक्शतैः स्नेहनेषु चतुर्भिश्चैव रोपणे।
वाक्शतैश्च त्रिभिः कार्यः सेको लेखनकर्मणि ॥
कार्यस्तु दिवसे सेको रात्रौ वाऽऽत्ययिके गदे ॥ ३ ॥

स्नेहन करना हो तो ६०० तक गिनने में जितनी देर लगती हो उतनी देर तक करे, रोपण करने में ४०० तक गिनने में जितनी देर लगती हो उतनी देर तक करे। लेखन कर्म में जो सेक अर्थात् जलादि का सिंचन करना होता है वह ३०० गिनने तक करे ॥ सेक दिन में ही करना चाहियें। परन्तु यदि अत्यधिकरोग बढ़ा हुआ हो तो रात को भी सेक करें ॥ ३ ॥

अथाऽऽश्चोतनविधि—अथ त्वाश्चोतनं कार्यं निशायां न कथंचन।
उन्मीलितेऽक्षिण दृङ्मध्ये बिन्दुभिर्द्व्यङ्गुलाद्धितम् ॥ १ ॥

रात को आश्चोतन कभी नहीं करना चाहिये। आंखों को खोलकर दृष्टि के मध्य में दो उंगल की ऊंचाई से बूंदें डालकर आश्चोतन कर्म करे ॥ १ ॥

बिन्दवोऽष्टौ लेखनेषु स्नेहने दश बिन्दवः।
रोपणे द्वादश प्रोक्तास्ते शीते कोष्णरूपिणः ॥ २ ॥

लेखन करना हो तो आठ बूंद डाले, स्नेहन करना हो तो दश बूंद डाले, रोपण करना हो तो दस बूंदें डालें। और शीत ऋतु में तो ये बूंदें कोसी अर्थात् कुछ गरम कर के डाले ॥ २ ॥

उष्णे च शीतरूपाः स्युः सर्वत्रैवैष निश्चयः।
वाते तिक्तं तथा स्निग्धं पित्ते मधुरशीतलम् ॥ ३ ॥

और गरमी में ये बूंदें शीतल कर के डालें। ऐसा निश्चय सर्वत्र ही समझना चाहिये ॥ वात में तिक्त तथा स्निग्ध आश्चोतन करे। पित्त में मधुर तथा शीतल आश्चोतन करें ॥ ३ ॥

तिक्तोष्णरूक्षं च कफे क्रमादाश्चोतनं हितम्।
आश्चोतनानां सर्वेषां मात्रा स्याद्वाक्शतोन्मिता ॥ ४ ॥

कफ के रोगों में तिक्त, उष्ण तथा रूखा आश्चोतन करना हितकारी है। सभी आश्चोतन एकसौ गिनने तक करने चाहियें ॥ ४ ॥

निमेषोन्मेषणं पुंसामङ्गुल्योश्छोटिकाऽथ वा।
गुर्वक्षरोच्चारणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृता बुधैः ॥ ५ ॥

जब मनुष्य आंखों को बंद करता है और खोलता है इसे या तो एक मात्रा

कहा जाता है। अथवा दो उंगलियों से १ चुटकी बजाने में जितना काल लगता है इसे एक मात्रा कहा जाता है। अथवा गुरु अर्थात् दीर्घ अक्षरों के उच्चारण करने में जितना काल लगता है उसे एक मात्रा कहा जाता है (आजकल के एक सैकंड के समान एक मात्रा समझनी चाहिये) ॥ ५ ॥

अथ पिण्डिकाविधिः—**पिण्डी कवलिका प्रोक्ता बध्यते वस्त्रपट्टकैः।**

नेत्राभिष्यन्दयोग्या सा व्रणेष्वपि निगद्यते ॥ १ ॥

पिण्डी का नाम कवलिका भी है। उसे वस्त्र की पट्टियों अर्थात् कपड़े के टुकड़ों में लपेटा जाता है। नेत्राभिष्यन्दादि रोगों में तथा व्रणों में भी इस कपड़े की पोटली को आंखों पर फेरते हैं ॥ १ ॥

अथ बिडालकविधिः—**बिडालको बहिर्लेपो नेत्रे पक्ष्मविवर्जिते।**

तस्य मात्रा परिज्ञेया मुखलेपविधानवत् ॥ १ ॥

आंखों के बाहर के भाग में पलकों के बालों को छोड़कर जो लेप किया जाता है उसे बिडालक कहते हैं। उस की मात्रा मुख पर लगानेवाले लेपों के समान समझनी चाहिये ॥ १ ॥

अथ तर्पणविधि—**अथ तर्पणकं वच्मि नेत्रतृप्तिकरं परम्।**

यच्चक्षुः परिशुष्कं च नेत्रं कुटिलमाविलम् ॥ १ ॥

शीर्णपक्ष्मशिरोत्पातकृच्छ्रोन्मीलनसंयुतम्।

तिमिरार्जुनशुक्राद्यैरभिष्यन्दाधिमन्थकैः ॥ २ ॥

अब नेत्रों के परम तृप्तिकारक तर्पण को कहता हूं। जो आंख सूखी हो, नेत्र कुटिल अर्थात् टेढे तथा अविल अर्थात् मलिन हो अर्थात् शुष्काक्षिपाक रोग में, शीर्णपक्ष्म अर्थात् जिस में पलकों के बाल गिर गये हों उस रोग में, शिरोत्पात में, जिस में कष्ट से आंख खुलती हो, तिमिर, अर्जुन, शुक्रादिरोगों में अभिष्यन्द तथा अधिमन्थरोग में ॥ २ ॥

शुष्काक्षिपाकशोथाभ्यां युतं वातविपर्ययैः।

तन्नेत्रं तर्पणे योज्यं नेत्ररोगविशारदैः ॥ ३ ॥

शुष्काक्षिपाक सशोथपाक में, वातविपर्ययरोग में, नेत्रों का तर्पण करना वैद्यों को उचित है ॥ ३ ॥

दुर्दिनात्युष्णशीतेषु चिन्तायासभ्रमेषु च।

अशान्तोपद्रवे चाक्षिण तर्पणं न प्रशस्यते ॥ ४ ॥

बादलों से युक्त दुर्दिन में, अत्युष्ण, तथा अति शीत समय में, चिन्ता, आयास तथा भ्रम में, तथा आंखों के अन्य उपद्रवों के शान्त न होने पर तर्पण नहीं करना चाहिये ॥ ४ ॥

वातातपरजोहीने देशे चोत्तानशायिनः।

अधारौ माषचूर्णेन क्लिन्नेन परिमण्डलौ ॥ ५ ॥

तेजवायु, धूप, धूलादि उपद्रवों से रहित स्थान में ऊपर को मुंह कर के रोगी को लिटा देवे फिर उड़द के आटे को गीला कर के आंख की आधार भूत हड्डियों के चारों ओर लगावें ॥ ५ ॥

समौ दृढावसंबाधौ कर्तव्यौ नेत्रकोशयोः।
पूरयेद् घृतमण्डेन विलीनेन सुखोदकैः ॥ ६ ॥

वे पीठी के दोनों घेरे ऊपर से समान, और नीचे से दृढ अर्थात् छिद्ररहित करने चाहियें। फिर घी का तरल भाग पहले डाले जब वह वहीं विलीन हो जाये तो गरम कोसा २ पानी डालकर उन गोलकों को भर देवे ॥ ६ ॥

अथ वा शतधौतेन सर्पिषा क्षीरजेन वा।
निमज्जन्त्यक्षिपक्ष्माणि यावता तावदेव हि ॥ ७ ॥
पूरयेन्मीलिते नेत्रे तत उन्मीलयेच्छनैः।
धारयेद्वर्त्मरोगेषु वाङ्मात्राणां शतं बुधः ॥ ८ ॥

अथवा जल से सौ बार धुले हुए घी वा दूध के निकले मक्खन से आंखों को वहां तक भर देवे जहां तक आंखों के पक्ष्म अर्थात् बाल डूब जायें। वहां तक बंद आंखों को भरदे। फिर धीरे २ नेत्रों को खोल दे वर्त्मरोगों में १०० मात्रा तक इसे धारण करे ॥ ८ ॥

स्वच्छे कफे संधिरोगे मात्रापञ्चशतं हितम्।
शुक्ले च षट्शतं कृष्णरोगे सप्तशतं मतम् ॥ ९ ॥

कफ स्वच्छ अर्थात् हटगया हो तो सन्धिरोगों में ५००मात्रा तक, शुक्लपटल के रोगों में ६०० मात्रा तक, कृष्णपटल के रोगों में ७०० मात्रा तक तर्पण को आंखों पर धारण करना चाहिये ॥ ९ ॥

दृष्टिरोगेष्वष्टशतमधिमन्थे सहस्रकम्।
सहस्रं वातरोगेषु धार्यमेवं हि तर्पणम् ॥ १० ॥

दृष्टिरोगों में ८०० मात्रा तक, अधिमन्थरोग में १००० मात्रा तक, वातरोगों में भी १००० मात्रा तक तर्पण धारण करे ॥ १० ॥

एकाहं वा त्र्यहं वाऽपि पञ्चाहं चेष्यते परम्।
तर्पणात्तृप्तिलिङ्गानि नेत्रस्यैतानि लक्षयेत् ॥ ११ ॥

एक दिन, तीन दिन वा पांच दिन अधिक से अधिक तर्पण करना चाहिये। नेत्र के तृप्ति के लक्षण आगे लिखे चिन्हों से जानने चाहियें ॥ ११ ॥

सुखस्वप्नावबोधत्वं वैशद्यं वर्णपाटवम्।
निर्वृतिर्व्याधिशान्तिश्च क्रियालाघवमेव च ॥ १२ ॥

सुख से नींद आवे, सुख से जागना हो, आंखें विशद हों, स्पष्ट हों, रंग में

पटुता अर्थात् रंग निखर जावे, रोग से छूटकर शान्ति मिली हो तथा क्रिया में लघुता हो अर्थात् कर्म करने में फुर्ति हो ॥ १२ ॥

अथ साश्रुगुरु स्निग्धं नेत्रं स्यादतितर्पितम्।
रूक्षमस्राविलं रूक्षं नेत्रं स्याद्धीनतर्पितम् ॥
रूक्षस्निग्धोपचाराभ्यामेतयोः स्यात्प्रतिक्रिया ॥ १३ ॥

यदि आंसुयुक्त भारी नेत्र हों तो समझो अति तर्पण हुआ है। यदि नेत्र रूखे हों, कुछ आंसुओं से या जल से मैले हों और विशेष कर के रूखे हों तो समझो हीनतर्पण हुआ है। ऐसी अवस्था में अति तर्पण की रूक्षोपायों से तथा हीनतर्पण की स्निग्ध उपायों से चिकित्सा करे ॥ १३ ॥

अथाभिष्यन्दचिकित्सामाह—तेषु वातिकाभिष्यन्दचिकित्सा। अथ सेकः—

एरण्डत्वक्पत्रमूलैः शृतमाजं पयो हितम्।
सुखोष्णं सेचनं नेत्रे वाताभिष्यन्दनाशनम् ॥ १ ॥

एरण्ड की छाल, एरण्ड के पत्ते, एरण्ड की जड़ इन सब से पकाया हुआ बकरी का दूध, कुछ २ गरम कर के आंखों में सिंचन करें तो वाताभिष्यन्द का नाश होता है ॥ १ ॥

परिषेके हितं नेत्रे पयः कोष्णं ससैन्धवम्।
रजनीदारुसिद्धं वा सैन्धवेन समन्वितम् ॥
वाताभिष्यन्दशमनं हितं मारुतपर्यये ॥ २ ॥

दूध को कुछ गरम कर के सेंधानमक मिलाकर आंखों में सिंचन करे। अथवा हल्दी, दारुहल्दी से पकाया हुआ दूध सेंधानमक मिलाकर आंखों में सिंचन करें तो वाताभिष्यन्द तथा वातपर्ययरोग दूर होता है ॥ २ ॥

अथाऽऽश्चोतनम्—**बिल्वादिपञ्चमूलेन बृहत्येरण्डशिग्रुभिः।**
क्वाथश्चाऽऽश्चोतनं कोष्णो वाताभिष्यन्दनाशनः ॥१॥

बिल की छाल, गंभारी की छाल, अरणी की छाल, श्योणाक की छाल, पाढ़की छाल अथवा इन सब की जड़े लें। बड़ी कटेली एरण्ड मूल तथा सुहांजने की छाल इन का क्वाथ कोसा २ आंखों में डालें तो वाताभिष्यन्दरोग का नाश होता है १

अम्बुपिष्टैर्निम्बपत्रैस्त्वचं लोध्रस्य पेषयेत्।
प्रताप्य वह्निना पिष्ट्वा तद्रसो नेत्रपूरणात् ॥
वातोत्थं रक्तपित्तोत्थमभिष्यन्दं विनाशयेत् ॥ २ ॥

नीम के पत्तों को जल में पीसले और इन से मिलाकर लोध की त्वचा पीस ले। इस कल्क को आग पर गरम कर के पीसकर रस निचोड़ लेवे। उस रस से आंखों को पूरण करे तो वातज तथा रक्तपित्तज अभिष्यन्द का नाश होता है ॥२

अथ पिण्डिका—**वाताभिष्यन्दशान्त्यर्थं स्निग्धोष्णा पिण्डिका भवेत्।**
एरण्डपत्रमूलत्वङ्निर्मिता वातनाशिनी ॥ १ ॥

वाताभिष्यन्द की शान्ति के लिये स्निग्ध तथा उष्ण पिण्डिका होनी चाहिये। एरण्ड के पत्ते तथा जड़ की छाल को कूटकर पिण्डी बनाकर स्निग्ध तथा उष्ण कर के आंखों पर फेरने से लाभ होता है ॥ १ ॥

अथाञ्जनम्—हरिद्रा मधुकं पथ्या देवदारु च पेषयेत्।
आजेन पयसा श्रेष्ठमभिष्यन्दे तदञ्जनम् ॥ १ ॥

हल्दी, मुलठ्ठी, हरड़ तथा देवदार इन सब को बकरी के दूध से पीस लेवे इस का अंजन करने से अभिष्यन्द का नाश होता है ॥ १ ॥

पित्ताभिष्यन्दचिकित्सा। अथ सेकः—

चन्दनारिष्टपत्राणि यष्टीदार्व्यो ससैन्धवैः।
पिष्ट्वाऽम्भसा भवेत्सेकः पित्ते क्षौद्रसमन्वितः ॥ १ ॥

रक्तचन्दन, नीम के पत्ते, मुलठ्ठी, दारुहल्दी, सेंधानमक इन सब को जल से पीसकर शहद मिलाकर आंखों में सिंचन करे तो पित्ताभिष्यन्द नाश होता है॥१॥

अथाऽऽश्चोतनम्—

निम्बस्य पत्रैः परिलिप्य लोध्रं स्वेदोऽग्निना चूर्णमथापि कल्कम्।
आश्चोतनं मानुषदुग्धमिश्रं पित्तास्रवातापहमग्र्यमुक्तम् ॥ १ ॥

नीम के पत्तों को पीसकर लोध पर लपेट कर अग्नि पर स्वेद देकर आंख में रस को डालें, अथवा इस का चूर्ण वा कल्क स्त्री के दूध से मिलाकर आंख में डलें तो पित्तजाभिष्यन्द, रक्ताभिष्यन्द तथा वाताभिष्यन्द में लाभ देता है और उत्तम है ॥ १ ॥

द्राक्षामधुकमञ्जिष्ठाजीवनीयैः शृतं पयः।
प्रातराश्चोतनं पथ्यं दाहशूलाक्षिरागजित् ॥ २ ॥

दाख, मुलठ्ठी, मंजीठ, तथा जीवनीयगण के द्रव्यों से पकाया हुआ दूध प्रातःकाल ही आंखों में डालें अर्थात् आश्चोतन करें तो पथ्य है, दाह, शूल तथा आंखों के लालरंग को नाश करता है ॥ २ ॥

अथ पिण्डिका—पित्ताभिष्यन्दनाशाय धात्रीपिण्डी सुखावहा।
महानिम्बदलोद्भूता पिण्डिका पित्तनाशिनी ॥ १ ॥

पित्ताभिष्यन्दरोग के नाश करने के लिये आंवले को पीसकर पिण्डी बांधकर आंख पर फेरने से सुख होता है। महानीम अर्थात् बकायन के पत्तों से बनाई हुई पिण्डी पित्त को नाश करती है ॥ १ ॥

अथ बिडालकः—पैत्तिके चन्दनानन्तामञ्जिष्ठाभिर्बिडालकः।
कार्यः सपद्मयष्ट्याह्वमांसीकालीयकैस्तथा ॥ १ ॥

पित्ताभिष्यन्दरोग में लालचन्दन, अनन्तमूल, मंजीठ से तथा कमल, मुलठ्ठी जटामांसी तथा दारुहल्दी इनसे बिडालक करे ॥ १ ॥

चन्दनं मधुकं लोध्रं जातीपुष्पाणि गैरिकम्।

प्रलेपो दाहरोगघ्नस्तोदाभिष्यन्दनाशनः ॥ २ ॥

लालचन्दन मुलठी, लोध, चमेली के फूल, गेरु इन सबको समभाग लेकर प्रलेप करे तो दाहरोग का नाश होता है, तोद अर्थात् चोभ तथा अभिष्यन्द का नाश होता है ॥ २ ॥

अथ श्लैष्मिकाभिष्यन्दचिकित्सामाह—

कफजे लङ्घनं स्वेदो नस्यं तिक्तादिभोजनम् ।
तीक्ष्णैः प्रधमनं कुर्यात्तीक्ष्णैरेवोपनाहनम् ।
रूक्षतीक्ष्णविरेकैश्च मलं सम्यग्विनिर्हरेत् ॥ १ ॥

कफज अभिष्यन्दरोग में लंघन करना, स्वेद करना, नस्य और तिक्त रस युक्त पदार्थों का भोजन करना तथा तीक्ष्ण पदार्थों से प्रधमन नस्य देना तथा तीक्ष्ण पदार्थों से उपनाह करना रूखे तथा तीक्ष्ण के विरेचनों से मल को अच्छी प्रकार से बाहर निकालना चाहिये ॥ १ ॥

अथ सेकः—निम्बार्कपत्रसंपक्वं लोध्रं भागचतुष्टयम् ।
धूपः सर्पिःपयोभागैः कफे सेकः सुखाम्बुना ॥ १ ॥

नीम तथा आक के पत्तों को चारों ओर लपेट कर पकाया हुआ लोध चार भाग,घी तथा दूध एक २ भाग सबको एकत्र कर और कुछ गरम पानी से मिलाकर आंखों को सिंचन करे वा धूप देवे तो भी कफाभिष्यन्दरोग नष्ट होता है ॥१॥

अथाऽऽश्चोतनम्—

ससैन्धवं लोध्रमथाऽऽज्यभृष्टं सौवीरपिष्टं सितवस्त्रबद्धम् ।
आश्चोतनं तन्नयनस्य कुर्यात्कण्डूं च दाहं च रुजं च हन्यात् ॥ १ ॥

सेंधानमक सहित लोध को घी में पोसकर सौवीरकांजी से पीस लें और श्वेत वस्त्र में बांधकर नेत्रों पर आश्चोतन करें अर्थात् चोया देते रहें। इससे नेत्रों की कण्डू, दाह तथा पीड़ा नष्ट होती है ॥ १ ॥

अथ पिण्डिका—शिग्रुपत्रकृता पिण्डी श्लेष्माभिष्यन्दहारिणी ।
शुण्ठीनिम्बदलैः पिण्डी सुखोष्णा स्वल्पसैन्धवा ॥
धार्या चक्षुषि संयोगाच्छोथकण्डुव्यथाहरा ॥ १ ॥

सुहांजने के पत्तों को पीसकर बनाई हुई पिण्डी आंखों पर फेरने से श्लेष्माभिष्यन्द को नष्ट करती है। सोंठ, नीम के पत्ते इनको समभाग पीसकर थोड़ा सा सेंधानमक मिलाकर कोसा करके आंखों पर फेरे या धारण करें तो यह शोथ, कण्डू तथा व्यथा का नाश करती है ॥ १ ॥

अथ बिडालकः—रसाञ्जनेन वा लेपः पथ्याविश्वदलैरपि ।
वचाहरिद्राविश्वैर्वा तथा नागरगैरिकैः ॥ १ ॥

रसौंत से लेप करें, वा हरड़ तथा अदरक के पत्तों (वा सोंठ तेजपात इनका) का लेप करें। बच, हल्दी तथा सोंठ से मिलाकर लेप करें बा सोंठ तथा गेरु

मिलाकर लेप करें ॥ १ ॥

अथ स्वेदनम्—**फणिज्जकास्फोतकपित्थबिल्वधत्तूरभङ्गार्जुनपत्रयोगैः।**
स्वेदं विदध्यादथ वा प्रलेपं सलोध्रशुण्ठीसुरदारुकुष्ठैः ॥१॥

गन्ध तुलसी, अपराजिता वा हाफरमाली, कैथ, बिल, धतूरा, भांग तथा अर्जुन के पत्तों को एकत्र करके स्वेद देवे अथवा लोध, सोंठ, देवदारु तथा कूठ इन सबको पीसकर प्रलेप करें तो भी श्लेष्माभिष्यन्द का नाश होता है ॥ १ ॥

अथ सामान्योपचारः—**वल्कलं पारिजातस्य तैलसैन्धवकाञ्जिकम्।**
कफजाक्षिजशूलघ्नं तरुघ्नं कुलिशं यथा ॥१॥

पारिजात अर्थात् पारिभद्र (पालते मान्दार बंगभाषा में कहते हैं) वृक्ष की छाल, तेल, सेंधानमक और कांजी इन सबको मिलाकर आंख पर लगायें तो यह कफज अक्षिशूल को ऐसे नाश करता है जैसे वृक्ष को वज्र या बिजली नाश करती है १

सौवीरं सैन्धवं तैलं मूर्वामूलं तथैव च।
कांस्यपात्रे विघृष्टं स्यादक्ष्णोः शूलनिवारणम् ॥ २ ॥

सौवीरकांजी, सेंधानमक, तिलों का तेल, मूर्वामूल इन सबको कांसी के पात्र में घिसकर आंखों में अंजन करने से शूल निवारण होता है ॥ २ ॥

सलवणकटुतैलं काञ्जिकं कांस्यपात्रे
निहितमुपलघृष्टं धूपितं गोमयाग्नौ।
सपवनकफकोपं छागदुग्धावसिक्तं
जयति नयनशूलं स्रावशोथं सरागम् ॥ ३ ॥

सेंधालवण, कड़वा तेल, कांजी इन सबको कांसी के पात्र डालकर पत्थर से घिस लें और उपलों की अग्नि पर गरम करके इसका धूंआ देवें तो आंखों के वात कफ के कोप को शान्त करता है। और बकरी के दूध में मिलाकर इसे आंखों में सिंचन करें तो नयनशूल, स्राव, शोथ तथा राग अर्थात् आंख के लाल होने को नष्ट करता है ॥ ३ ॥

स्यन्दाधिमन्थे क्रममाचरेच्च सर्वेषु चैतेषु सदा प्रशस्तम् ॥ ४ ॥

अभिष्यन्द तथा अभिमन्थरोग में तथा अन्य सभी रोगों में पूर्वोक्त क्रम से ही चिकित्सा करता रहे ॥ ४ ॥

अथ रक्तजाभिष्यन्दचिकित्सामाह। अथ सेकः—

त्रिफलालोध्रयष्टीभिः शर्कराभद्रमुस्तकैः।
पिष्टैः शीताम्बुना सेको रक्ताभिष्यन्दनाशनः ॥ १ ॥

हरड़, बहेड़ा, आंवला, लोध मुलठी, खांड, भद्रमोथा इन सबको पीसकर शीतल जल से मिलाकर आंखों में सिंचन करें तो रक्ताभिष्यन्द का नाश होता है १

अथाऽऽश्चोतनम्—**स्त्रीस्तन्याश्चोतनं नेत्रे रक्तपित्तानिलार्तिजित्।**

क्षीरसर्पिर्घृतं वाऽपि रक्तपित्तरुजं जयेत् ॥ १ ॥

स्त्री के दूध को नेत्रों में डालने से रक्तपित्त तथा वातरोग से हुई २ नेत्र पीड़ा नष्ट हो जाती है। तथा दूध घी अथवा केवल घी आंखों में डालें तो रक्तपित्त की पीड़ा नष्ट होती है ॥ १ ॥

लोध्रचूर्णं घृते घृष्टं रुजमाश्चोतनैर्हरेत्।
शर्करात्रिफलाचूर्णमिदमाश्चोतनं परम् ॥ २ ॥

लोध का चूर्ण घी में घिसकर आंखों में आश्चोतन करें तो आंखों की पीड़ा को नाश करता है। खांड तथा त्रिफला का चूर्ण आंख में जल से पीसकर आश्चोतन करें तो अतिलाभ देता है ॥ २ ॥

अथाञ्जनम्—श्रीपर्णीपाटलाधात्रीधातकीतिल्वकार्जुनात्।
पुष्पाण्यथ बृहत्याश्च बिम्बीलोध्रं च तुल्यशः ॥ १ ॥
मञ्जिष्ठं चापि मधुना पिष्ट्वाऽपीक्षुरसेन वा।
रुधिरस्यन्दशान्त्यर्थमेतदञ्जनमिष्यते ॥ २ ॥

गम्भारी, पाटला या पढ़, आंवला, धाय के फूल, लोध, अर्जुन इन सबके तथा बड़ी कटेली के फूल लें, बिम्बी तथा लोध तथा मंजीठ इनमें से प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ भाग लेवें। इन सबको शहद वा गन्ने के स्वरस से मिलाकर आंखों में अंजन करें तो रक्ताभिष्यन्द रोग की शान्ति होती है ॥ २ ॥

अथ वासादिक्वाथः—आटरूषाभयानिम्बधात्रीमुस्तकमूलकैः।
रक्तास्रावं कफं हन्ति चक्षुष्यं वासकादिकम् ॥१॥

बांसा, हरड़, नीम की छाल, आंवला, मोथे की जड़ इन सबका क्वाथ पिलाने से तथा आंख में डालने से रक्तस्राव तथा कफ इनका नाश करता है, तथा आंखों के लिये हितकारी है ॥ १ ॥

अथाधिमन्थान्यतोवातयोश्चिकित्सा—

अधिमन्थेषु सर्वेषु ललाटे व्यधयेच्छिराम्।
अशान्ते सर्वथा मन्थ भ्रुवोरुपरि दाहयेत् ॥ १ ॥

सभी प्रकार के अधिमन्थ रोगों में ललाट की शिरा को बींधे, यदि अधिमन्थरोग सर्वथा शान्त न हो तो भौंहों पर दाग़ दे देवे ॥ १ ॥

अभिष्यन्देषु याः प्रोक्ताश्चतुर्ष्वपि प्रतिक्रियाः।
ताः सर्वा अधिमन्थेषु प्रयोज्याश्च भिषग्वरैः ॥ २ ॥

जो उपाय तथा चिकित्सा चारों प्रकारों के अभिष्यन्दों में कह चुके हैं वे ही सब उपाय तथा चिकित्सा चारों अधिमन्थों में भी करनी चाहिये ॥ २ ॥

सर्व एव विधिः सर्वमन्थादिष्वपि चेष्यते।
तथा चाप्यन्यतोवाते सामान्यो वक्ष्यते विधिः ॥ ३ ॥

सभी चिकित्साविधि अभिष्यन्द के समान ही अधिमन्थरोग में करे ॥३॥

अथ यष्ट्यादिक्वाथः सर्वनेत्ररोगेषु—

यष्टीं गुडूचीं त्रिफलां सदार्वीमक्ष्यामये सर्वभवे पिबेद्वा।
आश्चोतनं सान्द्ररसेन दार्व्याः शस्तं सदा क्षौद्रयुतं नराणाम् ॥४॥

मुलठी, गिलोय, हरड़, बहेड़ा, आंवला, दारुहल्दी इन का क्वाथ कर के सर्वदोषज नेत्ररोगों में पिलावे। तथा दारुहल्दी के स्वरस को गाढ़ा कर के शहद मिलाकर सदा आश्चोतन करने से आंखों के सब रोगों में लाभ होता है ॥४॥

अथ गुडूचीत्रिफलादिक्वाथः—**गुडूचीत्रिफलाक्वाथो मधुना सह योजितः।**
पीतः सर्वाक्षिरोगघ्नः कृष्णाचूर्णावचूर्णितः ॥५॥

गिलोय तथा त्रिफला का क्वाथ शहद से पिलावें और पीपल का चूर्ण डाल कर पिलावें तो सब प्रकार के आंखों के रोगों को नाश करता है ॥ ५ ॥

अथ सेकौ—**प्रपौण्डरीकयष्ट्याह्वदार्वीलोध्रैः सचन्दनैः।**
एरण्डाम्बुयुतैः सेकः सर्वनेत्ररुजापहः ॥ ६ ॥

पुण्डरिया काष्ठ, मुलठी, दारुहल्दी, लोध, लालचन्दन, एरण्ड तथा बाला इन सब का क्वाथ आंखों में सिंचन करने से सब प्रकार के नेत्रों के रोगों को नष्ट करता है ॥ ६ ॥

श्वेतलोध्रं घृते भृष्टं चूर्णितं ताप्यतुत्थकम्।
कृष्णाम्बुना विमृदितं सेकः शूलहरः परः ॥ ७ ॥

श्वेत लोध को घी में भूनलें और स्वर्णमाक्षिक तथा नीलेथोथे का चूर्ण कर के समभाग प्रत्येक को मिलायें, इसे पिप्पली के स्वरस वा क्वाथ से विमर्दन कर के सिंचन करें तो यह शूल नाश करने में श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

अथ यष्ट्यादिलेपः—**यष्टीगैरिकसिन्धूत्थदार्वीतार्क्ष्यैः समांशकैः।**
जलपिष्टैर्बहिर्लेपः सर्वनेत्रामयापहः ॥ ८ ॥

मुलठी, गेरू, सेंधानमक, दारुहल्दी, रसौत सब को समभाग लेकर पीसलें और आंख के बाहर जलसे लेप करें तो सभी नेत्ररोगों का नाश करता है ॥ ८ ॥

अथ सैन्धवलोध्रादिलेपाञ्जने—**दग्ध्वाससैन्धवं लोध्रं मधूच्छिष्टयुते घृते।**
पिष्टमञ्जनलेपाभ्यां सद्यो नेत्ररुजापहम् ॥ ९ ॥

सेंधानमक सहित लोध को मोम से युक्त घी में जला देवे। उसे पीसकर आंखों में लेप तथा अंजन करें तो शीघ्र ही सब नेत्ररोगों को नाश करता है ॥९॥

निम्बुरसयोगः—**लोहस्य पात्रे संघृष्टो रसो निम्बुफलोद्भवः।**
किंचिद्घनो बहिर्लेपान्नेत्रव्याधिं व्यपोहति ॥ १० ॥

नींबू का रस लोहे के पात्र में घिसें, इसे कुछ घना कर के नेत्र के बाहर लेप करें तो यह नेत्ररोगों को नष्ट करता है ॥ १० ॥

अथ निम्बादिपिण्डिः—

निम्बस्य चोदुम्बरवल्कलस्य एरण्डयष्टीमधुचन्दनस्य ।
पिण्डो विधेयो नयनप्रकोपे कफेन पित्तेन समीरणेन ॥ ११ ॥

नीम की छाल, गूलर की छाल, एरण्डमूल, मुलट्ठी तथा लालचन्दन इन सब को पीसकर पिण्डी बनाकर कफ तथा पित्त के नेत्ररोगों में प्रयोग से लाभ होता है ॥ ११ ॥

अथ शोथपाकयोश्चिकित्सा—

जलौकापातनं श्रेष्ठं नेत्रपाके विरेचनम् ।
शिराव्यधं वा कुर्वीत सेकलेपौ च शुक्रवत् ॥ १ ॥

नेत्रपाकरोग में जोंक लगवाना, विरेचन देना, शिरा बींधना तथा सेक और लेप करना ये सभी कर्म शुक्र अर्थात् फोले के समान ही करने चाहियें ॥ १ ॥

बिभीतकशिवाधात्रीपटोलारिष्टवासकैः ।
क्वाथो गुग्गुलुसंयुक्तः शोथशूलाक्षिरोगनुत् ॥ २ ॥

बहेड़ा, हरड़, आंवला, पटोलपत्र, नीमपत्र, बांसा इन सबका क्वाथ बनाकर गूगल मिलाकर पिलावें तो शोथ शूल से युक्त अक्षिरोगों को दूर करता है ॥२॥

अथ वातपर्ययशुष्काक्षिपाकयोश्चिकित्सा—

वाताभिष्यन्दवच्चात्र वातमारुतपर्यये ।
अनेनैव विधानेन भिषक्चैवाभिसाधयेत् ॥ १ ॥

वातज अक्षि तथा वातपर्ययरोग की वाताभिष्यन्द रोग के समान ही चिकित्सा करे ॥ १ ॥

पूर्वं तत्र हितं सर्पिः क्षीरं वाऽप्यथ भोजनम् ।
परिषेको हितं नेत्रे पयः कोष्णं ससैन्धवम् ॥ २ ॥

पहले इस वातपर्ययरोग में घी देवें अथवा दूध का भोजन करावें। और दूध को कोसा २ कर के सेंधानमक मिलाकर आंखों पर सिंचन करे ॥ २ ॥

रजनीदारुसिद्धं वा सैन्धवेन समन्वितम् ।
वाताभिष्यन्दशमनं हितं मारुतपर्यये ॥ ३ ॥

अथवा हल्दी तथा दारुहल्दी से पकाया हुआ दूध सेंधानमक मिलाकर आंखों में सिंचन करे तो भी वातपर्ययरोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

शुष्काक्षिपाके च सदा इदं सेचनकं हितम् ।
सैन्धवं दारु शुण्ठी च मातुलुङ्गरसे घृतम् ॥ ४ ॥

तथा शुष्काक्षिपाक में भी इस सेचन से लाभ होता है ॥ सेंधानमक, देवदार, सोंठ इन का कल्क करे, बिजौरे का रस और गौ का घी कल्क से चौगना ले॥४॥

स्तन्योदकाभ्यां कुर्वीत शुष्कपाके तदञ्जनम् ।
शुष्काक्षिपाके हविषः पानमक्ष्णोश्च तर्पणम् ॥

घृतेन जीवनीयेन नस्यं तैलेन योजयेत् ॥ ५ ॥

स्त्री का दूध तथा जल आधा २ मिलाकर घी के समान लेवे। इन सब का घी पकाकर आंखों में अंजन करे तो शुष्काक्षिपाकरोग में लाभ होता है॥ शुष्काक्षिपाकरोग में घी को पिलाना, आंखों में जीवनीयद्रव्यों से बनाये हुए घी का तर्पण करना तथा तल की नस्य लेना लाभ देता है॥ ५॥

अथाम्लाध्युषितमाह—तिक्तस्य सर्पिषः पानं बहुशश्च विरेचनम्।

अम्लाध्युषितशान्त्यर्थं कुर्याल्लेपान्सुशीतलान् ॥ १ ॥

तिक्त द्रव्यों से बने हुए घी पिलाने से, बार २ विरेचन देने से, तथा सुशीतल लेप करने से अम्लाध्युषितरोग नष्ट होता है॥ १॥

बिल्वकं त्रिफलां सर्पिर्जीर्णं वा केवलं पिबेत्।

शिराव्यधं विना कार्यः पित्तस्यन्दहरो विधिः ॥ २ ॥

बिल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, घी इन को मिलाकर या इनका घी बनाकर खिलावे। अथवा केवल पुराना घी पिलावे। शिरा बींधने के अतिरिक्त शेष सभी विधि पित्ताभिष्यन्द के समान ही करनी चाहिये॥ २॥

अथ शिरोत्पातशिराहर्षयोश्चिकित्सा—

शिरोत्पातं शिराहर्षमन्यांश्चास्रभवान्गदान्।

स्निग्धस्य कोष्णेनाऽऽज्येन शिरावेधैः शमं नयेत् ॥ १ ॥

शिरोत्पात, शिराहर्ष तथा अन्य रक्तज रोगों में कुछ २ गरम किया हुआ घी पिलाकर रोगी को स्निग्ध करे फिर शिराबेध करके रोग की शान्ति करे॥ १॥

सर्पिः क्षौद्रं चाञ्जनं स्याच्छिरोत्पातस्य भेषजम्।

तद्वत्सैन्धवकासीसं स्तन्यपिष्टं च पूजितम् ॥ २ ॥

शहद तथा घी मिलाकर आंखों में अंजन करें तो भी शिरोत्पात रोग नष्ट होता है। इसी प्रकार सेंधानमक और कासीस दोनों को स्त्री के दूध में पीसकर अंजन करे तो लाभ होता है॥ २॥

शिराहर्षेऽञ्जनं कार्यं फाणितं मधुसंयुतम्।

मधुना तार्क्ष्यशैलं च कासीसं वा समाक्षिकम् ॥ ३ ॥

शिराहर्षरोग में फाणित को शहद से मिलाकर आंखों में अंजन करना चाहिये। शहद से मिलाकर रसौंत को आंखों में लगावें। अथवा कसीस को शहद में पीसकर लगावें॥ ३॥

वेतसाम्लं स्तन्ययुतं फाणितं तु ससैन्धवम्।

पित्ताभिष्यन्दशमनं विधिं चात्रापि योजयेत् ॥ ४ ॥

अम्लबेत को नारी के दूध से मिलाकर आंखों में लगावें। अथवा फाणित को सेंधानमक से मिलाकर लगावें तो शिराहर्षरोग शान्त होता है। सब पित्ता-

भिष्यन्द नाशक विधि भी यहां करनी चाहिये तो शिरोहर्ष रोग में लाभ होता है ॥ ४ ॥ इति सर्वजाः ।

अथ ग्रन्थान्तरे नयनाभिघातस्य निदानचिकित्सा—

स्रवत्यश्रु च यन्नेत्रं वृतं लोहितराजिभिः ।
निमेषोन्मेषणाशक्तं सशल्यं तं विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥

जिस नेत्र में से जल निकलता हो, लाल २ लकीरों से घिरा हुआ हो, बन्द होने तथा खुलने में अशक्त हो, उसे समझो कि शल्य अर्थात् चोट से युक्त है १

नेत्रे त्वभिहते कुर्याच्छीतमाश्चोतनं हितम् ।
पुनर्नवामूलकल्कात्पिण्डी लेपे कुचन्दनम् ॥
अन्तः स्त्रीस्तन्यसेकश्च रक्तमोक्षश्च शस्यते ॥ २ ॥

ऐसे अभिहत नेत्र में शीतल द्रव्यों के आश्चोतन करे। पुनर्नवा मूल का कल्क करके पिण्डी बनाकर आंखों पर फेरे, पीले चन्दन का लेप करे । आंख के बीच में स्त्री के दूध की धारें लगायें या दूध का सिंचन करें । तथा रक्त निकलवा देवे २

दृष्टिप्रसादजननं विधिमाशु कुर्यात्स्निग्धैर्हिमैश्च मधुरैश्च तथा प्रयोगैः।
स्वेदाग्निधूमभयशोकरुजादितापैरभ्याहतामपि तथैव भिषक्चिकित्सेत्

स्निग्ध, मधुर तथा शीतल प्रयोगों से दृष्टि प्रसादन के उपाय करने चाहिये । इसी प्रकार के उपायों से ही स्वेद, अग्नि, धूम, भय, शोक, रुजादि तापों से नष्ट हुई २ दृष्टि वालों की भी चिकित्सा करें ॥ ३ ॥

सूर्यार्चिराशाम्बरविद्युतादिविलोकनेनोपहतेक्षणस्य ।
संतर्पणं स्निग्धहिमादि कार्यं सायं निषेव्यस्त्रिफलाप्रयोगः ॥ ४ ॥

सूर्य की किरणें, दिशाओं तथा आकाश की विद्युत आदि के देखने से जिस की दृष्टि नष्ट हो गई हो उस का स्निग्ध तथा शीतल वस्तुओं से संतर्पण करना चाहिये तथा सायंकाल त्रिफला के प्रयोगों का सेवन कराना चाहिये ॥ ४ ॥

निशाब्दत्रिफलादार्वी सितामधुसमन्विता ।
अभिघातात्तिशूलघ्नं नारीक्षीरेण पूरणम् ॥ ५ ॥

हल्दी, नागरमोथा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, दारुहल्दी, खांड, शहद इनको मिलाकर नारी के दूध से मिलाकर आंखों में पूरण करें तो अभिघात तथा आंखों का शूल नाश होता है ॥ ५ ॥

सावरं मधुकं तुल्यं घृतभृष्टं सुचूर्णितम् ।
छागक्षीरोत्थितं सेकः पित्तरक्ताभिघातजित् ॥ ६ ॥

शावर लोध या श्वेत लोध, मुलठी दोनों को समभाग लेकर घी में भून ले और सूक्ष्म चूर्ण करें इसमें बकरी के दूध को मिलाकर आंखों में सिंचन करें तो पित्तरक्त से हुए तथा अभिघात से हुए अक्षिरोगों का नाश होता है ॥ ६ ॥ इति नयनाभिघातः ।

अथातिनिद्रानाशोपाय:—क्षौद्राश्वलालासंघृष्टैर्मरिचैर्नेत्रमञ्जयेत्।
अतिनिद्रा शमं याति तमः सूर्योदयादिव ॥१॥

घोड़े के मुंह की लार में काली मिरचों को घिसकर उसमें शहद मिलावे और इसका आंख में अंजन करें तो अति निद्रा इस प्रकार नष्ट होजाती है जैसे सूर्य के निकलने से अन्धकार नष्ट होता है ॥ १ ॥

तन्द्रानाशोपाय:—जातीपुष्पं प्रवालं च मरिचं कटुका वचा।
सैन्धवं बस्तमूत्रेण पिष्टं तन्द्राघ्नमञ्जनम् ॥ २ ॥

चमेली के फूल, मूंगा, मिरच, कुटकी और बच, सेंधानमक इन सबको बकरे के मूत्र में पीसकर। आंखों में अंजन करें तो यह तन्द्रा को नाश करता है ॥ २ ॥

अथ नेत्ररोगे भीमसेनीकर्पूरः—

सुधांशोर्वसुभागाः स्युरेलाभागद्वयं तथा।
चन्दनं चाब्धिफेनं च बीजं कतकसंभवम् ॥ १ ॥

देसी कपूर ८ भाग, इलायची के बीज दो भाग, लालचन्दन, समुद्रफेन, निर्मली के बीज।

रसाञ्जनं भद्रमुस्तं प्रत्येकं कर्षसंमितम्।
सर्वं दुग्धे विमर्द्याथ पिण्डे गोधूमपिष्टवत् ॥ २ ॥

रसौंत, भद्रमोथा इन सबका चूर्ण पृथक् २ एक २ कर्ष लेवें। सबको दूध में पीसकर गुंधे हुए आटे के समान पिण्ड बना लेवे ॥ २ ॥

कृत्वा पात्रे निधायाथ क्षिपेत्पात्रं तथोपरि।
अधः प्रज्वालयेद्दीपं वर्त्याऽङ्गुष्ठसमानया ॥ ३ ॥

फिर इसे एक पात्र में रख उसके ऊपर दूसरा पात्र रख सन्धि बन्द करके अंगूठे के समान मोटी बत्ती नीचे जलाकर उस आंच पर उस पात्र को रखे ॥ ३ ॥

एवं प्रहरपर्यन्तं वह्निं कुर्याच्च युक्तितः।
पात्रस्योपरिभागं तु शीतलं रक्षयेद्बुधः ॥ ४ ॥

इस प्रकार एक पहर या तीन घण्टे तक आंच देता रहे। ऊपर के पात्र को सदा शीतल रखे ॥ ४ ॥

सदाऽऽर्द्रचैलखण्डेन शीतलेन च वारिणा।
स्वाङ्गशीतं ततो ज्ञात्वा पश्चात्कर्पूरमाहरेत् ॥ ५ ॥

सदा पानी से भीगे हुए कपड़े को ऊपर के पात्र पर रखता जावे। जब तीन घण्टे के बाद बत्ती बुझाकर स्वांग शीतल हो जावे तो ऊपर के पात्र में लगे हुए कपूर को निकाल लेवे ॥ ५ ॥

स्फटिकाकारमत्यच्छं श्वेतहीरमणिप्रभम्।
भीमसेन्याख्यकर्पूरमौषधेषु प्रयोजयेत् ॥ ६ ॥

स्फटिक के समान अत्यन्त निर्मल, श्वेत हीरे मणि के समान प्रभावाला, यह भीमसेनी कपूर कहाता है, इसे सभी औषधों में प्रयुक्त करे ॥ ६ ॥ इति भीमसेनीकर्पूरः । इति समस्तनेत्ररोग चिकित्सा ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

आश्च्योतनं लङ्घनमञ्जनं च स्वेदो विरेकः प्रतिसारणं च ।
प्रपूरणं नस्यमसृग्विमोक्षः शस्त्रक्रिया लेपनमाज्यपानम् ॥ १ ॥

आश्च्योतन, लङ्घन, अंजन, स्वेद, विरेचन, प्रतिसारणकर्म, पूरणकर्म, नस्य, रक्तमोक्षण, शस्त्रक्रिया, लेपन, घी पिलाना ॥ १ ॥

सेको मनोनिर्वृतिरंघ्रिपूजा मुद्गा यवा लोहितशालयश्च ।
कौम्भं हविस्तस्य कुलत्थयूषः पेया विलेपी सुरणं पटोलम् ॥२॥

सिंचन, मन की शान्ति, गुरु जनों की पाद पूजा, मूंग, जौ, लाल शाली चावल, एक सौ साल का पुराना घी उसके साथ कुलथी का यूष देवे, पेया, विलेपी, सूरण अर्थात् जिमीकन्द देवे । परवल की भाजी देवे ॥ २ ॥

वार्ताककर्कोटककारवेल्लं नवीनमोचं नवमूलकं च ।
पुनर्नवामार्कवकाकमाचीपत्तूरशाकानि कुमारिका च ॥ ३ ॥

बैंगन, ककोड़ा, करेला, नया केला, नई मूली । पुनर्नवा, भांगरा, मकोय, पत्तूर का शाक, घीकुंआर ॥ ३ ॥

द्राक्षा च कुस्तुम्बुरु माणिमन्थो रोध्रं वरा क्षौद्रमुपानहश्च ।
नारीपयश्चन्दनमिन्दुखण्डं तिक्तानि सर्वाणि लघूनि चापि ॥४॥

दाख, धनियां, सेंधानमक, लोध, त्रिफला, शहद, उपनाह करना, स्त्री का दूध, चन्दन, कपूर, खांड, सभी तिक्तरस तथा लघु पदार्थ ॥ ४ ॥

विजानता पथ्यमिदं प्रयुक्तं यथामलं नेत्रगदं निहन्ति ।
क्रोधं शुचं मैथुनमश्रु वायुविण्मूत्रनिद्रावमिवेगरोधम् ॥ ५ ॥

दोषानुसार ही इन द्रव्यों को पथ्य समझकर यथा योग्य विद्वान चिकित्सक प्रयुक्त करे । और क्रोध, शोक, मैथुन करना तथा आंसु, वायु, मल, मूत्र, नींद तथा वमन के वेगों को रोकना ॥ ५ ॥

सूक्ष्मेक्षणं दन्तविघर्षणं च स्नानं निशाभोजनमातपं च ।
प्रजल्पनं छर्दनमम्बुपानं मधूकपुष्पं दधि पत्रशाकम् ॥ ६ ॥

सूक्ष्म वस्तु को ध्यान से देर तक देखते रहना, दांतों को बहुत दातुनादि से घिसना, स्नान करना, रात को भोजन करना, धूप में बैठना या फिरते रहना, बहुत बोलना, वमन करना, जल पीना, महुए का फूल खाना, दही पीना, पत्तों के शाक खाना॥६॥

कालिङ्गपिण्याकविरूढकानि मत्स्यं सुरा मांसमजाङ्गलं च ।
ताम्बूलमम्लं लवणं विदाहि तीक्ष्णं कटूष्णं गुरु चान्नपानम् ।

नरो न सेवेत हिताभिलाषी सर्वेषु रोगेषु दृगाश्रयेषु ॥ ७ ॥

तरबूज खाना, तिल का कल्क खाना, जिनके अंकुर निकल आये हों ऐसे धान खाने, मछली, सुरा तथा ऐसा मांस जो जांगल जीवों का न हो सेवन न करे, ताम्बूल अर्थात् पान खाना, खटाई, नमक, विदाही पदार्थ, तीक्ष्ण पदार्थ, कटु, उष्ण तथा गुरु अन्न, तथा पान ये सभी पदार्थ सब नेत्र रोगों में हिताभिलाषी पुरुष सेवन न करे ॥ ७ ॥

शालितण्डुलगोधूममुद्गसैन्धवगोघृतम् ।
गोपयश्च सिता क्षौद्रं पथ्यं नेत्रगदे स्मृतम् ॥ ८ ॥

शाली चावल, गेहूं, मूंग, सेंधानमक, गौ का घी, गौ का दूध, खांड, शहद ये सभी पदार्थ नेत्ररोगों में पथ्य हैं ॥ ८ ॥

सर्वं शाकमचक्षुष्यं चक्षुष्यं शाकपञ्चकम् ।
जीवन्ती वास्तुमत्स्याक्षी मेघनादः पुनर्नवा ॥ ९ ॥

सब प्रकार के पत्तों के शाक नेत्ररोगों में अपथ्य हैं केवल पांच शाक पथ्य हैं। जीवन्ती, बथुआ, मछेछी, मेघनाद अर्थात् चौलाई और पुनर्नवा ॥ ९ ॥

माषारनालकटुतैलजलावगाहक्षुद्राक्षुरैश्च सुरतैर्निशि जागरैश्च ।
शाकाम्लमत्स्यदधिफाणितवेसवारैश्चक्षुः क्षयं व्रजति सूर्यविलोकनाच्च

उड़द खाने से, कांजी पीने से, कड़वे तेल से अर्थात् सरसों के तेल से, जल में घुसकर स्नान करने से, छोटी कटेली तथा तालमखाना खाने से मैथुन करने से, रात को जागने से, शाक अर्थात् पत्तों के साग खाने से, अम्लरस खाने से, मछली खाने से, दही, फाणित, वेसवार खाने से तथा सूर्य के देखने से नेत्र क्षय को प्राप्त होते हैं । अर्थात् दृष्टि नष्ट होती है ॥ १० ॥ इति नेत्ररोगाधिकारः ।

इति हरद्वारीयगुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेणायुर्वेद-शास्त्रिणा लवपुरीय श्रीमद्दयानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीय वैद्यकविराजोपाधिधारिणा राजयक्ष्मचिकित्सकेन जलचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योगरत्नाकरस्य रत्नगर्भानाम्निटीकायां नेत्ररोगचिकित्साप्रकरणं समाप्तम् ।

अथ स्त्रीरोगाधिकारः ।

तत्राऽऽदौ प्रदरस्य निदानमाह—

विरुद्धमद्याध्यशनादजीर्णाद्गर्भप्रपातादतिमैथुनाच्च ।
यानाध्वशोकादतिकर्षणाच्च भाराभिघाताच्छयनाद्दिवा च ॥ १ ॥
तं श्लेष्मपित्तानिलसंनिपातैश्चतुष्प्रकारं प्रदरं वदन्ति ॥ २ ॥

बिगड़ी हुई मद्य पीने से अथवा संयोगविरुद्ध भोजन करने से, मद्य पीने से, अध्यशन करने से, अजीर्ण से, गर्भपात होजाने से, अति मैथुन करने से, सवारी करने से, मार्ग चलने से, शोक करने से, अति कर्षण से अर्थात् अत्यन्त उप-

वासादि करने के कारण क्षीण धातु होजाने से, भार उठाने से, चोट आदि लगनें से तथा दिन में सोने से चार प्रकार का प्रदररोग होजाता है। कफज-प्रदर, पित्तजप्रदर, वातजप्रदर तथा सन्निपातजप्रदर ॥ २ ॥

प्रदरस्य सामान्यलक्षणमाह—**असृग्दरं भवेत्सर्वं साङ्गमर्दं सवेदनम् ॥**

सभी प्रकार के रक्तप्रदर अर्थात् प्रदररोग में अङ्गमर्द अर्थात् अंगड़ाई टूटती है और शूल होता है ॥

अथ श्लैष्मिकस्य लक्षणमाह—

आमं सपिच्छप्रतिमं सपाण्डु पुलाकतोयप्रतिमं कफात्तु ॥

आमरस से युक्त, पिच्छिल (पिच्छा शाल्मल्यादि निर्यासः, तत्सदृशं पिच्छिल मित्यर्थः), पाण्डुरंग का अर्थात् श्वेत रंग का, मांस के धोये जल के समान रंगवाला प्रदर कफज कहाता है ॥

पैत्तिकमाह—**सपीतनीलासितरक्तमुष्णं पित्तार्तियुक्तं भृशवेगि पित्तात् ३**

पित्तजप्रदर पीला, नीला, काला, लाल तथा गरम होता है तथा पित्त के अन्य उपद्रवों से युक्त अर्थात् दाह तथा चिमचिमादि से युक्त होता है तथा बहुत वेगवाला होता है ॥ ३ ॥

वातिकमाह—**रूक्षारुणं फेनिलमल्पमल्पं वातात्सतोदं पिशितोदकाभम्॥**

रूखा, लाल, फेन अर्थात् झागसहित, थोड़ा २ तोद अर्थात् सुई की चुभने की सी पीड़ा देनेवाला, और मांस के धोये हुए जल के समान होता है इसे वातिक प्रदर कहते हैं ॥

अथ सांनिपातिकमाह—

सक्षौद्रसर्पिर्हरितालवर्णं मज्जप्रकाशं कुणपं त्रिदोषम् ।
तं चाप्यसाध्यं प्रवदन्ति तज्ज्ञा न तत्र कुर्वीत भिषक्चिकित्साम्॥४॥

शहद तथा पिघले हुए घी के समान रंगदार, हड़ताल के समान पीले रंग का, मज्जा के समान रंगदार, मुर्दे की दुर्गन्ध के समान दुर्गन्धित प्रदर त्रिदोषज अर्थात् सन्निपातज कहाता है॥ यह असाध्य कहाता है इसकी वैद्य चिकित्सा न करे४

अथ रक्तस्यातिप्रवृत्त वुपद्रवानाह—

तस्यातिवृत्तौ दौर्बल्यं भ्रमो मूर्च्छा मदस्तृषा ।
दाहः प्रलापः पाण्डुत्वं तन्द्रा रोगाश्च वातजाः ॥ ५ ॥

रक्त के अत्यन्त बहने से स्त्री को दुर्बलता होती है, भ्रम होता है, मूर्च्छा होती है, मद होता है तथा तृष्णा होती है। दाह होता है, प्रलाप होता है, पाण्डु अर्थात् शरीर का रंग श्वेत हो जाता है, तन्द्रा होती है तथा वातजरोग हो जाते है५

अथासाध्यां प्रदरव्याधिमतीह—

शश्वत्स्रवन्तीमास्रावं तृषादाहज्वरान्विताम् ।
दुर्बलां क्षीणरक्तां च तामसाध्यां विवर्जयेत् ॥ ६ ॥

लगातार जिस स्त्री की योनि में से स्राव बहता रहे, तृष्णा, ज्वर तथा दाह होता हो जो दुर्बल हो तथा जिस का रक्त क्षीण हो गया हो ऐसी स्त्री को असाध्य समझ कर चिकित्सा न करे ॥ ६ ॥

अथ चिकित्सानिवृत्त्यर्थं शुद्धार्तवलक्षणमाह—

मासान्निष्पिच्छदाहार्ति पञ्चरात्रानुबन्धि च।
नैवातिबहु नात्यल्पमार्तवं शुद्धमादिशेत् ॥ ७ ॥

जो रक्त एक २ मास के पीछे आता हो, जिस में, पिच्छ, दाह तथा शूल न हो, पांच रात तक रहे, जो नांही तो अत्याधिक आवे न अत्यन्त कम आवे उस आर्तव को शुद्ध कहते हैं ॥ ७ ॥

शशासृक्प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षारसोपमम्।
तदार्तवं प्रशंसन्ति यच्चाप्सु न विरज्यते ॥ ८ ॥

जो शशक के रक्त के समान लाल हो वा लाख के रस के समान लालरंग का हो, उस आर्तव को शुद्ध समझो तथा जिस से रंगा हुआ वस्त्र जल में धोने से सारा जल लाल रंग का होजाता हो ॥ ८ ॥ इति प्रदरनिदानम्।

अथ प्रदराचिकित्सा।

अथ वातप्रदरचिकित्सा।

दध्ना सौवर्चलाजाजीमधुकं नीलमुत्पलम्।
पिबेत्क्षौद्रयुतं नारी वातासृग्दरशान्तये ॥ १ ॥

सौंचलनमक, श्वेतजीरा, मुलठ्ठी, नीलाकमल इन सब को समभाग लेकर पीसकर शहद मिलाकर दही के साथ पीवे तो वातप्रदर नष्ट होता है ॥ १ ॥

नागरं मधुकं तैलं सिता दधि च तत्समम्।
खजेनोन्मथितं पीतं वातप्रदरनाशनम् ॥ २ ॥

सोंठ, मुलठ्ठी, तिल का तैल, खांड तथा दही ये सब पदार्थ समभाग लेकर खज अर्थात् कड़छी या मधानी से मथकर पिलायें तो वातप्रदर का नाश होता है॥२

एलामंशुमतीं द्राक्षामुशीरं तिक्तरोहिणीम्।
चन्दनं कृष्णलवणं सारिवालोध्रसंयुतम् ॥ ३ ॥

इलायची, शालपर्णी, दाख, खस, कुटकी, लालचन्दन, सौंचल लवण, सारिवा, लोध ॥ ३ ॥

वातासृग्दरशान्त्यर्थं पिबेद्दध्ना सहाङ्गना।
पित्तासृग्दरशान्त्यर्थं सक्षौद्रं ललना पिबेत् ॥ ४ ॥

इन सबका चूर्ण दही के साथ मिलाकर स्त्री पीवे तो वातप्रदर की शान्ति होती है। यदि इसी चूर्ण को शहद से मिलाकर चाटें तो पित्तप्रदर तथा रक्त प्रदर की शान्ति होती है ॥ ४ ॥

अथ रक्तप्रदरचिकित्सा—वासकस्य गुडूच्या वा रसं किं वा वरीभवम्।
मधुकं कर्षमेकं तु चतुष्कर्षां सितां तथा॥
तण्डुलोदकसंपिष्टं लोहिते प्रदरे पिबेत्॥ ५॥

बांसे का स्वरस वा गिलोय का स्वरस वा शतावर का स्वरस। मुलठ्ठी एक कर्ष, खांड चार कर्ष लें। इन सब को मिलाकर चावलों के धुले जल से पिलायें तो रक्त प्रदर का नाश होता है॥ ५॥

प्रदरं हन्ति बलाया मूलं दुग्धेन संयुतं पीतम्।
कुशवाट्यालकमूलं तण्डुलसलिलेन रक्ताख्यम्॥ ६॥

बला अर्थात् खिरेंटी की जड़ दूध से मिलाकर पिलावें। अथवा कुशा और बला की जड़ का समभाग चूर्ण करके तण्डुलोदक से पिलायें तो रक्त प्रदर का नाश होता है॥ ६॥

बलाकङ्कतिकाख्या या तस्या मूलं सुचूर्णितम्।
लोहितप्रदरे खादेच्छर्करामधुसंयुतम्॥ ७॥

कंघी नामक बला अर्थात् अतिबला की जड का चूर्ण सुचूर्णित करके खांड तथा शहद से मिलाकर चाटे तो रक्तप्रदर का नाश होता है॥ ७॥

अथ कफप्रदरचिकित्सा—मद्यैर्निम्बगुडूच्योश्च रोहितस्याथ वा रसम्।
कफप्रदरनाशाय पिबेद्वा मलयूरसम्॥ ८॥

नीम का तथा गिलोय का स्वरस वा रोहेड़ का रस वा काकोदुम्बरिका का स्वरस मद्य से पिलाया जावे तो कफप्रदर का नाश करता है॥ ८॥

काकजङ्घामूलरसं मधुना सह भामिनी।
सलोध्रचूर्णमापीय कफप्रदरकं जयेत्॥ ९॥

काकजंघा की जड़ का रस शहद मिलाकर लोध के चूर्ण के साथ पिलावें तो कफप्रदर का नाश होता है॥ ९॥

अथ सन्निपातज्वरप्रदरचिकित्सा—

पथ्यामलकबिभीतकविश्वौषधदारुरजनीनाम्।
सक्षौद्रलोध्रचूर्णक्वाथो हन्त्येष सर्वजं प्रदरम्॥ १०॥

हरड़, आंवला, बहेड़ा, सोंठ, दारुहल्दी इनको समभाग लेकर क्वाथ करें॥ इस क्वाथ में शहद तथा लोध्र का चूर्ण मिलाकर पीवें तो त्रिदोषज प्रदर का नाश हो जाता है॥ १०॥

रसाञ्जनं तण्डुलकस्य मूलं क्षौद्रान्वितं तण्डुलतोयपीतम्।
असृग्दरं सर्वभवं निहन्ति श्वासं सुभार्गी सह नागरेण॥ ११॥

रसौंत तथा चौलाई की जड़ समभाग लेकर चूर्ण करे। इस चूर्ण को शहद मिलाकर चावलों के जल से पीवे तो त्रिदोषज रक्तप्रदर रोग का नाश होता है। इसी प्रकार भार्गी को सोंठ के साथ मिलाकर खिलायें तो श्वासरोग नष्ट होता है॥ ११

अशोकवल्कलकाथं शृतं दुग्धं सुशीतलम्।
यथाबलं पिबेत्प्रातस्तीव्रासृग्दरनाशनम्॥ १२॥

अशोक की छाल का काथ तथा पकाकर शीतल किया हुआ दूध दोनों को मिलाकर प्रातःकाल यथाशक्ति स्त्री को पिलावें तो यह तीव्र रक्तप्रदर को नाश करता है १२

कुशमूलं समुद्धृत्य पेषयेत्तण्डुलाम्बुना।
एतत्पीत्वा त्र्यहं नारी प्रदरात्परिमुच्यते॥ १३॥

कुशा की जड़ को चावलों के धोये जल से पीसकर पिलावें तो इसके तीन दिन पीने से ही स्त्री प्रदररोग से छूट जाती है॥ १३॥

क्षौद्रयुक्तं फलरसं काष्ठोदुम्बरजं पिबेत्।
असृग्दरविनाशाय सशर्करपयोऽन्नभुक्॥ १४॥

कठूमर या काकोदुम्बरी के फलों का रस शहद मिलाकर पिलायें, और खांड दूध तथा अन्न मिलाकर पथ्य देवें तो रक्तप्रदर का नाश होता है॥ १४॥

मलयूफलचूर्णस्य शर्करासहितस्य च।
मधुना मोदकं कृत्वा खादेत्प्रदरनाशनम्॥ १५॥

काकोदुम्बरी (अर्थात् पर्वत में स्वाभाविक उत्पन्न हुई अंजीर) के फलों का का चूर्ण खांड मिलाकर तथा शहद डालकर लड्डू बना लें। इन मोदकों के खाने से प्रदररोग का नाश होता है॥ १५॥

अथ दार्व्यादिकषायः—

दार्वीरसाञ्जनवृषाब्दकिराताबिल्वभल्लातकैरवकृतो मधुना कषायः।
पीतो जयत्यतिबलं प्रदरं सशूलं पीतासितारुणविलोहितनीलशुक्लम्॥

दारुहल्दी, रसौंत, बांसा, मोथा, चिरायता, बिल, शोधित भिलांवा इन सब को समभाग लेकर काथ करके शहद से मिलाकर पिलावें तो अत्यन्त बलवान प्रदर को जो शूल सहित हो तथा पीला, काला, गुलाबी और अधिक लाल रंग का वा रक्तप्रदर, नीलप्रदर तथा शुक्ल या श्वेत प्रदर को नाश करता है॥ १६॥

भूम्यामलकमूलं तु पीतं तण्डुलवारिणा।
द्वित्रैरेव दिनैर्नार्याः प्रदरं दुस्तरं जयेत्॥ १७॥

भुई आंवले की जड़ का चूर्ण चावलों के जल से पीवें तो दो तीन दिन में स्त्री भयंकर प्रदररोग से छूट जाती है॥ १७॥

अन्ये योगाः—शुण्ठीतिरिण्टयोश्चूर्णं भुक्तं सघृतशर्करम्।
प्रबलं प्रदरं हन्ति नार्या वा कुटजाष्टकम्॥ १८॥

सोंठ तथा लोध का चूर्ण घी तथा शक्कर से मिलाकर खिलावें। अथवा कुटजाष्टक खिलावें तो प्रबल प्रदर रोग भी नष्ट होता है॥ १८॥

धातक्याश्च तथा पूगीकुसुमानां पिबेच्छृतम्।

नाशयेत्प्रदरं सद्यस्त्रिदिनाद्योषितो ध्रुवम् ॥ १६ ॥

धाय के फूल तथा सुपारी के फूलों का क्वाथ पिलायें तो तीन दिन में प्रदर नष्ट होता है ॥ १६ ॥

आखोः पुरीषं पयसा निपीय वह्नेर्बलादेकमहर्द्व्यहं वा।
स्त्रिया स्त्र्यहं वा प्रदरं स्रवन्त्यः प्रसह्य पारं परमाप्नुवन्ति ॥२०॥

चूहे की मींगनी को दूध से एक दिन, दो दिन वा तीन दिन पीवें तो प्रदर अवश्य नष्ट होता है ॥ २० ॥

अशोकवल्कलं पिष्ट्वा सतार्द्यं तण्डुलाम्भसा।
सक्षौद्रं तद्रसं पीत्वा प्रदरान्मुच्यतेऽङ्गना ॥ २१ ॥

अशोक की छाल को रसौंत से समभाग मिलाकर चावलों के जल से पीसकर उस रस में शहद डालकर पिलावें इससे प्रदररोग का नाश होता है ॥२१॥

अथ व्याघ्रनखीमूलयोगः—शुचिस्थाने व्याघ्रनख्या मूलमुत्तरदिग्भवम्।
नीतमुत्तरफल्गुन्यां कटिबद्धं हरेदसृक् ॥ २२ ॥

पवित्र स्थान में उत्पन्न हुई २ व्याघ्र नखी की उत्तर दिशा में उत्पन्न हुई २ जड़ को उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में उखाड़ कर कमर से बांध देवे तो रक्तप्रदर नष्ट होता है ॥ २२ ॥

अथ पुष्यानुगं चूर्णम्—पाठा रसाञ्जनं मुस्तं मज्जा जम्ब्वाम्रयोस्तथा।
अम्बष्ठकी शिलोद्भेदं समङ्गा पद्मकेसरम् ॥ १ ॥

पाठा, रसौंत, मोथा, जामुन की गुठली की मज्जा या गिरी, आम की गुठली की मज्जा वा गिरी, पाठा वा लक्ष्मणा की जड़, [अम्बष्ठकी—पाठायां लक्ष्मणा· मूले (भैष. स्त्रीरोग. चि. पुष्युपानुगचूर्णे) इति वैद्यकशब्दसिन्धौ] पाषाणभेद (असली पाषाणभेद को पन्सारी पाषाणगरडा कहते हैं), मंजीठ, कमल का केसर१

बिल्वं मोचरसं लोध्रं केशरं गैरिकं तथा।
विश्वौषधं कट्फलं च मरिचं रक्तचन्दनम् ॥ २ ॥

बिल का गूदा, मोचरस, लोध, कश्मीरी केसर, गेरु, सोंठ, कायफल, मिरच, लालचन्दन ॥ २ ॥

कट्वङ्गं धातकी द्राक्षाऽनन्ता मधुकमर्जुनम्।
वत्सकातिविषा चेति पुष्येणोद्धृत्य बुद्धिमान् ॥ ३ ॥

श्योणाक की छाल, धाय के फूल, दाख, अनन्तमूल, मुलठी, अर्जुन की छाल, कुटज की छाल, अतीस इन द्रव्यों को पुष्य नक्षत्र में उखाड़ कर और एकत्र समभाग लेकर कूटकर चूर्ण बनावे ॥ ३ ॥

तुल्यभागानि सर्वाणि सूक्ष्माणि च विचूर्णयेत्।
तच्चूर्णं माक्षिकोपेतं पीतं तण्डुलवारिणा ॥ ४ ॥

इस चूर्ण को शहद से मिलाकर चावलों के जल के अनुपान से पिला दें ॥४॥

जयेदर्शांस्यतीसारं तथा रक्तप्रवाहिकाम्।
बालानां कृमिरोगांश्च योनिदोषांश्च योषिताम् ॥ ५ ॥

तो यह पांचों बवासीरें, अतीसार तथा रक्तप्रवाहिका इन रोगों का नाश करता है। बालकों के कृमिरोगों को तथा स्त्रियों के योनिरोगों को नष्ट करता है ॥ ५ ॥

रजोदोषो तथा सर्वान्प्रदरान्दुस्तरानपि।
पीतनीलारुणश्वेतान्सर्वानेव विनाशयेत्।
चूर्णं पुष्यानुगं नामा पूर्वमात्रेयभाषितम् ॥ ६ ॥

रजोदोष को तथा सभी प्रकार के भयंकर, पीले, नीले, लाल, श्वेत प्रदरों को नाश करता है। यह पुष्यानुगचूर्ण पहले २ आत्रेय मुनि ने संसार में चलाया था ॥ ६ ॥ इति पुष्यानुगं चूर्णम् ॥

अथ जीरकावलेहः—जीरकं प्रस्थमेकं तु क्षीरं द्व्याढकमेव च।
प्रस्थार्धे लोध्रघृतयोः पचेन्मन्देन वह्निना ॥ १ ॥

श्वेत जीरा एक प्रस्थ लें, दूध दो आढक, लोध तथा घी आधा २ प्रस्थ लें। सबको एकत्र पीसकर मिलाकर मन्द २ अग्नि से पकावे ॥ १ ॥

लेहीभूतेऽथ शीतेऽत्र सिताप्रस्थं विनिक्षिपेत्।
चातुर्जातकणाविश्वमजाजी मुस्तवालकम् ॥ २ ॥

जब अवलेह बनकर शीतल हो जावे तो एक प्रस्थ खांड मिला देवे। और चतुर्जात के चारों द्रव्य तथा पिप्पली, सोंठ, जीरा, मोथा, सुगन्ध बाला ॥ २ ॥

दाडिमं रसजं धान्यं रजनी पडवासकम्।
वंशजं च तवक्षीरी प्रत्येकं शुक्तिसंमितम् ॥ ३ ॥

अनारदाना वा अनार का छिलका, रसौंत, धनियां हल्दी, कटसरैया, वंशलोचन, तबाशीर प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ शुक्ति भर अर्थात् आधा २ पल लेवे और सबको मिलाकर अवलेह में डाल देवें ॥ ३ ॥

जीरकस्यावलेहोऽयं प्रमेहप्रदरापहः।
ज्वराबल्यारुचिश्वासतृष्णादाहक्षयापहः ॥ ४ ॥

इस जीरकावलेह को खाने से प्रदर तथा प्रमेह का नाश होता है, ज्वर, दुर्बलता, अरुचि, श्वास, तृष्णा, दाह तथा क्षय का नाश होता है ॥ ४ ॥

अथैन्द्रयवादियोगः—निष्कमैन्द्रयवं चूर्णं सिताद्विगुणितं भवेत्।
उषितेन जलेनैव पीतं प्रदरनाशनम् ॥ ५ ॥

इन्द्रजौ का चूर्ण एक निष्क भर लेकर उसमें दो गुनी खांड मिलाकर बासी जल से पिलावें तो प्रदर का नाश होता है ॥ ५ ॥

अथ मुद्गाद्यं घृतम्—मुद्गमाषस्य निर्यूहे रास्नाचित्रकमुस्तकैः।
सिद्धं सपिप्पलीबिल्वैः सर्पिः श्रेष्ठमसृग्दरे ॥ १ ॥

मूंग तथा उड़द का क्वाथ करे। यह क्वाथ ४ सेर हो, गौ का घी एक सेर हो। रास्ना, चीता, मोथा, पिप्पली, बिल का गूदा इन सबको समभाग ले कर एक पाव भर का कल्क कर ले। सब द्रव्यों को एकत्र करके घी पका लेवें। यह घी पिलावें तो रक्तप्रदर के नाश करने में यह श्रेष्ठ है॥ १॥

अथ शाल्मलीघृतम्—शाल्मलीपुष्पनिर्यासः पृश्निपर्णी तथैव च।
काश्मरी चन्दनं चैषां कल्केन स्वरसेन वा॥१॥
गव्यं पचेद् घृतप्रस्थं तत्सिद्धं तरुणी पिबेत्।
सर्वप्रदरनाशाय बलवर्णाग्निवर्धनम्॥ २॥

सेमल के फूलों का स्वरस, पृष्टपर्णी, गम्भारी के फल, चन्दन लाल इनके कल्क से वा स्वरस से गौ का एक प्रस्थ घी पकावें। इसे युवती स्त्री पीवे तो सब प्रदरों का नाश होता है तथा बल, वर्ण तथा अग्नि की वृद्धि होती है॥ २॥

अथ शीतकल्याणकं घृतं वृन्दात्—कुमुदं पद्मकोशीरं गोधूमो रक्तशालयः।
मुद्गपर्णी पयस्या च काश्मरी मधुयष्टिका॥१॥

कुमुदनी, पद्मकाष्ठ, खस, गेहूं, लाल चावल, मुद्गपर्णी, क्षीरविदारी, गंभारी का फल, मुलठी॥ १॥

बलातिबलयोर्मूलमुत्पलं तालमस्तकम्।
विदारी शतपुष्पी च शालिपर्णी सजीविका॥ २॥

बला की जड़, अतिवला की जड़, नीलाकमल, ताड़ का मस्तक, विदारीकन्द, सौंफ, शालपर्णी, जीवक॥ २॥

त्रिफला त्रापुसं बीजं प्रत्यग्रं कदलीफलम्।
एषामर्धपलान्भागान् गव्यक्षीरं चतुर्गुणम्॥ ३॥

हरड़, बहेड़ा, आंवला, खीरे के बीज, नया केला अर्थात् कच्चा केला। इन में से प्रत्येक को आधा २ पल लेकर कल्क करे, गौ का दूध ४ प्रस्थ ले॥ ३॥

पानीयं द्विगुणं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
प्रदरे रक्तगुल्मे च रक्तपित्ते हलीमके॥ ४॥

पानी दो प्रस्थ ले, घी १ प्रस्थ ले। एकत्र सब को मिलाकर पका लेवे। इस घी को खिलावें तो प्रदर, रक्तगुल्म, रक्तपित्त, हलीमक॥ ४॥

अरोचके ज्वरेऽजीर्णे पाण्डुरोगे मदे भ्रमे।
तरुणी त्वल्पपुष्पा वा या वा गर्भं न विन्दति॥ ५॥

अरुचि, अजीर्ण, ज्वर, अजीर्ण पाण्डुरोग, मद, भ्रम इन रोगों को नाश करता है। जिस स्त्री को मासिकधर्म थोड़ा आता हो या जिसे गर्भ न ठहरता हो॥ ५॥

अहन्यहनि च स्त्रीणां भवति प्रीतिवर्धनम्।
शीतकल्याणकं नाम परमुक्तं रसायनम्॥ ६॥

रक्तपित्ताधिकारोक्तं कूष्माण्डखण्डं च प्रदरे देयम् ॥

इसे प्रतिदिन दें तो स्त्रियों की मनोकामना पूर्ण करता है अर्थात् रजोदोष ठीक होकर गर्भ ठहरता है। यह शीतकल्याणकघृत परम रसायन है ॥६॥ रक्तपित्ताधिकार में कहा हुआ कूष्माण्डखण्ड भी प्रदर में देना चाहिये ॥

अथ रसाः। प्रदररिपुरसः—

रसं गन्धं सीसं मृतमिति समं तैस्तु रसजं
समानं सर्वैः स्यात्तुलितमपि लोध्रं वृषरसैः।
दिनं पिष्टं नाम्ना प्रदररिपुरेषोऽपहरति
द्विवल्लः क्षौद्रेण प्रदरमपिदुःसाध्यमपि च ॥ १ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगंधक, सीसे की भस्म प्रत्येक एक २ भाग लें। सब के बराबर रसौंत ३ भाग लें। फिर सब के बराबर ६ भाग लोध्र का चूर्ण लें। सब को विधिपूर्वक मिलाकर बांसे के स्वरस से एक दिन घोटकर दो वल्ल की गोली बनालें। इसे शहद से मिलाकर चटावें तो भयंकरप्रदर का भी नाश होता है ॥१॥ इति प्रदरारी रसरत्नप्रदीपात् ॥

अथ बोलपर्पटी—

सूतगन्धकसुकज्जलिकायाः पर्पटी समयुता समभागम्।
बोलचूर्णविहितं प्रतिवाप्यं स्याद्रसोऽयमसृगामयहारी ॥ १ ॥

शुद्धपारे तथा शुद्धगंधक को समभाग लेकर कज्जली करे। इस कज्जली में समभाग बोल का चूर्ण डाले और पर्पटी बनाकर, यह रस सभी प्रकार के रक्तरोगों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

वल्लयुग्मयुगुलं प्रतिदेयं शर्करामधुयुतः किल दत्तः।
रक्तपित्तगुदजास्रुतियोनिस्रावमाशु विनिवारयतीशः ॥ २ ॥

इस रस को दो वल्ल लेकर इसमें खांड मिलावें तथा शहद मिलाकर रोगी को देवें तो रक्तपित्त, बवासीर के मस्सों से खून का बहना, योनि से रक्तादि का स्राव होना इन सब को यह रस शीघ्र निवारण करता है ॥ २ ॥ इति बोलपर्पटी योगसारात् ॥ इति प्रदरचिकित्सा ॥

इति हरद्वारीयगुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेणायुर्वेदशास्त्रिणा लवपुरीय श्रीमद्दयानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीय वैद्यकविराजोपाधिधारिणा राजयक्ष्मचिकित्सकेन जलचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योगरत्नाकरस्य रत्नगर्भानाम्निटीकायां प्रदररोग चिकित्सा समाप्ता ॥

अथ सोमरोगाधिकारः।

तत्र सोमरोगस्य निदानपूर्विकां संप्राप्तिमाह—

स्त्रीणामतिप्रसङ्गाद्वा शोकाच्चापि श्रमादपि।

अतिसारकयोगाद्वा गरदोषात्तथैव च ॥ १ ॥

स्त्रियों के साथ अति मैथुन करने से, शोक से, श्रम से, अतिसार लाने वाले योगों के अधिक सेवन करने से, तथा विष दोष से ॥ १ ॥

आपः सर्वशरीरस्थाः क्षुभ्यन्ति प्रस्रवन्ति च ।
तस्मात्ताः प्रच्युताः स्थानान्मूत्रमार्गं व्रजन्ति हि ॥ २ ॥

सारे शरीर के जल क्षुभित हो जाते हैं तथा प्रस्रवित होते रहते हैं वे जल अपने २ नियत स्थानों से प्रच्युत हुए २ मूत्रमार्ग की ओर जाते हैं ॥ २ ॥

अथ तस्य लक्षणमाह—प्रसन्ना विमलाः शीता निर्गन्धा नीरुजः सिताः ।
स्रवन्ति चातिमात्रं ताः सा न शक्नोति दुर्बला ॥३

प्रसन्न अर्थात् स्वच्छ, निर्मल, शीतल, गन्धरहित, पीड़ारहित, श्वेत रंग वाले वे जल जब अत्यन्त स्रवित होने लगते हैं तब उनसे दुर्बल हुई २ स्त्री ॥ ३ ॥

वेगं धारयितुं तासां न विन्दति सुखं क्वचित् ।
शिरःशिथिलता तस्या मुखं तालु च शुष्यति ॥ ४ ॥

उनके वेग को रोक नहीं सकती, रोके तो सुख नहीं मिलता, परन्तु दुःखी रहती है । उसके सिर की शिथिलता हो जाती है मुख तथा तालु सूख जाता है ४

मूर्च्छा जृम्भा प्रलापश्च त्वग्रूक्षा चातिमात्रतः ।
भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च न तृप्तिं लभते सदा ॥ ५ ॥

उसे मूर्च्छा आती है, जंभाईयें आती हैं, प्रलाप होता है, तथा त्वचा अत्यन्त रूखी हो जाती है । भक्ष्य, भोज्य तथा पेय पदार्थों से तृप्ति नहीं होती ॥ ५ ॥

संधारणाच्छरीरस्य ता आपः सोमसंज्ञिताः ।
ततः सोमक्षयात्स्त्रीणां सोमरोग इति स्मृतः ॥ ६ ॥

शरीर के सन्धारण करने के कारण इन जलों को सोम कहते हैं, उस सोम के क्षय होने से ही इस रोग को सोमरोग कहा जाता है ॥ ६ ॥

तस्मात्सोमक्षयाद्देहो निश्चेष्टश्च भवेत्सदा ।
स एव सरुजः सोमो मूत्रेण स्रवते मुहुः ॥ ७ ॥

इसी कारण उस सोम के नष्ट होजाने से स्त्रियों का शरीर सदा चेष्टारहित सा रहता है । वही सोम पीड़ायुक्त होकर मूत्र के साथ बार २ बहता है ॥ ७ ॥

सोमलक्षणसंसृष्टः कालातिक्रान्तयोगतः ।
सोमक्रान्तिक्रमेणैव स्रवेन्मूत्रमभीक्ष्णशः ॥
मूत्रातिसार इत्येव तमाहुर्बलनाशनम् ॥ ८ ॥

सोम के लक्षणों से संसृष्ट हुआ २ तथा काल के अतिक्रमण होने के कारण अर्थात् पुराना होने पर उस सोम धातु के निकलने के क्रम से ही बार २ मूत्र निकलता है। इसे ही मूत्रातिसार कहते हैं, इस से बल का नाश होता है ॥८॥ इति सोमरोगनिदानम् ।

अथ सोमरोगस्य चिकित्सा।

कदलीनां फलं पक्वं धात्रीफलरसं मधु।
शर्करासहितं खादेत्सोमधारणमुत्तमम् ॥ १ ॥

केले का पका हुआ फल, आंवले का स्वरस तथा शहद इन को मिलाकर खांड डालकर खावें तो सोम के धारण करने के लिये उत्तम है अर्थात् इस से सोम अर्थात् जलीय अंश का बहना कम होजाता हैं ॥ १ ॥

माषचूर्णं समधुकं विदारीमधुशर्कराम्।
पयसा पाययेत्प्रातः सोमधारणमुत्तमम् ॥ २ ॥

उड़द का चूर्ण, मुलठ्ठी, विदारीकन्द, शहद तथा खांड सबको मिलाकर प्रातः दूध से पीवें तो सोम को रोकने के लिये उत्तम उपाय है ॥ २ ॥

अथ श्वेतप्रदरचिकित्सामाह—जलेनाऽऽमलकीबीजकल्कं समधुशर्करम्।
पिबेद्दिनत्रयेणैव श्वेतप्रदरनाशनम् ॥ ३ ॥

आंवले के बीजों के मध्य में से गिरी निकाल कर जल से पीसकर शहद और खांड मिलाकर पिलावें तो ३ दिन में ही श्वेतप्रदर का नाश होता है ॥ ३ ॥

तक्रौदनाहाररता संपिबेन्नागकेशरम्।
त्र्यहं तक्रेण संपिष्टं श्वेतप्रदरनाशनम् ॥ ४ ॥

जो स्त्री तक्र तथा चावल खाती हो और नागकेसर को तक्र से पीसकर ३ दिन पीवे तो श्वेतप्रदर का नाश होता है ॥ ४ ॥

चूर्णं तु पडवासस्य तिलतैलेन लेहयेत्।
सप्तरात्रेण योषाणां श्वेतप्रदरनाशनम् ॥ ५ ॥

कटसरैया का चूर्ण तिल के तेल से मिलाकर सात रात पिलावें तो स्त्रियों का श्वेतप्रदर नष्ट होता है ॥ ५ ॥

अत्रैव मूत्राऽतिसारस्य चिकित्सामाह—

स एव सरुजः सोमः स्रवेन्मूत्रेण चेन्मुहुः।
तत्रैलापत्रचूर्णेन पाययेत्तरुणीं सुराम् ॥ १ ॥

वही पीड़ा करता हुआ सोम यदि मूत्र के साथ वार २ आवे तो इलायची और तेजपात का चूर्ण मिलाकर स्त्री को सुरा पिलावें ॥ १ ॥

तालकन्दं च खर्जूरं मधुकं च विदारिकाम्।
सितामधुयुतां खादेन्मूत्रातीसारनाशनम् ॥ २ ॥

तालवृक्ष का कन्द, खजूर, मुलठ्ठी, विदारीकन्द इन सब का चर्ण खांड तथा शहद मिलाकर खावें तो मूत्रातिसार का नाश करता है ॥ २ ॥

चक्रमर्दकमूलं तु संपिष्टं तण्डुलाम्बुना।

प्रभातसमये पीतं जलप्रदरनाशनम् ॥ ३ ॥

चुकमर्द या पनवाड़ की जड़ को तण्डुलोदक से पीसकर प्रातःकाल खिलावें तो जलप्रदर अर्थात् मूत्रातिसार का नाश करता है ॥ ३ ॥

अथ कदलीघृतम्—कदलीकन्दनिर्यासद्रोणे शतपलान्वितम्।
कदलीकुसुमं पक्कं क्काथं पादावशेषितम् ॥ १ ॥

केले की जड़ का स्वरस १ द्रोण लेवे, इस में केले के फूल एकसौ पल डालकर क्काथ कर के चौथाई भाग शेष रहे तो छान लेवें ॥ १ ॥

घृतप्रस्थं पयस्तुल्यं पिप्पल्येलालवङ्गकम्।
कपित्थस्य फलं मांसी कदलीकन्दचन्दनम् ॥ २ ॥

घी एक प्रस्थ लेवे, दूध एक प्रस्थ लेवे, पिप्पली, इलायची, लौंग, कैथ का फल, जटामांसी, केले का कन्द, चन्दन ॥ २ ॥

न्यग्रोधादिगणैः सार्धं सर्वान्वारिसमुद्भवान्।
सर्वं समं कर्षमात्रं कल्कीकृत्वा पचेच्छनैः ॥ ३ ॥

न्योग्राधिगण के द्रव्य, सभी प्रकार के कमल इन में से प्रत्येक द्रव्य एक २ कर्ष लेकर सब का कल्क करे ॥ ३ ॥

घृतं क्काथं च कल्कं च पक्त्वा चैवावतारयेत्।
प्रातःकाले पिबेन्नित्यं सेवयेत्कर्षमात्रकम् ॥ ४ ॥

इन सब क्काथ घी तथा कल्क को शनैः २ पाक करे। इस घी को एक कर्ष नित्य प्रातःकाल सेवन करे ॥ ४ ॥

सोमरोगं हरेद्दाहं मूत्रकृच्छ्राश्मरीं तथा।
प्रमेहान्विंशतिं हन्यात्प्रमेहगजकेसरी ॥ ५ ॥

इस से सोमरोग का नाश होता है, दाह दूर होता है, मूत्रकृच्छ्र तथा अश्मरी रोग का नाश होता है। २० प्रकार के प्रमेहों को नाश करता है, प्रमेह रूपी हाथियों के लिये यह केसरी के समान है ॥ ५ ॥

मूत्रातिसारमप्यन्यं व्याधिं विध्वंसयेद् ध्रुवम्।
कदलीकन्दनामेदं घृतं सर्वरुजापहम् ॥ ६ ॥

मूत्रातिसाररोग को भी यह घी निश्चय कर के नाश करता है। यह कदली कन्द नामक घृत सब रोगों को नष्ट करता है ॥ ६ ॥

अथ रसाः—कूष्माण्डपत्रस्वरसैः पक्कं पारदनिष्ककम्।
द्विनिष्कं गन्धकं कृत्वा ज्वलने कज्जलीकृतः ॥
असौ समरिचः सोमरोगातिस्रातिनाशनः ॥ १ ॥

शुद्धपारे को एक निष्कभर लेकर पेठे के पत्तों के स्वरस में पकावें फिर स्वरस के जल जाने पर उस पारे में शुद्धगन्धक दो निष्क डालकर आग पर

दोनों को रखकर कज्जली करे। इस कज्जली को काली मिरचों के चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन करावें तो सोमरोग तथा मूत्रअतीसार का नाश होता है ॥१॥

इति सोमरोगमूत्रातिसाराधिकारः।

इति हरद्वारीय गुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेणायुर्वेदशास्त्रिणा लवपुरीय श्रीमद्दयानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीय वैद्यकविराजोपाधिधारिणा राजयक्ष्मचिकित्सकेन जलचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योगरत्नाकरस्य रत्नगर्भानाम्निटीकायां सोमरोगमूत्रातिसारचिकित्सा समाप्ता।

अथ योनिरोगाधिकारः।

तत्र योनिव्यापद्रोगाणां निदानान्याह—

विंशतिर्व्यापदो योनेर्निर्दिष्टा रोगसंग्रहे।
मिथ्याचारेण ताः स्त्रीणां प्रदुष्टेनाऽऽर्तवेन च॥
जायन्ते बीजदोषाच्च दैवाद्वा शृणु ताः पृथक्॥ १ ॥

रोग संग्रह में योनिरोग २० माने हैं। वे रोग स्त्रियों में मिथ्या आहार विहार से, दुष्ट आर्तव से, बीज दोष से, अथवा दैव से, अर्थात् पूर्वजन्म के कर्मों के कारण उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १ ॥

अथ रोगिणीनां योनीनां नामान्याह—

उदावर्ता तथा वन्ध्या विप्लुता च परिप्लुता।
वातला योनिरुग्ज्ञेया वातदोषेण पञ्चधा॥ २ ॥

उदावर्ता, वन्ध्या, विप्लुता, परिप्लुता, वातला ये पांच योनिरोग वातदोष से होते हैं ॥ २ ॥

पञ्चधा पित्तदोषेण तत्राऽऽदौ लोहितक्षया।
प्रस्रंसिनी वामिनी च पुत्रघ्नी पित्तला तथा॥ ३ ॥

लोहितक्षया, प्रस्रंसिनी, वामिनी, पुत्रघ्नी, पित्तला ये पांच योनिरोग पित्तदोष से होते हैं ॥ ४ ॥

अत्यानन्दा कर्णिनी च चरणानन्दपूर्विका।
अतिपूर्वाऽपि सा ज्ञेया श्लेष्मला च कफादिमाः॥ ४ ॥

अत्यानन्दा, कर्णिनी, आनन्दचरणा, अतिपूर्वा ये पांच योनिरोग कफदोष से होते हैं॥ ४ ॥

षण्ढ्यण्डिनी च महती सूचीवक्त्रा त्रिदोषिणी।
पञ्चैता योनयः प्रोक्ताः सर्वदोषप्रकोपतः॥ ५ ॥

षण्ढी, अण्डिनी, महती, सूचीवक्त्रा, त्रिदोषिणी ये पांच योनियें सर्वदोषों के प्रकोप से होती है ॥ ५ ॥

अथ तासां लक्षणमाह। अथ वातज आमाह—

या फेनिलमुदावर्ता रजः कृच्छ्रेण मुञ्चति।

सा तु योनिः कफेनैवमार्तवं च विमुञ्चति ॥ ६ ॥

जो झागदार रज को कठिनता से निकाले उसे उदावर्त्ता कहते हैं अर्थात् वह ऊपर को चारों ओर से गोल होती है। इस योनि में कफ से भी ऐसा ही आर्तव निकलता है ॥ ६ ॥

वन्ध्या नष्टार्तवा ज्ञेया विप्लुता नित्यवेदना।
परिप्लुतायां भवति ग्राम्यधर्मेण रुग्भृशम् ॥ ७ ॥

जिस योनि से आर्तव न आता हो उसे बन्ध्या कहते हैं। जिस योनि में नित्य पीड़ा होती हो उसे विप्लुता कहते हैं। जिस योनि में मैथुन करने से अधिक पीड़ा हो उसे परिप्लुता कहते हैं ॥ ७ ॥

वातला कर्कशा स्तब्धा शूलनिस्तोदपीडिता।
चतसृष्वपि चाऽऽद्यासु भवन्त्यनिलवेदनाः ॥ ८ ॥

वातला योनि कर्कश स्तब्ध तथा कठिन होती है तथा शूल और चोभ से पीड़ित होती है। पूर्व की चारों योनियों में अर्थात् उदावर्त्ता, वन्ध्या, विप्लुता तथा परिप्लुता में वात की वेदनायें होती हैं ॥ ८ ॥

अथ पित्तजा आह—**सदाहं क्षीयते रक्तं यस्यां सा लोहितक्षया।**
प्रस्रंसिनी स्रंसते च क्षोभिता दुष्प्रजायिनी ॥ ९ ॥

जिस योनि में से दाह सहित रक्त क्षीण होता रहे उसे लोहितक्षया कहते हैं। जो अपने स्थान से नीचे लटक कर बाहर निकल आवे और विमर्दन करने से जिससे प्रसव में कठिनता हो उसे प्रस्रंसिनी कहते हैं ॥ ९ ॥

सवातमुद्गिरेद्बीजं वामिनी रजसा युतम्।
स्थितं स्थितं हन्ति गर्भं पुत्रघ्नी रक्तसंक्षयात् ॥ १० ॥

वात सहित वीर्य को तथा रक्त को जो बाहर वमन करदे अर्थात् निकाल देवे उसे वामिनी कहते हैं। रक्त अर्थात् आर्तव के वायु से क्षय हो जाने पर बार २ ठहरे हुए गर्भ को भी जो नष्ट कर दे, विशेष करके पुत्र के गर्भ को नष्ट कर दे उसे पुत्रघ्नी कहते हैं ॥ १० ॥

अत्यर्थं पित्तला योनिर्दाहपाकज्वरान्विता।
चतसृष्वपि चाऽद्यासु पित्तलिङ्गोच्छ्रयो भवेत् ॥ ११ ॥

पित्तलायोनि दाह, पाक तथा ज्वर से युक्त होती है और साथ ही नीला, पीला तथा काला आर्तव भी निकलता है (अन्यत्र कहा भी है, "व्यापन्नवगाकट्वम्लक्षाराद्यैः पित्तजा भवेत्। दाहपाकज्वरोष्णार्ता नीलपीतासितार्तवा)। पूर्व की इन चारों योनियों में अर्थात् रक्तक्षया, प्रस्रंसिनी, वामिनी तथा पुत्रघ्नी में पित्त के सब लक्षण प्रबल होते हैं ॥ ११ ॥

अथ कफजा आह—**अत्यानन्दा न संतोषं ग्राम्यधर्मेण गच्छति।**
कर्णिन्यां कर्णिका योनौ श्लेष्मासृग्भ्यां प्रजायते ॥१२॥

मैथुन करने से भी जिसे सन्तोष न होता हो उसे अत्यानन्दा कहते हैं। कर्णिनी योनिरोग में कफ तथा रक्त से योनि में कर्णिका अर्थात् मांस कंद के आकार की सी गांठ होजाती है॥ १२॥

मैथुनेऽचरणापूर्वं पुरुषादतिरिच्यते।
बहुशश्चातिचरणा तयोर्बीजं न विदन्ति॥ १३॥

अच्छी प्रकार से मैथुन करने से पुरुष से पहले ही जो योनि विषय भोग से रुक जाती है इस कारण वीर्य ग्रहण नहीं करती इसे आनन्दचरणा या अचरणा कहते हैं॥ बहुत मैथुन करने के कारण जो बीज ग्रहण न कर सके उसे अतिचरणा कहते हैं, ये अचरणा तथा अतिचरणा दोनों ही बीज ग्रहण नहीं करती है॥१३॥

श्लेष्मला पिच्छिला योनिः कण्डूग्रस्ताऽतिशीतला।
चतसृष्वपि चाऽऽद्यासु श्लेष्मलिङ्गोच्छ्रयो भवेत्॥ १४॥

श्लेष्मला योनि पिच्छिल होती है, खुजली से युक्त होती है तथा अति शीतल होती है। पूर्व की चारों योनियों में अर्थात् अत्यानन्दा, कर्णिनी, चरणा अतिचरणा इन में कफ के सभी लक्षण होते हैं॥ १४॥

अथ सर्वदोषजमाह—**अनार्तवाऽस्तनी षण्ढी खरस्पर्शा च मैथुने।**
अतिकायगृहीतायास्तरुण्या अण्डिनी भवेत्॥१५॥

जिस में से रज न आता हो, तथा जिस स्त्री की स्तन अत्यन्त छोटे हों तथा मैथुन के समय स्पर्श में जो खरखरी या कर्कश प्रतीत हो उसे षण्ढी योनि कहते हैं॥ तरुणी स्त्री जब बड़े लिंगवाले पुरुष से मैथुन करे तो उस की योनि अण्डिनी कहाती है। अर्थात् अण्डे के समान बाहर लटक जाती है॥ १५॥

विवृता तु महायोनिः सूचीवक्त्राऽतिसंवृता।
सर्वलिङ्गसमुत्थाना सर्वदोषप्रकोपजा॥ १६॥

जिस योनि का मुंह अत्यन्त चौड़ा हो जाय उसे विवृता कहते हैं। जिस योनि का मुंह अति संवृत हो जाये अर्थात् अत्यन्त संकुचित होजाये उसे सूचीवक्त्रा कहते हैं। त्रिदोषिणी योनि में सभी दोषों के चिन्ह प्रगट होते हैं॥१६॥

चतसृष्वपि चाऽऽद्यासु सर्वलिङ्गनिदर्शनम्।
पञ्चासाध्या भवन्तीह योनयः सर्वदोषजाः॥ १७॥

पूर्व की चारों योनियों में अर्थात् अण्डी, अण्डिनी, विवृता और सूचीवक्त्रा में सभी दोषों का प्रकोप होजाता है। ये सर्वदोषज पांचों योनियें असाध्य होती हैं॥१७॥ इति योनिव्यापद्रोगनिदानम्॥

अथ योनिकन्दस्य निदानमाह—

दिवा स्वप्नादतिक्रोधाद्व्यायामादतिमैथुनात्।
क्षताच्च नखदन्ताद्यैर्वाताद्याः कुपिता मलाः॥ १॥

दिन में सोने से, अति क्रोध करने से, व्यायाम करने से, अति मैथुन करने से, नख, दांत, कांटे आदि के लगने से जो क्षत होजाये अर्थात् व्रण होजाये उस से वातादि दोष कुपित होकर ॥ १ ॥

पूयशोणितसंकाशं लकुचाकृतिसंनिभम् ।
जनयन्ति यदा योनौ नाम्ना कन्दं तु योनिजम् ॥ २ ॥

पीप तथा रक्त से युक्त बढलफल गोला योनि में उत्पन्न होजाता है उसे योनिकन्द रोग कहते हैं ॥ २ ॥

रूक्षं विवर्णं स्फुटितं वातिकं तं विनिर्दिशेत् ।
दाहरागज्वरयुतं विद्यात्पित्तात्मकं तु तम् ॥ ३ ॥

यदि वह कंद या गोला रूखा, विवर्ण, फटा हुआ सा हो तो वातिक योनिकन्द कहाता है । यदि उस में दाह हों, लाल रंग हो, शरीर में ज्वर भी उससे हो तो पित्तज योनिकन्द कहाता है ॥ ३ ॥

नीलपुष्पप्रतीकाशं कण्डूमन्तं कफात्मकम् ।
सर्वलिङ्गसमायुक्तं संनिपातात्मकं वदेत् ॥ ४ ॥

यदि उस का रंग नील के फूल के समान नीला हो तथा अन्दर खुजली होती हो तो उसे कफज योनिकन्द कहते हैं । जिसमें सभी रंग तथा सभी लक्षण मिलते हों उसे सर्वदोषजयोनिकन्द कहते हैं ॥ ४ ॥ इति योनिकन्दनिदानम् ॥

अथ योनिव्यापद्रोगाणां चिकित्सा ।

तत्र वन्ध्याचिकित्सा—आर्तवादर्शने नारी मत्स्यांन्सेवेत नित्यशः ।
काञ्जिकं च तिलान्माषानुदश्विच्च तथा दधि ॥१॥

जिस स्त्री को ऋतुधर्म न होता हो वह नित्य मछलियां खावे । कांजी पीवे, तिल, उड़द, उदश्वित अर्थात् मठा तथा दही पीवे ॥ १ ॥

पीतं ज्योतिष्मतीपत्रराजिकोग्रासनं त्र्यहम् ।
शीतेन पयसा पिष्टं कुसुमं जनयेद् ध्रुवम् ॥ २ ॥

माल कंगनी के पत्ते, राई, अजवायन तथा असन या बिजैसार इन सबको समभाग लेकर पीसकर शीतल जल से पीवें तो निश्चय से आर्त्तव आना आरम्भ हो जाता है ॥ २ ॥

सगुडः श्यामातिलानां क्वाथः प्रातः सुशीलितो नार्या ।
जनयति कुसुमं सहसा गतमपि सुचिरं निरातङ्कम् ॥ ३ ॥

काले तिलों का काढ़ा गुड़ मिलाकर प्रातःकाल निरन्तर पीवे तो बहुत देर से नष्ट हुआ २ आर्तव भी एकदम बिना कष्ट के आना आरम्भ हो जाता है ॥३॥

तिलशेलुकारवीणां क्वाथं पीत्वा नष्टरजा महिला ।
सगुडं शिशिरं त्रिदिनाज्जनयति कुसुमं न संदेहः ॥ ४ ॥

काले तिल, लसूडा, कालाजीरा या कलौंजी इनके क्वाथ को गुड मिलाकर शीतल करके स्त्री पीवे तो तीन दिन में रज आना निसन्देह शुरू हो जाता है ॥३॥

इक्ष्वाकुबीजदन्तीचपलागुडमदनकिण्वयावशूकैः।
सस्नुक्क्षीरैर्वर्तिर्योनिगता कुसुमसंजननी ॥ ५ ॥

इन्द्रायण के बीज, दन्तीमूल, पीपल; गुड, मैनफल, सुराबीज अर्थात् यीष्ट, (yeast) यवक्षार, थोहर का दूध इन सबको समभाग लेकर पीसकर बत्ती बना रखें। इसे योनि में देवें तो रज आने लगता है ॥ ५ ॥ इति बन्ध्याचिकित्सा।

अथ वन्ध्याया गर्भप्रदभेषजमाह—

बला सिता सातिबला मधूकं वटस्य शृङ्गं गजकेशरं च।
एतन्मधुक्षीरघृतैर्निपीय बन्ध्या सुपुत्रं नियतं प्रसूते ॥ १ ॥

श्वेतबला, अतिबला, महुआ, बड़ के अंकुर, नागकेसर असली, इन सबको समभाग लेकर पीसकर शहद तथा घी से मिलाकर दूध से पीवें तो बन्ध्या को भी गर्भधारण होकर उत्तम पुत्र को प्राप्ति होती है ॥ १ ॥

अश्वगन्धाकषायेण सिद्धं दुग्धं घृतान्वितम्।
ऋतुस्नाताऽङ्गना प्रातः पीत्वा गर्भं दधाति हि ॥ २ ॥

असगन्ध के क्वाथ से पकाया हुआ दूध तथा घी ऋतुस्नान करने के बाद प्रातःकाल नारी पीवे तो गर्भ अवश्य ठहर जाता है ॥ २ ॥

पुष्योद्धृतं लक्ष्मणाया मूलं दुग्धेन कन्यया।
पिष्टं पीत्वा ऋतुस्नाता गर्भं धत्ते न संशयः ॥ ३ ॥

पुष्य नक्षत्र में उखाड़े हुए लक्ष्मणा के मूल को दूध से पीसकर कन्या ऋतुस्नाता स्त्री को पिलावे तो गर्भधारण अवश्य होता है ॥ ३ ॥

कुरण्टमूलं धातक्याः कुसुमानि वटाङ्कुराः।
नीलोत्पलं पयोयुक्तमेतद्गर्भप्रदं ध्रुवम् ॥ ४ ॥

कुरण्ट अर्थात् कटसरैया की जड, धाय के फूल, बड़ के अंकुर, नीलाकमल इन सबको पीसकर दूध से पिलावें तो निश्चित गर्भ ठहरता है ॥ ४ ॥

याऽबला पिबति पार्श्वपिप्पलं जीरकेण सहितं हिताशना।
श्वेतया विशिखपुङ्खया युतं सा सुतं जनयतीह नान्यथा ॥ ५ ॥

जो स्त्री पारस पीपल की छाल और जीरे का चूर्ण मिलाकर श्वेत सरफोंका के साथ पीती है उसके पुत्र अवश्य उत्पन्न होता है यह बात अन्यथा नहीं ॥५॥

पत्रमेकं पलाशस्य पिष्ट्वा दुग्धेन गर्भिणी।
पीत्वा पुत्रमवाप्नोति वीर्यवन्तं न संशयः ॥ ६ ॥

ढाक के एक पत्ते को दूध से पीसकर जो गर्भवती स्त्री नित्य खावे तो उसके वीर्यवान पुत्र उत्पन्न होता है इसमें संशय नहीं। अर्थात् गर्भ ठहरने के बाद इस

योग को सेवन करें तो पुत्र उत्पन्न होता है कन्या नहीं होती ॥ ६ ॥

शूकरशिम्बीमूलं मध्यं वा दधिफलस्य सपयस्कम्।
पीत्वाऽथोभयलिङ्गीबीजं कन्यां न सूते स्त्री ॥ ७ ॥

शूकरशिम्बी अर्थात् सुअरासेवी या कोलशिम्बी (यदि शूकशिम्बी पाठ हो तो कौंच की जड़ लेनी चाहिये) की जड़ तथा कैथ का गूदा सबको दूध से मिलाकर खावें, लिङ्गिनी या पंचगुडिया के बीज भी साथ खावें तो पुत्र ही होगा कन्या नहीं उत्पन्न होगी ॥ ७ ॥

क्षीरेण श्वेतबृहतीमूलं नासापुटे पिबेत्।
पुत्रार्थं दक्षिणा नासा वामया कन्यकार्थिनी ॥ ८ ॥

श्वेत फूल की बड़ी कटेली की जड़ का दूध से पीसकर नाक के दक्षिण द्वार से पिलावें तो पुत्र उत्पन्न होता है, बायें द्वार से पिलायें तो कन्या होती है ॥ ८ ॥

लक्ष्मणा क्षीरसंयुक्ता नस्ये पाने प्रदाप्यताम्।
तेन साऽपि लभेद्गर्भं पुत्रो विद्याधरो भवेत् ॥ ९ ॥

लक्ष्मणा को दूध से मिलाकर नस्य दें तथा पिलावें तो बन्ध्या के भी गर्भ ठहरता है तथा विद्वान् पुत्र उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥

वामनाड्या भवेत्कन्या पुत्रो दक्षिणया भवेत्।
रक्तेऽधिके भवेत्कन्या पुत्रः शुक्रेऽधिके भवेत् ॥ १० ॥

वाम नाड़ी से गर्भ ठहरे तो कन्या होती है, दक्षिण नाड़ी से गर्भ ठहरे तो पुत्र उत्पन्न होता है। रक्त अधिक हो तो कन्या होती है, शुक्र अर्थात् पुरुष का वीर्य अधिक हो तो पुत्र उत्पन्न होता है ॥ १० ॥

शुक्रशोणितमिश्रेण भवेद्योऽसौ नपुंसकः।
एरण्डस्य तु बीजानि मातुलुंगस्य चैव हि ॥
सर्पिषा परिपिष्टानि पिबेद्गर्भप्रदानि च ॥ ११ ॥

वीर्य तथा रक्त के मिश्रण से अर्थात् समान २ भाग के मिलने से जो गर्भ उत्पन्न होता है वह नपुंसक होता है। एरण्ड के बीज, बिजौरे नीबू के बीज, समभाग लेकर घी से पीसकर पिलायें तो गर्भ ठहरता है ॥ ११ ॥ इति चक्रदत्तात्।

अथ लक्ष्मणानस्यम्—

लङ्काकारं लक्ष्मणायाश्च मूलं कण्ठे बद्धं सर्पिषा नस्ययोगात्।
पीत्वा सूते पुत्रमत्यन्तवीर्यं पश्चादन्यानप्यमन्दाङ्गयष्टिः ॥ १२ ॥

लंका के आकार की लक्ष्मणा की जड़ को कण्ठ में बांधें तथा घी से मिलाकर नस्य द्वारा पिलावें तो अत्यन्त पराक्रमी पुत्र की उत्पत्ति होती है तथा स्त्री का शरीर दुर्बल नहीं होता। तथा बाद में भी अन्य अनेक पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ १२ ॥

तिलतैलदुग्धफाणितदधिघृतमेकत्र पाणिना मथितम्।

पीतं सपिप्पलीकं जनयति पुत्रं परं महिला ॥ १३ ॥

तिलों का तेल, दूध, फाणित, दही, तथा घी सब को एकत्र कर हाथ से मथलें। इस में पिप्पली डालकर पिलावें तो स्त्री के उत्तम पुत्र उत्पन्न होता है॥१३

एकस्य मातुलुङ्गस्य बीजानि सकलान्यपि।
ऋत्वन्ते दुग्धपिष्टानि पीत्वाऽऽप्नोत्यबला सुतम् ॥ १४ ॥

एक बिजौरे नींबू के सभी बीजों को लेकर ऋतुकाल के अन्त में दूध से पीसकर पिलावें तो स्त्री के पुत्र उत्पन्न होता है ॥ १४ ॥

अथ फलघृतम्—मञ्जिष्ठा मधुकं कुष्ठं त्रिफला शर्करा बला।
मेदे पयस्या काकोली मूलं चैवाश्वगन्धजम् ॥ १ ॥

मंजीठ, मुलठ्ठी, कूठ, हरड़, बहेडा, आंवला, खांड, खिरैंटी, मेदा, महामेदा, क्षीरकाकोली, काकोली, असगंध की जड़ ॥ १ ॥

अजमोदा हरिद्रे द्वे प्रियंगुः कटुरोहिणी।
उत्पलं कुमुदं लाक्षा काकोल्यौ चन्दनद्वयम् ॥ २ ॥

अजमोदा अर्थात् अजवायन, हल्दी, दारुहल्दी, प्रियंगु, कुटकी, नीलाकमल, कुमुदनी, लाख, काकोली, क्षीरकाकोली, चंदन लाल, श्वेत चंदन ॥ २ ॥

एतेषां कार्षिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
शतावरीरसं क्षीरं घृताद्देयं चतुर्गुणम् ॥ ३ ॥

इन में से प्रत्येक द्रव्य एक २ कर्ष लेकर कल्क कर के, एक प्रस्थ गौ के घी में डालकर पकावे। शतावर का रस ४ प्रस्थ तथा गौ का दूध ४ प्रस्थ डाले॥३॥

सर्पिरेतन्नरः पीत्वा स्त्रीषु नित्यं वृषायते।
पुत्राञ्जनयते वीरान्मेधाढ्यान्प्रियदर्शनान् ॥ ४ ॥

सब को मिलाकर घी पकालें। इस घी को पीकर मनुष्य स्त्रियों को अच्छी प्रकार नित्य प्रसन्न कर सकता है। तथा इस के सेवन से वीर मेधावी तथा सुन्दर पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ ४ ॥

या चैवास्थिरगर्भा स्यात्पुत्रं वा जनयेन्मृतम्।
अल्पायुषं वा जनयेद्या च कन्यां प्रसूयते ॥ ५ ॥

जो नारी अस्थिर गर्भा हो अर्थात् जिस के गर्भ स्थिर न रहता हो, अथवा मरे हुए पुत्र उत्पन्न होते हों। अथवा अल्पायु वाले पुत्र उत्पन्न होते हों, अथवा कन्यायें ही उत्पन्न होती हों ॥ ५ ॥

योनिरोगे रजोदोषे परिस्रावे च शस्यते।
प्रजावर्धनमायुष्यं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ ६ ॥

तथा योनिरोग में, रजोदोष में, परिस्रावे अर्थात् प्रदर आदि में भी यह घी प्रशस्त माना जाता है। इस घी के सेवन से प्रजावृद्धि होती है, आयुष्य वृद्धि होती है,

तथा सब प्रकार के ग्रहदोष नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

नाम्ना फलघृतं ह्येतदश्विभ्यां परिकीर्तितम् ।
अनुक्तं लक्ष्मणामूलं क्षिपन्त्यत्र चिकित्सकाः ॥ ७ ॥

यह फलघृत नामक घी अश्विनीकुमारों ने पहले पहल निकाला था। इस घी में यद्यपि लिखा नहीं गया है तो भी लक्ष्मणा की जड़ वृद्ध चिकित्सक डालते हैं ॥ ७ ॥

जीवद्वत्सैकवर्णाया घृतं त्वत्र प्रयुज्यते ।
आरण्यगोमयेनेह वह्निज्वाला च दीयते ॥ ८ ॥

एक रंगवाली तथा जीवित पुत्रवाली गौ का घी ही इस में प्रयुक्त करना चाहिये। जंगली उपलों से आंच देनी चाहिये ॥ ८ ॥ इति बन्ध्याचिकित्सा ॥

अथ गर्भनिवारणम्—पिप्पलिविडङ्गटङ्कणसमचूर्णं या पिबेत्पयसा ।
ऋतुसमये न हि तस्या गर्भः संजायते क्वापि ॥ १ ॥

पिप्पली, वायविडंग, सुहागा इन सब को समभाग लेकर चूर्ण कर के दूध के साथ ऋतुकाल में जो स्त्री पी लेवे उस के गर्भ कभी नहीं ठहरता है ॥ १ ॥

आरनालपरिपेषितं त्र्यहं या जपाकुसुममत्ति पुष्पिणी ।
सत्पुराणगुडमुष्टिसेविनी सा दधाति नहि गर्भमङ्गना ॥ २ ॥

कांजी में पीसकर जपा अर्थात् लाल गुडहल के फूल को जो स्त्री ऋतु के दिनों में खाती है तथा पुराने गुड को एक पलभर प्रतिदिन खाती है तो उस के गर्भ नहीं ठहरता है ॥ २ ॥

तैलाविलं सैन्धवखण्डमादौ निधाय रण्डा निजयोनिमध्ये ।
नरेण सार्धं रतिमातनोति या सा न गर्भं लभते कदाचित् ॥ ३ ॥

आरम्भ में सेंधानमक के टुकड़ों को तेल से भिगोकर अपनी योनि के अंदर जो रण्डी स्त्री रख लेती है उस के बाद पुरुष से मैथुन करती है तो उसे गर्भ कभी नहीं ठहरता है ॥ ३ ॥

तण्डुलीयकमूलानि पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा ।
ऋत्वन्ते तु त्र्यहं पीत्वा वन्ध्याः कुर्वन्ति योषितः ॥ ४ ॥

चौलाई की जड़ों को चावलों के जल से पीसकर ऋतु के अन्तकाल में जो स्त्री ३ दिन पी लेती है तो वह बन्ध्या होजाती है ॥ ४ ॥

धूपिते योनिरन्ध्रे तु निम्बकाष्ठैश्च युक्तितः ।
ऋत्वन्ते रमते या स्त्री न सा गर्भमवाप्नुयात् ॥ ५ ॥

नीम की लकड़ी से योनि के छिद्र को ऋतु के अन्त में युक्तिपूर्वक धूप देकर जो स्त्री मैथुन करती है उसे गर्भ नहीं ठहरता है ॥ ५ ॥

तालीसगैरिके पीते बिडालपदमात्रके ।
शीताम्बुना चतुर्थेऽह्नि वन्ध्या नारी प्रजायते ॥ ६ ॥

तालीसपत्र तथा गेरू दोनों समभाग मिलाकर ऋतुकाल के बाद चौथे दिन एक कर्षभर खावें और ऊपर से शीतल जल पीवें तो स्त्री बन्ध्या होजाती है ॥६॥

ग्राह्यं कृष्णचतुर्दश्यां धत्तूरस्य च मूलकम्।
कटौ बद्ध्वा रमेत्कान्तं न गर्भः संभवेत्कचित् ॥ ७ ॥

धतूर की जड़ कृष्ण चतुर्दशी को लेकर कमर से बांधकर जो स्त्री पति से मैथुन करे तो गर्भ कभी नहीं ठहरता ॥ ७ ॥

मुक्तेन लभते गर्भं पुरा नागार्जुनोदितम्।
तन्मूलचूर्णं योनिस्थं न गर्भः संभवेत्कचित् ॥ ८ ॥

जब उस को कमर से खोल देगी तो गर्भ ठहर जायेगा ऐसा नागार्जुन ने कहा है। यदि धतूरे की जड़ का चूर्ण योनि में डाला जाये तो गर्भ कभी नहीं ठहरता ॥ ८ ॥ इति गर्भनिवारणम् ॥

अथ गर्भपातनविधिः—**गृञ्जनबीजं टङ्कत्रितयं तावच्च दाडिमीमूलम्।**
तुवरीटङ्कद्वितयं सिन्दूरं टङ्कयुगुलं च ॥ १ ॥

गाजर के बीज ३ टङ्क, अनार की जड़ ३ टङ्क, अरहर की दाल वा राई २ टंक, सिन्दूर २ टंक ॥ १ ॥

संमर्द्य खल्वमध्ये तोयेनैतन्निपीय गर्भवती।
रण्डा योषिद्गर्भं वेश्या वा पातयत्याशु ॥ २ ॥

इन सब को पीसकर पानी से मिलाकर यदि गर्भवती स्त्री पी लेवे तो गर्भ गिर जाता है। रांड स्त्री तथा वेश्या स्त्री इस से गर्भ को शीघ्र गिरा सकती है ॥२॥

निर्गुण्डीद्रवसंपिष्टं चित्रमूलं मधुप्लुतम्।
कर्षं पीत्वा स्रवत्याशु गर्भं रण्डाकुलोद्भवम् ॥ ३ ॥

चीते की जड़, संभालु के स्वरस में पीसकर शहद मिलाकर एक कर्षभर पीलें तो रण्डियों के गर्भ ठहरा हुआ हो तो भी इस से गिर जाता है ॥ ३ ॥

काण्डमेरण्डपत्रस्य योनावष्टाङ्गुलं क्षिपेत्।
चतुर्मासोद्भवो गर्भः स्रवत्येव हि तत्क्षणात् ॥ ४ ॥

एरण्ड के पत्तों की डंडी को आठ उंगल तक योनि में प्रवेश करा देवे तो चार महीने का गर्भ भी हो तो भी तत्क्षण स्रवित होजाता है ॥ ४ ॥

देवालये तु यच्चूर्णं कर्षैकं तोयपेषितम्।
पिबेद्गर्भवती नारी गर्भः स्रवति तत्क्षणात् ॥ ५ ॥

देवमन्दिर के चूने को एक कर्षभर लेकर जल से पीसकर गर्भवती नारी को पिलावें तो तत्क्षण गर्भस्राव होजाता है ॥ ५ ॥

आलोड्य काञ्जिकैर्घोटीपुरीषं वस्त्रगालितम्।
सासिन्धूग्रासुरीतैलाविषमागतगर्भनुत् ॥ ६ ॥

घोड़ी की लीद को कांजी में घोलकर वस्त्र से छान ले फिर सेंधानमक, अजवायन, राई, तैल तथा शोधित विष मिलाकर पिलायें तो ठहरे हुए गर्भ को नष्ट कर देता है ॥ ६ ॥ इति गर्भपातनम् ॥

अथावशिष्टयोनिव्यापद्रोगाणां चिकित्सा—

अथ वातयोनिचिकित्सामाह–तासु योनिषु चाऽऽद्यासु स्नेहादिक्रम इष्यते।
बस्त्यभ्यङ्गपरीषेकप्रलेपाः पिचुधारणम् ॥ १ ॥

आद्य वातज योनियों में स्नेहादि क्रम करना चाहिये। बस्ति, तेल की मालिश परिषेक, प्रलेप तथा पिचुधारण अर्थात् फाहे अन्दर धारण करना लाभदायक है॥१॥

नतवार्ताकिनीकुष्ठसैन्धवामरदारुभिः।
तिलतैलं पचेन्नारी पिचुं तस्य विधारयेत् ॥ २ ॥

तगर, बड़ी कटेली, कूठ, सेंधानमक, देवदारु, इन सबको समभाग लेकर कल्क करके तिल का तेल पका लेवे। इसके पिचुको सदा धारण करे तो।।२॥

विप्लुतायां सदा योनौ व्यथा तेन प्रशाम्यति।
वातलां कर्कशां स्तब्धामल्पस्पर्शां तथैव च ॥ ३ ॥

बिप्लुता योनि की व्यथा शान्त होती है। वातला, कर्कश, स्तब्ध तथा अल्प स्पर्श योग्य योनि को ॥ ३ ॥

कुम्भीस्वेदैरुपचरेदन्तर्वेश्मनि संवृते।
धारयेद्वा पिचुं योनौ तिलतैलस्य सा सदा ॥ ४ ॥

कुम्भी स्वेद एक बन्द कमरे में रखकर देना चाहिये॥ अथवा सदा ही योनि में तिल के तैल का पिचु धारण करना चाहिये ॥ ४ ॥

रास्नाश्वगन्धावृषकैर्योनिशूलहरं पयः।
गुडूचीत्रिफलादन्तीक्वाथैश्च परिषेचनम् ॥ ५ ॥

रास्ना, असगन्ध, बांसा इनका दूध पकाकर पिलावें तो योनि शूल नष्ट होता है। गुडूची, त्रिफला तथा दन्तीमूल इनके क्वाथ से योनि को सिंचन करें तो भी शूल नाश होता है ॥ ५ ॥

बिल्वमार्कवजं बीजकल्कं मद्येन पाययेत्।
तेन योनिगतं शूलमाशु शाम्यति योषिताम् ॥ ६ ॥

बिल का गूदा तथा भांगरे के बीज दोनों को समभाग लेकर मद्य से पिलावें तो इससे स्त्रियों का योनि का शूल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥

उपकुञ्चिकां पिप्पलीं च मदिरां लाभतः पिबेत्।
सौवर्चलेन संयुक्तां योनिशूलनिवारणम् ॥ ७ ॥

काला जीरा, पिप्पली, दोनों का कल्क करके सौंचल नमक मिलाकर यथेष्ट मदिरा के साथ पिलावें तो योनिशूल नष्ट होता है ॥ ७ ॥

अथ पित्तयोनिचिकित्सामाह—पित्तलानां च योनीनां सेकाभ्यङ्गपिचुक्रियाः।
शीताः पित्तहराः कार्याः स्नेहनार्थं घृतानि च ॥८॥

पित्तज योनियों में अभिषिञ्चन, अभ्यङ्ग तथा पिचु धारण करना चाहिये। शीतल तथा पित्तनाशक क्रियायें करनी चाहिये तथा स्नेहन के लिये घी देने चाहियें॥

प्रस्रंसिनीं घृताभ्यक्तां क्षीरस्विन्नां प्रवेशयेत्।
विधायवेसवारेण ततो बन्धं समाचरेत् ॥ ९ ॥

प्रस्रंसिनी योनि को घी से चिकना करके दूध की भाप का स्वेद देकर अन्दर प्रवेश करावे। फिर वेसवार सेवन कराकर नीचे लंगोटा आदि से बंधवा देवे ॥९॥

अथ वेसवारः—शुण्ठीमरीचकृष्णाभिधान्यकाजाजिदाडिमैः।
पिप्पलीमूलसंयुक्तैर्वेसवारः स्मृतो बुधैः ॥ १ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, धनियां, जीरा, अनारदाना, पिप्पलामूल इन सबको मिलाकर रखें। इस मसाले को वेसवार कहते हैं ॥ १ ॥

धात्रीरसं सितायुक्तं योनिदाहे पिबेत्सदा।
सूर्यक्रान्ताभवं मूलं पिबेद्वा तण्डुलाम्बुना ॥ २ ॥

योनिदाह में आंवलों के स्वरस में खांड मिलाकर पीवे। अथवा सूर्यक्रान्ता अर्थात् सूर्यमुखी की जड़ को चावलों के धोवन से पीवे ॥ २ ॥

योन्यां तु पूयस्राविण्यां शोधनद्रव्यनिर्मितैः।
सगोमूत्रैः सलवणैः पिण्डैः संपूरणं हितम् ॥ ३ ॥

जिस योनि में से पीप आता हो उसे शोधन द्रव्यों से बने हुए, गोमूत्र तथा लवण से युक्त पिण्डों से पूरण करना लाभदायक होता है ॥ ३ ॥

पिचवश्च घृताभ्यक्ताश्चन्दनाम्भःसमुत्थिताः।
योनौ स्थाप्याः स्त्रिया दाहकृच्छ्रपाकप्रशान्तये ॥ ४ ॥

चन्दन के घिसे हुए जल से भिगोये हुए और घी से चिकने किये हुए रुई के पिचु योनि में रखकर धारण करने से दाह, मूत्रकृच्छ्र तथा पकना प्रशान्त होता है ॥ ४ ॥

कफजयोनिचिकित्सा—योन्यां बलासजुष्टायां सर्वं रूक्षोष्णमौषधम्।
तैलं सीधु यवान्नं च पथ्यारिष्टं च योजयेत् ॥५॥

कफ से दूषित हुई २ योनि में सब औषध रूखी तथा गरम करनी चाहियें। तेल, सीधु, जौ के भोजन तथा अभयारिष्ट का प्रयोग करना चाहिये ॥ ५ ॥

गुडूचीत्रिफलादन्तीक्वथितोदकधारया।
योनिं प्रक्षालयेत्तेन ततः कण्डूः प्रशाम्यति ॥ ६ ॥

गिलोय, त्रिफला, दन्ती इन सबको बनाये हुए क्वाथ की जलधारा से योनि को धोवे (डूश करने से) तो योनि की खुजली नष्ट होती है ॥ ६ ॥

मुद्गपुष्पं सखदिरं पथ्या जातीफलं तथा।
वृकीपूगं च संचूर्ण्य वस्त्रपूतं क्षिपेद्भगे।
योनिर्भवति संकीर्णा न स्रवेच्च जलं ततः ॥ ७ ॥

मूंग के फूल, खैर या कत्था, हरड़, जायफल, पाठा, सुपारी इन सब को अच्छी प्रकार चूर्ण करके वस्त्र में से छान करके भग में डालें ॥ ७ ॥

कपिकच्छूभवं मूलं क्वाथयेद्विधिनाऽम्भसा।
योनिः संकीर्णतां याति क्वाथेनानेन धावनात् ॥ ८ ॥

इससे योनि संकुचित हो जाती है तथा उस में से जल नहीं बहता रहता। कौंच की जड़ का क्वाथ विधिपूर्वक करके ॥ ८ ॥

पिप्पल्या मरिचैर्माषैः शताह्वाकुष्ठसैन्धवैः।
वर्तिस्तुल्या प्रदेशिन्या धार्या योनिविशोधिनी ॥ ९ ॥

योनि को धोवे तो योनि इससे संकुचित हो जाती है। पीपली, मिरच, उड़द, सौंफ, कूठ, सेंधानमक इन सबको पीसकर ॥ ९ ॥

सुरामण्डोत्थितो धार्यः पिचुर्योनौ कफात्मनि।
कण्डूपैच्छिल्यसंस्रावशैथिल्यविनिवृत्तये ॥ १० ॥

प्रदेशिनी उंगली के समान बत्ति बनाकर योनि में धारण की जावे तो योनि शुद्ध होती है। कफयोनि में सुरा के ऊपर के पतले भाग में भिगोकर पिचु धारण करना चाहिये इससे कण्डू, पिच्छिलता, संस्राव, शिथिलता इन सबकी निवृत्ति होती है॥१०

सुगन्धानां पदार्थानां कल्कचूर्णैः शृतैः कृतः।
योनौ दौर्गन्ध्यशमनः पूयपैच्छिल्यभाजि च ॥ ११ ॥

सुगन्धित पदार्थों के कल्क, चूर्ण तथा क्वाथों से योनि को विधिपूर्वक धोवें तो दुर्गन्ध नाश होता है, पीप तथा पिच्छिलता नष्ट होती है ॥ ११ ॥

सन्निपातजयोनिचिकित्सा–संनिपातसमुत्थायां कार्या योन्यां सदा क्रियाः।
साधारणा दशाङ्घ्रीश्रीमदाक्वाथपिचुर्हितः ॥ १२ ॥
जीरकद्वितयं कृष्णा सुषवी सुरभिर्वचा।
वासकं सैन्धवं चापि यवक्षारो यवानिका ॥ १३ ॥

सन्निपातज योनि में सदा सामान्य त्रिदोष नाशक क्रिया करनी चाहिये। दशमूल तथा मुण्डी बूटी के क्वाथ का पिचु धारण करने से सन्निपातज योनि में लाभ होता है। जीरा श्वेत, काला जीरा, पिप्पली, कालाजीरा या करेला (सुषवी क्षुद्रकारवेल्ली, जीरके च) राल वा जायफल, बच ॥ १३ ॥

एषां चूर्णं घृते किंचिद्भृष्ट्वा खण्डेन मोदकम्।
कृत्वा खादेद्यथावह्नि योनिरोगाद्विमुच्यते ॥ १४ ॥

बांसा, सेंधानमक, यवक्षार, अजवायन इन सबको समभाग लेकर चूर्ण

करके कुछ घी में भूनकर खांड मिलाकर मोदक बना लेवे। इन मोदकों को अग्नि के अनुसार खावें तो योनिरोग से रोगिणी छूट जाती है ॥ १४ ॥

मूषकतैलम्—मूषकक्वाथसंसिद्धतिलतैलकृतः पिचुः।
नाशयेद्योनिरोगांस्तान्धृतो योनौ न संशयः ॥ १५ ॥

चूहे के क्वाथ से तिल का तैल पका लेवे। उस तेल का पिचु योनि में रखें तो सभी योनिरोग नष्ट होते हैं ॥ १५ ॥

अथ त्रिफलादिघृतम्ः—त्रिफलां द्वौ सहचरौ गुडूचीं सपुनर्नवाम्।
शुकनासां हरिद्रे द्वे रास्नामेदाशतावरीः ॥१॥

हरड़, बहेड़ा, आंवला, पीलीझिण्टी, नीलीझिण्टी, गिलोय, पुनर्नवा, कौआ ठोंडी, हल्दी, दारुहल्दी, रास्ना, मेदा, शतावर ॥ १ ॥

कल्कीकृत्य घृतप्रस्थं पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे।
तत्सिद्धं पाययेन्नारीं योनिरोगप्रशान्तये ॥ २ ॥

इन सबको कल्क करके चौगुने गौ के घी और घी से चौगुने गौ के दूध में मिलाकर घी पका लेवे। इस घी को पिलाने से योनिरोग नष्ट हो जाते हैं ॥२॥

अथ योनिकन्दस्य चिकित्सा—गैरिकाम्रास्थिजठररजन्यञ्जनकट्फलाः।
पूरयेद्योनिमेतेषां चूर्णैः क्षौद्रसमन्वितैः ॥ १ ॥

गेरु, आम की गुठली, पुरानी हल्दी, अंजन अर्थात् सौवीरांजन वा रसौंत, कायफल, इन सबके चूर्ण में शहद मिलाकर इससे योनि को भर दें तो योनिकन्द का नाश होता है ॥ १ ॥

त्रिफलायाः कषायेण सक्षौद्रेण च सेचयेत्।
प्रमदा योनिकन्देन व्याधिना परिमुच्यते ॥ २ ॥

त्रिफला के क्वाथ में शहद मिलाकर योनि में सिंचन करें तो योनिकन्दरोग से स्त्री छूट जाती है ॥ २ ॥

मूषकाद्यंतैलम्—आखोर्मांसं सपदि बहुधा सूक्ष्मखण्डीकृतं त-
त्तैले पाच्यं द्रवति नियतं यावदेतेन सम्यक्।
तत्तैलाक्तं वसनमनिशं योनिभागे दधाना
सत्यं व्रीडाजनकमबला योनिकन्दं निहन्ति ॥ ३ ॥

चूहे को मारकर शीघ्र ही सूक्ष्म २ खण्ड करके तेल में डालकर पकावें जब पकते २ गल जावे तो उतारकर तेल को छान लेवे। उस तेल से वस्त्र को भिगोकर योनि में रात दिन रखे तो लज्जाकारक योनिकन्दरोग को यह तेल नष्ट करता है ॥ ३ ॥ इति योनिकन्दचिकित्सा। इति योनिरोगाधिकारः ॥

इति हरद्वारीय गुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेणायुर्वेद-शास्त्रिणा लवपुरीय श्रीमद्दयानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीय वैद्यकविराजोपाधिधारिणा

राजयक्ष्मचिकित्सकेन जलचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योगरत्नाकरस्य रत्नगर्भानाम्निटीकायां योनिरोगचिकित्सा समाप्ता।

अथ स्त्रीगर्भरोगनिदानम्।

तत्र गर्भस्य स्रावपातयोर्निदानमाह—

भयाभिघातात्तीक्ष्णोष्णपानाशननिषेवणात्।
गर्भे पतति रक्तस्य सशूलं दर्शनं भवेत्॥ १॥

भय से, चोट आदि लगने से, तीक्ष्ण गरम पदार्थों के खाने पीने तथा सेवन करने से, गर्भपात होने की संभावना होजाती है। उस समय पहले पहल खून का शूलसहित दर्शन होता है अर्थात् पीड़ा के साथ खून आने लगता है॥१॥

अथ स्रावपातयोरवधिमाह—**आ चतुर्थात्ततो मासात्प्रस्रवेद्गर्भविद्रवः।**
ततः स्थिरशरीरस्य पातः पञ्चमषष्ठयोः॥२॥

चौथे मास तक गर्भ का स्राव कहाता है, क्योंकि तब तक गर्भ कुछ द्रव अवस्था में होता है। परंतु ५वें मास और छठें मास में गर्भपात कहाता है क्योंकि तब शरीर कुछ स्थिर होता है॥ २॥

अथ गर्भपातस्य दृष्टान्तं दर्शयति—

गर्भोऽभिघातविषमाशनपीडनाद्यैः पक्वं द्रुमादिव फलं पतति क्षणेन॥१

अभिघात अर्थात् चोट आदि के लगने से, विषम भोजन से, पीड़न अर्थात् दबाने आदि से गर्भ क्षणभर में उसी प्रकार से गिर जाता है जिस प्रकार से चोट आदि के लगने से पका हुआ फल वृक्ष पर से गिर पड़ता है॥ १॥ इति गर्भस्रावपातयोर्निदानं माधवात्॥

अथ भावप्रकाशाद्गर्भपातस्योपद्रवानाह—

प्रस्रंसमाने गर्भे स्याद्दाहः शूलश्च पार्श्वयोः।
पृष्ठे रुक्प्रदरानाहौ मूत्रसङ्गश्च जायते॥ १॥

गर्भ के स्राव होने के समय दाह होता है तथा पार्श्वों में शूल होता है। पीठ में पीड़ा होती है, प्रदर होता है, आनाह होता है तथा मूत्र रुक जाता है॥१॥

अथ गर्भस्य स्थानान्तरगमने चोपद्रवानाह—

स्थानात्स्थानान्तरं तस्मिन्प्रयात्यपि च जायते।
आमपक्वाशयादौ तु क्षोभः पूर्वेऽप्युपद्रवाः॥ १॥

जब एक स्थान से दूसरे स्थान पर गर्भ जाता है तब भी आमाशय तथा पक्वाशय में क्षोभ पैदा होता है तथा पूर्व के उपद्रव भी उत्पन्न होजाते हैं॥१॥

प्रसवोचिते काले यथा मूढो गर्भो भवति तदाह॥

प्रसवोचितकाल में जैसा मूढगर्भ होता है वैसा आगे लिखते हैं॥

तत्र मूढगर्भस्य निदानसंप्राप्तिपूर्वकं सामान्यं लक्षणमाह—

मूढः करोति पवनः खलु मूढगर्भं
शूलं च योनिजठरादिषु मूत्रसङ्गम्।
भुग्नोऽनिलेन विगुणेन ततः स गर्भः
सङ्ख्यामतीत्य बहुधा समुपैति योनिम् ॥ १ ॥

पवन अर्थात् वायु मूढ होकर अर्थात् बिगड़ कर गर्भ को भी मूढ कर देता है, और योनि पेट आदि में शूल को कर देता है। तथा मूत्र को भी रोक देता है। फिर वह वायु से टेढा हुआ २ गर्भ अनेक प्रकार से योनि को प्राप्त होता है॥१

तत्राष्टौ प्रकारानाह—

द्वारं निरुद्धशिरसा जठरेण कश्चित्कश्चिच्छरीरपरिवर्तनकुब्जदेहः।
एकेन कश्चिदपरस्तु भुजद्वयेन तिर्यग्गतो भवति कश्चिदवाङ्मुखोऽन्यः

कोई मूढगर्भ तो सिर के बल नीचे आकर योनिद्वार को रोक लेता है, कोई पेट से ही पहले नीचे आकर योनिद्वार को रोक लेता है, कोई शरीर के परिवर्तन से कुबड़ी देह वाला होकर योनि में आ फंसता है। कोई एक भुजा से, कोई दो भुजा से, कोई तिरछा होकर, कोई मुख नीचे किये हुए योनिद्वार में आते हैं ॥ १ ॥

पार्श्वापवृत्तिगतिरेति तथैव कश्चिदित्यष्टधा भवति गर्भगतिः प्रसूतौ २

कोई पार्श्वों के भंग से विगुण गति होकर अर्थात् पार्श्व से झुककर योनिद्वार में आता है इस प्रकार प्रसव के समय आठ प्रकार की गर्भ की गतियां होती हैं २

सुश्रुतस्त्वष्टौ प्रकारान्तराण्याह—

कश्चिद्द्वाभ्यां सक्थिभ्यां योनिमुखं प्रपद्यते ॥ १ ॥

कोई मूढगर्भ दोनों सक्थियों अर्थात् जांघों से पहले योनिद्वार में पहुंचता है ॥१॥

कश्चिदाभुग्नैकसक्थिरितरेण सक्थ्ना ॥ २ ॥

कोई मूढगर्भ एक जांघ सीधी और एक जांघ मुड़ी हुई रखकर योनि मुख में आता है ॥ २ ॥

कश्चिदाभुग्नसक्थिशरीरः स्फिग्देशेन तिर्यग्गतः ॥ ३ ॥

कोई मूढगर्भ जांघ तथा शरीर मोड़कर स्फिग् देश अर्थात् चूतड़ से तिरछा होकर योनिद्वार से निकलता है ॥ ३ ॥

कश्चिदुदरपार्श्वपृष्ठानामन्यतमेन योनिद्वारं पिधायावतिष्ठते॥४॥

कोई मूढगर्भ पेट, पार्श्व तथा पीठ इन में से किसी अंग से योनिद्वार को प्राप्त होता है और योनिमार्ग को रोककर रहता है ॥ ४ ॥

अन्तःपार्श्वापवृत्तशिराः कश्चिदेकेन बाहुना ॥ ५ ॥

कोई मूढगर्भ अन्दर को पार्श्व करके सिर को उलटा कर एक बाहु से ही योनिद्वार से निकलता है ॥ ५ ॥

कश्चिदाभुग्नशिरा बाहुद्वयेन ॥ ६ ॥

कोई सिर को टेढा करके दोनों बाहुओं से योनिद्वार को आता है ॥ ५ ॥

कश्चिदाभुग्नमध्यो हस्तपादशिरोभिः ॥ ७ ॥

कोई मूढगर्भ मध्यभाग में से टेढा होकर हाथ पैर तथा सिर से योनिद्वार को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

कश्चिदेकेन सक्थ्ना योनिद्वारं प्रतिपद्यतेऽपरेण पायुमिति ॥ ८ ॥

कोई एक जांघ से योनिद्वार को आता है दूसरी जांघ से गुदा के द्वार को रोक लेता है ॥ ८ ॥

अथापराश्चतस्रो गतीराह—

संकीलकः प्रतिखुरः परिघोऽथ बीज-
स्तेषूर्ध्वबाहुचरणैः शिरसा च योनौ।
सङ्गी च यो भवति कीलकवत्स कीलो
दृश्यैः खुरैः प्रतिखुरः स हि कायसङ्गी ॥
गच्छेद्भुजद्वयशिराः स च बीजकाख्यो
योनौ स्थितः स परिघः परिघेण तुल्यः ॥ १ ॥

संकीलक, प्रतिखुर, परिघ, बीज ये चार गतियें और होती हैं। इन में से एक गति यह होती है कि बाहु, पैर तथा सिर ऊपर की ओर होते हैं तथा वह कील की तरह आकर योनि में फंस जाता है उसे संकीलक या कीलक कहते हैं। दृश्य खुर अर्थात् हाथ पैरों से योनि को जाता है और इससे भी शरीर रुक जाता है इसे प्रतिखुर कहते हैं। जो दो भुजाओं तथा सिर से बाहर निकलना चाहे उसे बीजक कहते हैं। जो योनि में परिघ अर्थात् किवाड़ लगने के डंडे (कुण्डे के साथ डंडा सा किवाड़ बन्द करने को लगाया होता है) के समान आकर तिरछा अड़ जावे उसे परिघ कहते हैं ॥ १ ॥

अथ परिघमाह। परिघस्य लक्षणं भोजेऽपि पठ्यते तद्यथा—

योनिमावृत्य यस्तिष्ठेत्परिघो गोपुरं यथा।
तथाऽन्तर्गर्भमायान्तं विद्यात्परिघसंज्ञितम् ॥ १ ॥

जो मूढगर्भ योनि को इस प्रकार से घेरे रहे जैसे परिघ या किवाड़ बन्द करने का डंडा गोपुर अर्थात् बड़े दरवाजे को तिरछा बन्द करके रहता है। उसी प्रकार से जो अन्दर वा गर्भ योनि में आवे उसे परिघ कहते हैं ॥ १ ॥

अथासाध्यमूढगर्भगर्भिण्योर्लक्षणमाह—

अपविद्धशिरा या तु शीताङ्गी निरपत्रपा।
नीलोद्धतशिरा हन्ति सा गर्भं स च तां तथा ॥ १ ॥

जो सिर धारण करने में समर्थ न हो अथवा जिसका सिर झुक गया हो जो शीतल अंगों वाली हो, जो निर्लज्ज हो गई हो जिसके शरीर पर नीली २ शिरायें उठ आई

हों, ऐसी गर्भवती स्त्री गर्भ को नष्ट कर देती है तथा वह मरा हुआ गर्भ उसको मार देता है ॥ १ ॥

अथ मृतस्य मूढगर्भस्य प्रतिपाद्यत्वात्कर्षणार्थं लक्षणमाह—

गर्भास्पन्दनमावीनां प्रणाशः श्यावपाण्डुता।
भवेदुच्छ्वासपूतित्वं शूलश्चान्तर्मृते शिशौ ॥ १ ॥

बच्चा यदि अन्दर मर जावे तो गर्भ स्पन्दन नहीं होता है अर्थात् गर्भ फड़फड़ाता नहीं, प्रसव की पीड़ाओं का अभाव हो जाता है अथवा "आवी" अर्थात् बार २ मूत्र का आना तथा कफ थूकना आदि चिन्हों का नाश हो जाता है, शरीर का रंग श्याम तथा पाण्डु वर्ण का हो जाता है तथा जो सांस बाहर को निकलता है उसमें सड़ी हुई बदबू आती है। तथा शरीर फूल जाता है वा सूज जाता है१

अथ गर्भस्य मरणहेतुमाह—

मानसागन्तुभिर्मातुरुपतापैः पृथग्विधैः।
गर्भो व्यापद्यते कुक्षौ व्याधिभिश्च प्रपीडितः ॥ १ ॥

भिन्न २ प्रकार के मानस तथा आगन्तुक दुःखों से माता के दुःखी होने से तथा रोगों के कारण दुखी होने से गर्भ गर्भाशय में ही मर जाया करता है ॥१॥

अथापरमसाध्यगर्भिणीलक्षणमाह—

योनिसंवरणं सङ्गः कुक्षौ मक्कल्ल एव च।
हन्युः स्त्रियं मूढगर्भो यथोक्ताश्चाप्युपद्रवाः ॥ १ ॥

जब योनि संवरण रोग हो जाता है, कुक्षि अर्थात् गर्भाशय में गर्भ आसक्त हो जाता है अर्थात् फंस जाता है और निकल नहीं सकता है तथा मक्कल शूल अर्थात् गन्दे खून तथा वायु से हुआ २ प्रसूता का शूल, इन सब से युक्त मूढगर्भ स्त्री को मार देता है। तथा आक्षेपक श्वास आदि उपद्रव भी स्त्री को मार डालते हैं ॥ १ ॥

अथ योनिसंवरणं रोगमाह—वातलान्यन्नपानानि ग्राम्यधर्मं प्रजागरम्।
अत्यर्थं सेवमानाया गर्भिण्या योनिमार्गगः ॥२॥
मातरिश्वा प्रकुपितो योनिद्वारस्य संवृतिम्।
कुरुते रुद्धमार्गत्वात्पुनरन्तर्गतोऽनिलः ॥ ३ ॥

वातकारक अन्नपान सेवन करने से, मैथुन करने से, रात को जागने से, इन सब बातों को अत्यन्त सेवन करने से गर्भिनी स्त्री के योनिमार्ग में विचरने वाला वायु कुपित होकर योनिद्वार को संवृत अर्थात् बन्द कर देता है। मार्ग के रुक जाने से फिर अन्दर गई हुई वायु ॥ ३ ॥

निरुणद्ध्याशयद्वारं पीडयन्गर्भसंस्थितम्।
निरुद्धवदनोच्छ्वासो गर्भश्चाऽऽशु विपद्यते ॥ ४ ॥

गर्भाशय के द्वार को बन्द कर देती है और गर्भस्थिति को पीड़ित कर देती

है। और तब गर्भ का मुंह तथा उच्छ्वास रुक जाने से गर्भ शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

उच्छ्वासरुद्धहृदयां नाशयत्यथ गर्भिणीम्।
योनिसंवरणं नाम व्याधिमेनं प्रचक्षते॥
अन्तकप्रतिमं घोरं नाऽऽरभेत चिकित्सितुम्॥ ५॥

उच्छ्वास से हृदय रुक जाने पर गर्भिणी भी मर जाती है। इसे योनिसंवरण नामक रोग कहते हैं। यह रोग मृत्यु के समान भयंकर होता है। इसकी चिकित्सा न करे॥ ५॥ इति मूढगर्भनिदानम्।

अथ विकृताकृतिगर्भलक्षणमाह—

ऋतुस्नाता तु या नारी स्वप्ने मैथुनमावहेत्।
आर्तवं वायुरादाय कुक्षौ गर्भं करोति हि॥ १॥

ऋतु स्नान करने के बाद जो नारी स्वप्न में मैथुन करती है उसका आर्तव वायु को लेकर गर्भाशय में जाकर गर्भ कर देता है॥ १॥

मासि मासि विवर्धेत गर्भिण्या गर्भलक्षणम्।
कललं जायते तस्या वर्जितं पैतृकैर्गुणैः॥ २॥

वह प्रतिमास बढ़ता जाता और गर्भिणी को सब गर्भ के लक्षण प्रतीत होते हैं। उसका मांस पिण्ड सा बन जाता है जिसमें पिता के गुण नहीं होते॥२॥

सर्पवृश्चिककूष्माण्डविकृताकृतयश्च ये।
गर्भास्त्वेति त्रयश्चैव ज्ञेया पापकृतो भृशम्॥ ३॥

सांप, बिच्छु, पेठा तथा अन्य विकृत आकृति वाले गर्भ से जीव उत्पन्न हो जाते हैं। ये सभी तीनों प्रकार के गर्भ पाप से हुए २ समझने चाहिये॥ ३॥ इति सुश्रुतात्।

अथ स्त्रीगर्भरोगचिकित्सा।

तत्र गर्भस्य स्रावपातयोश्चिकित्सामाह—

गुर्विण्या गर्भतो रक्तं स्रवेद्यदि मुहुर्मुहुः।
तन्निरोधाय सा दुग्धमुत्पलादिशृतं पिबेत्॥ १॥

गर्भवती स्त्री के गर्भ से यदि बार २ रक्त बहता हो, तो उसके रोकने के लिये वह उत्पलादिगण से पकाया हुआ दूध पीवे॥ १॥

उत्पलादिगणमाह—**उत्पलं नीलमारक्तं कह्लारं कुमुदं तथा।**
श्वेताम्भोजं च मधुकमुत्पलादिरयं गणः॥ १॥

नीलोत्पल, लाल कमल, कुमुद, श्वेतकमल और मुलठ्ठी ये द्रव्य उत्पलादिगण कहाते हैं॥

संशीलितो हरत्येव दाहं तृष्णां हृदामयम्।
रक्तं पित्तं च मूर्च्छां च तथा छर्दिमरोचकम्॥ २॥

इसे सेवन करने से दाह, तृष्णा तथा हृदय के रोग, रक्तपित्त, मूर्च्छा, वमन और अरुचि ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

गर्भपातनिवारणःयोगाः—लज्जालुर्धातकीपुष्पमुत्पलं मधु लोध्रकम्।
जलस्थया स्त्रिया पीतं गर्भपातं निवारयेत् ॥ ३ ॥

लज्जावन्ती या छुइमुई, धाय के फूल, नीला कमल, शहद, लोध इन सब को पीसकर मिलाकर गर्भवती स्त्री को यदि जल में बिठाकर पिलावें तो गर्भपात रुक जाता है ॥ ३ ॥

पतन्तं स्तम्भयेद्गर्भं कुलालकरमृत्तिका।
मधुच्छागीपयःपीता किं वा श्वेताऽपराजिता ॥ ४ ॥

कुम्हार के हाथों को लगी हुई मिट्टी गर्भवती को पिलावें तो गिरते हुए गर्भ को रोक देती है ॥ अथवा श्वेत अपराजिता के चूर्ण को शहद तथा बकरी के दूध से मिलाकर पिलावें तो भी गर्भस्राव तथा गर्भपात रुक जाता है ॥४॥

पारावतमलः पीतस्त्र्यहं ताम्बूलवारिणा।
गर्भिणीगर्भतो रक्तं स्तम्भयेन्निरुपद्रवम् ॥ ५ ॥

कबूतर की बीठ को पान के रस से ३ दिन पिलावें तो गर्भिणी के गर्भ से बहते हुए उपद्रव रहित रक्त को रोक देती है ॥ ५ ॥

शर्कराबिसतिलं समांशकं माक्षिकेण सह भक्ष्यते यदा।
नास्ति गर्भपतनोद्भवं भयं पापभीतिरव तीर्थसेवया ॥ ६ ॥

यदि खांड, भिसें तथा तिल इन सब को समभाग लेकर शहद मिलाकर खावें तो गर्भपात का भय वैसे ही नष्ट होजाता है जैसे तीर्थों की सेवा से पाप का भय नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥

कङ्कतीमूलमाबद्धं कुमारीसूत्रकैः समैः।
कटिदेशे नितम्बिन्या गर्भपातं निवारयेत् ॥ ७ ॥

कुमारी कन्या के हाथ से काते हुए समान लंबाई वाले सूतों से कंघी बूटी की जड़ बांधकर स्त्री के कमर पर बांधदी जाये तो गर्भपात नहीं होता है ॥७॥

गर्भपाते जाते विधिः—वेणुग्रन्थिकुलत्थानां हरिद्राजनितं श्रृतम्।
देयं न्यूनदिनं पीतं गर्भिणीनां भिषग्वरैः ॥ ८ ॥

बांस की गांठ अथवा बांस, पिप्पलामूल, कुलथ, हल्दी इन सब का क्वाथ पिलावें तो थोड़े दिनों के गर्भ के स्राव या पात हो चुकने पर इस क्वाथ से पीड़ा आदि तथा मैल की निवृत्ति होती है ॥ ८ ॥

गर्भेप्रचलिते—ह्रीबेरातिविषामुस्तामोचशक्रैः श्रृतं जलम्।
दद्याद्गर्भे प्रचलिते प्रदरे कुक्षिरुज्यपि ॥ ९ ॥

सुगन्धबाला, अतीस, मोथा, मोचरस, इन्द्रजौ इन सब से पकाया हुआ जल

गर्भ के अधिक स्थान भ्रष्ट हो चुकने या अधिक चलने पर, प्रदर में तथा कुक्षि पीड़ा में अर्थात् गर्भाशय की पीड़ा में देना चाहिये ॥ ६ ॥

अतः परं मासानुमासिकं वक्ष्यामः—

मधुकं शाकबीजं च पयस्या सुरदारु च।
अश्मन्तकः कृष्णतिलास्ताम्रवल्ली शतावरी ॥ १ ॥

मुलठी, सेगुन का बीज, क्षीरकाकोली, देवदार। इन को दूध में पकाकर पहले मास में गर्भिणी को पिलायें ॥ पाषाणभेद, काले तिल, मंजीठ तथा शतावर इन का क्षीर पाक कर के गर्भ के दूसरे मास में गर्भवती को पिलावें ॥१॥

वृक्षादनी पयस्या च लता चोत्पलसारिवा।
अनन्ता सारिवा रास्ना पद्मा मधुकमेव च ॥ २ ॥

बन्दा, क्षीरकाकोली, मंजीठ, नीलोफर, शारिवा इन से किया हुआ क्षीर पाक गर्भ के तीसरे मास में पिलावें। अनन्तमूल, शारिवा, रास्ना, भारंगी, मुलठी इन सब से किया हुआ क्षीरपाक चौथे मास में पिलावें ॥ २ ॥

बृहतीद्वयकाश्मर्यक्षीरिश्रृङ्गत्वचो घृतम्।
पृश्निपर्णी बला शिग्रुः श्वदंष्ट्रा मधुपर्णिका ॥ ३ ॥

छोटी कटेली, बड़ी कटेली, गंभारी, क्षीरीवृक्षों की अर्थात् बड़, पीपल, गूलर, पिलखन तथा पारस पीपल इन की कोपलें तथा छाल तथा घी इन सब को मिलाकर क्षीरपाक करें और इसे पांचवें मास में गर्भवती को पिलावें। पृष्टपर्णी, खिरेंटी, सुहांजना, गोखरू, गंभारी इन से क्षीरपाक कर के छटे मास में पिलावें ॥ ३ ॥

श्रृङ्गाटकं बिसं द्राक्षा कसेरुमधुकं सिता।
सप्तैतान्पयसा योगानर्धश्लोकसमापितान् ॥ ४ ॥

सिंघाड़ा, भिस, दाख, कसेरू, मुलठी तथा खांड इन से क्षीरपाक कर के सातवें मास में गर्भवती को पिलावें ॥ ४ ॥

क्रमात्सप्तसु मासेषु गर्भे स्रवति योजयेत्।
कपित्थबिल्वबृहतीपटोलेक्षुनिदिग्धिजैः ॥ ५ ॥

ये आधे २ श्लोकों में कहे हुए सातों योग क्रमशः सातों मास में गर्भवती को गर्भस्राव या गर्भपात का भय होते ही देने चाहियें। कैथ, बिल, बड़ी कटेली, परवल, गन्ने की जड़, छोटी कटेली ॥ ५ ॥

मूलैः श्रृतं प्रयुञ्जीत क्षीरं मासे तथाऽष्टमे।
नवमे मधुकानन्तापयस्यासारिवाः पिबेत् ॥ ६ ॥

इन जड़ों को लेकर उस से क्षीरपाक कर के आठवें मास में गर्भवती को पिलावें। नवें मास में मुलठी, अनन्तमूल, क्षीरकाकोली तथा शारिवा इन से

किया हुआ क्षीरपाक पिलावें ॥ ६ ॥

क्षीरं शुण्ठीपयस्याभ्यां सिद्धं स्याद्दशमे हितम्।
सक्षीरा वा हिता शुण्ठी मधुकं सुरदारु च ॥ ७ ॥

सोंठ तथा क्षीरकाकोली से पकाया हुआ क्षीरपाक दशम मास में गर्भिणी को पिलाना चाहिये। अथवा सोंठ को दूध से पिलावे, अथवा मुलट्ठी तथा देवदारु को दूध से पिलावे ॥ ७ ॥

क्षीरिकामुत्पलं दुग्धं समङ्गामूलकं शिवाम्।
पिबेदेकादशे मासि गर्भिणी शूलशान्तये ॥ ८ ॥

खिरनी या क्षीरकाकोली, नीलोत्पल, दूध, मंजीठ या लज्जावन्ती की जड़, हरड़ इन सब को पाक कर के ग्यारहवें मास में पिलाना चाहिये तो गर्भिणी का शूल शान्त होता है ॥ ८ ॥

सिताविदारिकाकोलीक्षीरिकाश्च मृणालिकाः।
गर्भिणी द्वादशे मासि पिबेच्छूलघ्नमौषधम्।
एवमाप्यायते गर्भस्तीव्रा रुक्चोपशाम्यति ॥ ९ ॥

खांड, विदारीकन्द, काकोली, क्षीरकाकोली, भिसें इन सब को क्षीरपाक करके १२वें मास में पिलावें तो इस से शूल नाश होता है, गर्भ पुष्ट होता है तथा तीव्र पीड़ायें शान्त होती हैं ॥ ९ ॥

अथान्यच्च—**ग्रन्थान्तरे मासविशेषे गर्भवेदनाहरमौषधम् ॥**

दूसरे ग्रन्थ से मासविशेषों में गर्भवदनाहर औषध लिखते हैं ॥

प्रथमे मासे—**चलनं प्रथमे मासि गर्भस्य यदि जायते।**
औषधं च तदा देयं विचक्षणभिषग्वरैः ॥ १ ॥

प्रथम मास में यदि गर्भ स्राव होनेका भय हो और गर्भ अपने स्थान से चले॥

मृद्वीका ज्येष्ठिका चैव चन्दनं रक्तचन्दनम्।
गवां च पयसा पेयं स्थिरता जायते ध्रुवम् ॥ २ ॥

तो विद्वान वैद्य मुनक्का, मुलट्ठी, श्वेत चन्दन, लाल चन्दन इन सब को गो दूध के साथ क्षीरपाक कर के पिलायें तो गर्भ निश्चित स्थिर होजाता है ॥२॥

नीलोत्पलं सवालं च शृङ्गाटं च कसेरुकम्।
शीततोयेन पिष्ट्वा तु क्षीरेणाऽऽलोड्य तत्पिबेत् ॥ ३ ॥
एवं न पतते गर्भः स च शूलः प्रशाम्यति।

नीला कमल, बाला, सिंघाड़ा, कसेरू इन सब को शीतल जल से पीसकर दूध से मिलाकर पीना चाहिये ॥ ३ ॥ इस प्रकार करने से गर्भपात नहीं होता तथा वह शूल भी प्रशान्त होजाता है ॥

द्वितीये मासे—**द्वितीये मासि गर्भस्य चलनं च भवेद्यदि ॥ ४ ॥**

यदि दूसरे मास में गर्भ चलायमान हो जाये ॥ ४ ॥

पयसा च तदा पेयं मृणालं नागकेशरम्।
तगरं कमलं बिल्वं कर्पूरेण समन्वितम् ॥ ५ ॥
अजाक्षीरेण तत्पिष्ट्वा क्षीरेणाऽऽलोड्य पूर्ववत्।

तो दूध के साथ मृणाल तथा नागकेसर को पीवे। अथवा तगर, कमल, बिल, कपूर ॥ ५ ॥ इन सब को बकरी के दूध से पीसकर बकरी के दूध में ही घोलकर पीले तो गर्भ स्थिर होता है तथा शूल भी नष्ट होती है ॥

तृतीये मासे—तृतीये मासि चलनं जायते गर्भजं यदि ॥ ६ ॥

यदि गर्भ तीसरे महीने चले ॥ ६ ॥

पयसाऽऽलोडितं पेयं शर्करानागकेशरम्।
पद्मकं चन्दनं चैव वालकं पद्मनालकम् ॥ ७ ॥

तो खांड और नागकेसर को दूध से घोलकर पीना चाहिये। अथवा पद्मकाष्ठ चन्दन लाल, सुगंधबाला, कमल की नाल ॥ ७ ॥

पिष्ट्वा शीतेन तोयेन क्षीरेणाऽऽलोड्य तत्पिबेत्।
एवं न पतते गर्भः स च शूलः प्रशाम्यति ॥ ८ ॥

इन सब को शीतल जल से पीसकर दूध से घोलकर पिलावें, इस प्रकार से भी गर्भपात नहीं होता है तथा शूल भी नष्ट होजाता है ॥ ८ ॥

चतुर्थे मासे—यदि गर्भस्य चलनं चतुर्थे मासि जायते।
तृष्णाशूलविदाहैश्च ज्वरेण च निपीडनम् ॥ ९ ॥

यदि गर्भ चौथे महीने चले अर्थात् गिरने की संभावना हो और प्यास, शूल, विशेष दाह तथा ज्वर हो ॥ ९ ॥

क्षीरं च कदलीमूलमुत्पलं वालकं तथा।
आलोड्य समभागेन पिबेद्रोगोपशान्तये ॥ १० ॥

तो केले की जड़, नीलाकमल तथा सुगंधबाला इन सब को दूध के समान २ भाग लेकर पीसकर दूध में घोलकर पिलादें तो सब रोगों की शान्ति होती है ॥

पञ्चमे मासे—पञ्चमे मासि गर्भस्य चलनं कुत्राचिद्भवेत्।
दध्ना च मधुना पेयं दाडिमीपत्रचन्दनम् ॥ ११ ॥

यदि कहीं ५वें महीने में गर्भपात का भय हो तो अनार के पत्ते, लालचन्दन शहद इन को मिलाकर दही से पीवें ॥ ११ ॥

नीलोत्पलं मृणालं च कौन्तीक्षीरीं तथैव च।
केशरं पद्मकं चैव तोयेनाऽऽलोड्य तत्पिबेत् ॥ १२ ॥
एवं न पतते गर्भः स च शूलः प्रशाम्यति।

अथवा नीलाकमल, मृणाल, रेणुका, खिरनी वा क्षीरकाकोली, नागकेसर, पद्मकाष्ठ इन सब को समभाग लेकर जल से पीसकर घोलकर पिलावें ॥१२॥ तो भी गर्भ नहीं गिरता है और वह शूल भी शान्त होजाता है ॥

षष्ठे मासे—षष्ठे मासि तु गर्भस्य चलता जायते यदा ॥ १३ ॥
छटे महीने में यदि गर्भ चले ॥ १३ ॥

गैरिका गोमयं भस्म कृष्णा मृत्स्ना तथैव च।
एतेषां साधितं प्राज्ञभिषजा चामृतं तदा ॥ १४ ॥
पेयं शीतं परं साकं सितया चन्दनेन च।

तो गेरु, गोबर की भस्म, काली मिट्टी इन सबको शीतल जल में घोलकर ॥ १४ ॥ खांड तथा चन्दन मिलाकर पीना चाहिये।

सप्तमे मासे—सप्तमे मासि गर्भस्य चलनं जायते यदा ॥ १५ ॥
यदि सातवें महीने में गर्भ चलायमान हो ॥ १५ ॥

उशीरं गोक्षुरघनौ समङ्गा नागकेशरम।
सपद्मकं समधुना पाययेच्च विचक्षणः ॥ १६ ॥

तो खस, गोखरु, मोथा, मंजीठ, नागकेसर, पद्माख, इन सबका चूर्ण शहद में मिलाकर जल से घोलकर पिलावें ॥ १६ ॥

अष्टमे मासे—अष्टमे मासि चलनं गर्भजं यदि जायते।
लोध्रमागधिकाचूर्णं मधुना पयसा पिबेत्।

यदि आठवें मास में गर्भ चले तो लोध, मघपिप्पली का चूर्ण शहद तथा दूध मिलाकर पिलावें ॥

नवमे मासे—नवमे सुप्रसूतिः स्यादेवं गर्भस्य पोषणम् ॥ १७ ॥

नवें महीने में अच्छी प्रकार से प्रसव हो जाता है। इस प्रकार से गर्भ का पोषण होता है ॥ १७ ॥ इति गर्भस्रावपातादिचिकित्सा।

अथ गर्भपातस्योपद्रवाणां चिकित्सा। अथ वेदनाचिकित्सा—

स्निग्धशीताः क्रियास्तेषु दाहादिषु समाचरेत्।
कुशकाशोरुबूकाणां मूलैर्गोक्षुरकस्य च ॥ १ ॥

गर्भ के दाहादि उपद्रवों में स्निग्ध तथा शीतल क्रियायें करनी चाहियें। कुशा काश, एरण्ड इन सबकी जड़ तथा गोखरु ॥ १ ॥

शृतं दुग्धं सितायुक्तं गर्भिण्याः शूलहृत्परम्।
श्वदंष्ट्रामधुकद्राक्षाम्लानैः सिद्धं पयः पिबेत् ॥ २ ॥
शर्करामधुसंयुक्तं गुर्विणीवेदनापहम्।

इन सबसे पकाया हुआ दूध खांड मिलाकर पिलायें तो शूल नाश करने में श्रेष्ठ है। गोखरु, मुलठ्ठी, दाख, झिण्टी इन सबसे सिद्ध किया हुआ दूध ॥ २ ॥ खांड तथा शहद मिलाकर पिलावें तो गर्भवती की वेदना शान्त करता है।

अथ प्रदरचिकित्सा—मृत्कोष्ठगारिका गेहसंभवा नवमृत्तिका ॥ ३ ॥
घर में लगी हुई अंजनहारी के घर की नयी मिट्टी ॥ ५ ॥

समङ्गा धातकीपुष्पं गैरिकं च रसाञ्जनम्।
तथा सर्जरसश्चैतान्यथालाभं विचूर्णयेत् ॥ ४ ॥

मंजीठ, धाय के फूल, गेरू, रसौंत तथा राल इन में से जितने द्रव्य मिलें लेकर चूर्ण करले ॥ ४ ॥

तच्चूर्णं मधुना लिह्यान्नारी प्रदरशान्तये।
कसेरूत्पलशृङ्गाटकल्कं वा पयसा पिबेत् ॥ ५ ॥

उस चूर्ण को शहद मिलाकर चाटे तो प्रदररोग शान्त होता है। अथवा नीलाकमल तथा सिंघाड़ा इनका कल्क दूध के साथ पीवे ॥ ५ ॥

अथानाहचिकित्सा—पक्वं वचारसोनाभ्यां हिङ्गुसौवर्चलान्वितम्।
आनाहेषु पिबेद् दुग्धं गुर्विणी सुखिनी भवेत् ॥६॥

बच, लहसन इनसे क्षीर पाक किया हुआ दूध, हींग और सोंचल नमक मिलाकर पीवें तो गर्भवती का आनाह दूर होता है तथा वह सुखी होती है ॥ ६ ॥

अथ मूत्रसंगस्यचिकित्सा—तृणपञ्चकमूलानां कल्केन विपचेत्पयः।
तत्पयो गुर्विणी पीत्वा मूत्रसङ्गाद्विमुच्यते ॥७॥

तृणपंचमूल का कल्क दूध में डालकर पिलावें तो उस दूध को पीने से गर्भवती का मूत्रसङ्ग अर्थात् मूत्र का रुकना दूर होता है ॥ ७ ॥

शालीक्षुकुशकाशैः स्याच्छरेण तृणपञ्चकम्।
एषां शृतं तृषादाहपित्तासृङ्मूत्रसङ्गहृत् ॥ ८ ॥

शाली धान की जड़, ईख की जड़, कुशा की जड़, काश की जड़, शर की जड़ इनको तृणपंचक कहते हैं। इनका क्वाथ बनाकर पीवे तो तृष्णा, दाह, रक्तपित्त तथा मूत्रसङ्गरोग दूर होता है ॥ ८ ॥

अथ सर्वोपद्रवचिकित्सा—

कसेरुशृङ्गाटकपद्मकोत्पलं समुद्गपर्णीमधुकं सशर्करम्।
सशूलगर्भस्रुतिपीडिताऽबला पयोविमिश्रं पयसाऽन्नभुक्पिबेत् ॥९॥

कसेरु, सिंघाड़ा, पद्माख, नीलाकमल, मुद्गपर्णी, मुलठी इनका क्वाथ दूध से मिलाकर खांड डालकर पिलावे तथा दूध चावल या दूध रोटी खावे तो शूल, गर्भस्राव ये दोनों नष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥ इति गर्भपातोपद्रवचिकित्सा।

अथ गुर्विण्या रोगाणां चिकित्सा—

मधूकचन्दनोशीरसारिवायाष्टिपद्मकैः।
शर्करामधुसंयुक्तः कषायो गर्भिणीज्वरे ॥ १ ॥

महुआ, चन्दन, खस, सारिवा, मुलठी, पद्माख इन सबका क्वाथ खांड तथा शहद मिलाकर पिलावें तो गर्भिणी का ज्वर नष्ट होता है ॥ १ ॥

चन्दनं सारिवालोध्रमृद्वीकाशर्करान्वितम्।

काथं कृत्वा प्रदद्याच्च गर्भिणीज्वरशान्तये ॥ २॥

लालचन्दन, शारिवा, लोध, मुनक्का इनका काथ खांड से मिलाकर पिलाया जाये तो गर्भिणी का ज्वर शान्त होता है ॥ २ ॥

पयस्यासारिवापाठातोयतोयदनागरैः।
शृतं शीतं पिबेद्वारि गर्भिणीज्वरवारणम् ॥ ३॥

क्षीर काकोली, सारिवा, पाठा, बाला, नागरमोथा, सोंठ, इनसे पकाकर शीतल किया हुआ जल गर्भिणी के ज्वर को नष्ट करता है ॥ ३ ॥

मृद्वीकापद्मकोशीरश्रीपर्णीचन्दनं तथा।
मधुकं च पयस्या च सारिवामलकं तथा ॥ ४ ॥

मुनक्का, पद्माख, खस, गम्भारी, चन्दन, मुलठ्ठी, क्षीरकाकोली, शारिवा, आंवला

पित्तज्वरहरः काथो गर्भिणीनां प्रशस्यते।
पीतं विश्वमजाक्षीरैर्नाशयेद्विषमज्वरम् ॥ ५ ॥

इन सबका काथ करके गर्भवती स्त्री को देवे तो गर्भिणी का पित्तज्वर नष्ट हो जाता है। सोंठ को बकरी के दूध से मिलाकर पीवें तो विषम ज्वर का नाश होता है ॥ ५ ॥

अथ ह्रीबेरादिः—ह्रीबेरारलुरक्तचन्दनबलाधान्याकवत्सादनी-
मुस्तोशीरयवासपर्पटविषाकाथं पिबेद्गुर्विणी।
नानावर्णरुजातिसारकगदे रक्तस्रुतौ वा ज्वरे
योगोऽयं मुनिभिः पुरा निगदितः सूत्यामयेषूत्तमः ॥६॥

सुगन्ध बाला, श्योणाक की छाल, लालचन्दन, खिरेंटी, धनियां, गिलोय, मोथा, खस, जवासा, पित्तपापड़ा, अतीस, इनको समभाग लेकर काथ करके गर्भवती स्त्री पीवे। तो नाना रंग के पीड़ायुक्त अतिसार रोगों में, रक्त बहने में, ज्वर में तथा सूतिकारोग में यह योग मुनियों ने उत्तम माना है ॥ ६ ॥

अथ ज्वरातिसारे—ज्वरातिसारे गर्भिण्याः शस्तं सामे सशोणिते।
समङ्गा मधुकं लोध्रं फाणितं शर्करान्वितम् ॥ ७ ॥

ज्वरातिसार में, आमातिसार में, रक्तातिसार में मंजीठ, मुलठ्ठी, लोध और फाणित को खांड से मिलाकर सेवन करे ॥ ७ ॥

प्रवाहिकारोगे—प्रवाहिकायां गर्भिण्याः शस्तं सामे सशोणिते।
आम्रजम्बूत्वचः काथैर्लेहयेल्लाजसक्तुकम् ॥ ८ ॥
अनेन लीढमात्रेण गर्भिणी ग्रहणीं जयेत्।

प्रवाहिकारोग में, आम तथा रक्तसहित अतिसार में धान की खीलों के सत्तू आम तथा जामुन की छालों के काथ से चटावें ॥ ८ ॥ इसके चाटने से ही गर्भिणी स्त्री की ग्रहणी भी ठीक हो जाती है।

अथ छर्द्यतीसारे—शुण्ठीबिल्वकषायं तु यवसक्तुसमन्वितम् ॥ ९ ॥

गर्भिणीं पाययेद्वैद्यश्छर्द्यतीसारनाशनम्।

सोंठ तथा बिल का काढ़ा जौ के सत्तुओं समेत ॥ ६॥ गर्भवती को वैद्य पिलावे इससे छर्दि तथा अतीसार का नाश होता है।

अथ रक्तपित्ते—पृश्निपर्णीबलावासानिर्यूहो रक्तपित्तजित् ॥ १०॥

पृष्टपर्णी, बला तथा बांसा इनका क्वाथ रक्तपित्त को नाश करता है ॥ १०॥

अथ कामलाशोफ—गर्भिण्याः कामलाशोफश्वासकासज्वरापहः।

अथ कामलादिरोगेषु—तथा गर्भिणी के कामला, शोथ, कास तथा ज्वर को नाश करता है।

छर्दिरोगे—कुस्तुम्बरीणां कल्कं तु तण्डुलोदकसंयुतम् ॥ ११॥

धनियां का कल्क चावलों के धुले जल से ॥ ११॥

पिबेत्सशर्करं हृद्यं गर्भिणीछर्दिवारणम्।
बिल्वमज्जा च लाजाम्बु पिबेच्छर्दिषु गर्भिणी ॥१२॥

खांड मिलाकर पीवे तो हृदय के लिये हितकारी है तथा गर्भिणी की वमन का नाश करता है। बिल का गूदा तथा लाजों या धान की खीलों का जल छर्दि में गर्भिणी को पिलाना चाहिये ॥ १२॥

श्वासकासौ—भार्गीशुण्ठीकणाचूर्णं गुडेन श्वासकासनुत्।

भार्गी, सोंठ, पिप्पली इन सबको समभाग लेकर चूर्ण करके गुड से मिलाकर खावें तो श्वास तथा कास नष्ट होता है।

अथाग्निमांद्ये—अजमोदा नागरं च पिप्पली जीरकं समम् ॥ १३॥
तच्चूर्णं सगुडक्षौद्रं गर्भिण्या वह्निदीपनम्।

अजवायन, सोंठ, पिप्पली, जीरा ॥१३॥ इनमेंसे प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर शहद तथा गुड मिलाकर खिलावें तो अग्निदीप्त होती है ॥

अथ वातरोगे—बिल्वाग्निमन्थपक्वं वा पाटल्या नागरेण वा ॥ १४॥
सिद्धमम्बु पिबेच्छीतं गर्भिणी वातरोगनुत्।

बिल तथा अरणी की छाल से पकाया हुआ जल; पाटला अर्थात् पाढ़ की छाल और सोंठ का पकाया हुआ जल ॥ १४॥ शीतल करके गर्भिणी को पिलावे तो वातरोग नष्ट होता है ॥

अथ चन्दनादिशोफहरलेपः—चन्दनं मधुकोशीरं नागपुष्पं तिलास्तथा॥१५॥

चन्दन लाल, मुलठ्ठी, खस, नागकेसर, तिल ॥ १५॥

अजशृङ्गी च मञ्जिष्ठा रविमूलं पुनर्नवा।
श्रेष्ठः शोफहरो लेपो गर्भिणीनां विशेषतः ॥ १६॥

मेढासिंघी, मंजीठ, आक की जड़, पुनर्नवा इन सब को समभाग लेकर लेप करें तो गर्भवती स्त्रियों के शोथ को विशेष करके नष्ट करता है ॥ १६॥ इति गुर्विणीरोगाणां चिकित्सा।

अथ वातशुष्कस्य गर्भस्य चिकित्सा—

गर्भो वातेन संशुष्को नोदरं पूरयेद्यदि।
सा बृंहणीयैः संसिद्धं दुग्धं मांसरसं पिबेत् ॥ १ ॥

यदि गर्भ वायु से सूख गया हो और पेट को भरता हुआ प्रतीत न हो तो बृंहण औषधों से पकाये हुए दूध को या मांसरस को स्त्री पीवे ॥ १ ॥

शुक्रार्तवमजाताङ्गं प्रत्यङ्गं मारुतार्दितम्।
त्यक्तं जीवेन तत्तस्मात्कथितं चावतिष्ठते ॥ २ ॥

वीर्य तथा आर्तव वायु से पीड़ित हुए हों तो गर्भ के अंग प्रत्यंग नहीं बनते, वह गर्भ जीवात्मा से रहित होता है तथा क्वथित अर्थात् पकता हुआ अन्दर पड़ा रहता है ॥ २ ॥

शुक्रार्तवार्द्रको वायुरुदराध्मानकृद्भवेत्।
कदाचिच्चेत्तदाध्मानं स्वयमेवाऽऽपतेत्तराम् ॥ ३ ॥

शुक्र तथा आर्तव से आर्द्र हुआ २ वायु पेट को फुलाकर कभी आध्मान कर देता है। फिर वही आध्मान स्वयं ही निकल जाता है ॥ ३ ॥

नैगमेयेन गर्भोऽयं हृतो लोकध्वनिस्तदा।
स चापि गर्भो भवति लोके नागोदराह्वयः।
धान्यकुट्टनमुख्या स्याच्चिकित्सा तूभयोरपि ॥ ४ ॥

तब लोक कहते हैं कि यह गर्भ नैगमेय ने हर लिया है। इसे लोक में नागोदर गर्भ कहा जाता है। इन दोनों अवस्थाओं में मुख्य चिकित्सा यह है कि स्त्री धान्यों को कूटे तो दोनों प्रकार के गर्भ निकल जाते हैं ॥ ४ ॥

अथ प्रसवमासमाह—नवमे दशमे मासि नारी गर्भं प्रसूयते।
एकादशे द्वादशे वा ततोऽन्यत्र विकारतः ॥ १ ॥

नवें तथा दसवें महीने में गर्भवती प्रसव करती है। कभी २ ११वें तथा १२वें महीने में भी प्रसव करती है। कोई २ इस से आगे भी १३वें आदि महीनों में प्रसव करती हैं परन्तु ऐसा बिलम्ब किसी रोगादि विकारों के कारण होता है ॥ १ ॥

अथ च प्रसवमासमतिक्रम्य स्थायिनि गर्भे चिकित्सामाह—

वातेन गर्भसंकोचात्प्रसूतिसमयेऽपि या।
गर्भं न जनयेन्नारी तस्याः शृणु चिकित्सितम् ॥ १ ॥

वात से गर्भ का संकोच होजाने पर जो स्त्री प्रसव के समय भी बच्चा नहीं जनती उस की चिकित्सा यह है ॥ १ ॥

कुट्टयेन्मुशलेनैषा कृत्वा धान्यमुलूखले।
विषमं चाऽऽसनं यानं सेवेत प्रसवार्थिनी ॥ २ ॥

कि वह स्त्री मूसल से ऊखल में धान्यों को कूटे। तथा विषम आसन सेवन

करे अर्थात् टेढ़ा मेढ़ा बैठे तथा सवारी आदि पर चढ़े। इस से प्रसव शीघ्र हो जायेगा॥ २॥

अथ काले प्रसवविलम्बे चिकित्सामाह—

प्रसवस्य विलम्बे तु धूपयेदभितो भगम्।
कृष्णसर्पस्य निर्मोकस्तथा पिण्डीतकेन वा॥ १॥

प्रसव में विलम्ब होने पर योनि को धूप देवे। काले सांप की केंचुली से तथा मैनफल से धूप देना उत्तम है॥ १॥

तन्तुना लाङ्गलीमूलं बध्नीयाद्धस्तपादयोः।
सुवर्चलां विशल्यां वा धारयेदाशु सूतये॥ २॥

लांगली अर्थात् कलिहारी की जड़ को सूत से बांधकर हाथ पैरों में बांधना चाहिये। अथवा आदित्य भक्ता अर्थात् हुड़हुड़, या विशल्या (विशल्या-गिलोय, विकंकत, लांगली, त्रिवी, वाटला, नागदन्ती, अजमोद) नागदन्ती वा हाथीसुंडी की जड़ को बांध देवे तो शीघ्र प्रसव होजाता है॥ २॥

कृष्णा वचा चापि जलेन पिष्टा सैरण्डतैला खलु नाभिलेपात्।
सुखप्रसूतिं कुरुतेऽङ्गनानां निपीडितानां बहुभिः प्रमादैः॥ ३॥

पिप्पली तथा बच दोनों को जल में पीसकर एरण्ड के तेल से मिलाकर नाभि पर लेप करें तो कई कारणों से दुखी हुई २ स्त्रियों को उस से शीघ्र ही प्रसव हो जाता है॥ ३॥

मातुलुङ्गस्य मूलं तु मधुकैः संयुतं तथा।
घृतेन सहितं पीत्वा सुखं नारी प्रसूयते॥ ४॥

बिजौरे नींबू की जड़ और मुलहठी इन दोनों को समभाग चूर्ण कर के घी मिला कर पिलाने से स्त्री को सुख से प्रसव होजाता है॥ ४॥

इक्षोरुत्तरमूलं निजतनुमानेन तन्तुना बद्ध्वा।
कटिविषये गर्भवती सुखेन सूतेऽविलम्बितेनापि॥ ५॥

ईख की उत्तर ओर की जड़ को, अपने शरीर के समान लंबे सूत से बांध कर कमर में बांध लेवे तो गर्भवती सुख से शीघ्र ही बच्चा प्रसव करती है॥ ५॥

तालस्य चोत्तरं मूलं स्वप्रमाणेन तन्तुना।
बद्ध्वा कट्यां तु नियतं सुखं नारी प्रसूयते॥ ६॥

ताड़ के वृक्ष की उत्तर की जड़ को नारी के शरीर के समान एक धागे से बांधकर यदि प्रसूता के कमर में बांध देवें तो निश्चय से सुखपूर्वक ही प्रसव होता है॥

प्रत्यक्पुष्प्याः पारिभद्रस्य यद्वा मूलं यद्वा काकजङ्घासमुत्थम्।
कट्यां बद्धं योषितां संप्रसूतिं योगे युक्त्या संहृतं साधु कुर्यात्॥ ७॥

अपामार्ग की जड़ वा पारिभद्र की जड़ वा काकजंघा की जड़ को अच्छी प्रकार लेकर स्त्री की कमर में बांध देवें तो सुगमता से प्रसव होता है॥ ७॥

अथ च्यावन मंत्रः—इहामृतं च सोमश्च चित्रभानुश्च भामिनी।
उच्चैःश्रवाश्च तुरगो मन्दिरे निवसन्तु ते ॥ ८ ॥

यहां तेरे मन्दिर में अमृत, सोम, चित्रभानु तथा उच्चःश्रवा घोड़ा निवास करे।

इदममृतमपां समुद्धृतं वै तव लघु गर्भमिमं विमुञ्चतु स्त्रि।
तदनलपवनार्कवासवास्ते सह लवणाम्बुधरैर्दिशन्तु शान्तिम् ॥९

यह जलों में से अमृत निकाला है, हे स्त्री! तेरे इस छोटे से गर्भ को यह अमृत छुड़ा देवे अथवा निकाल देवे। और अग्नि, वायु, सूर्य, वासव अर्थात् इन्द्र वा विद्युत् तथा लवणाम्बुधि तेरे को शान्ति देवें ॥ ९ ॥

मुक्ताः पाशा विपाशाश्च मुक्ताः सूर्येण रश्मयः।
मुक्तः सर्वभयाद्गर्भ एहि मा चिर मा चिरम् स्वाहा ॥ १० ॥

सब पाश और विशेष पाश और बन्धन छूट गये हैं, सूर्य ने किरणें छोड़ दी हैं, सभी भयों से हे गर्भ तू छूट गया है। आ, आ अब बाहर आ, देर मत कर, देर मत कर, यह जो कुछ कहा गया है ठीक है ॥ १० ॥

जलं च्यावनमन्त्रेण सप्तवाराभिमन्त्रितम्।
पीत्वा प्रसूयते नारी दृष्ट्वा चोभयत्रिंशकम् ॥ ११ ॥

इस प्रकार के अर्थ वाले ऊपर के तीनों श्लोकों को जिन्हें च्यवन मंत्र भी कहते हैं (च्यावनमंत्र—"इहामृतं च सोमश्च चित्रभानुश्च भामिनि। उच्चैः श्रवाश्चतुरगो मन्दिरे निवसन्तुते। इदममृतमपां समुद्धृतं वै तव लघुगर्भमिमं विमश्चतु स्त्रि। तदनल पवनार्क वासवास्ते सह लवणाम्बुधरैर्दिशन्तु शान्तिम्। मुक्ताः पाशा विपाशाश्च मुक्ताः सूर्येण रश्मयः। मुक्तः सर्वभयाद्गर्भ एहि मा चिर मा चिरम् स्वाहा") बोलकर जल को सात बार अभिमन्त्रित करे। फिर गर्भिणी को इस जल को पिलावें और दोनों ओर से बने तीस यन्त्र को दिखावें तो नारी सुख से प्रसव करती है ॥ ११ ॥

कलारसाष्टभिः पत्तादिगष्टादशभिः क्रमात्।
अर्कैश्च भुवनैर्वेदैरुभयात्रिंशकं भवेत् ॥ १२ ॥

१६, ६, ८ एक पंक्ति में हों, २, १०, १८ दूसरी पंक्ति में हों, १२, १४, ४ तीसरी पंक्ति में हों। सबका क्रम एक जैसा हो तो दोनों ओर से जोड़ने से तीस संख्या आवेगी। (चित्र में उभयत्रिंशक यंत्र को बना हुआ देखिये ॥ १२ ॥

उभयात्रिंशकयंत्र जोड़

	१६	६	८	३०
	२	१०	१८	३०
	१२	१४	४	३०
जोड़	३०	३०	३०	

अथ अक्षतप्रयोगः—हिमवद्दक्षिणे पार्श्वे सुरसा नाम यक्षिणी।
तस्या नूपुरशब्देन विशल्या भव गर्भिणी॥ १३॥

"हिमवद्दक्षिणे पार्श्वे सुरसानाम यक्षिणी। तस्या नूपुरशब्देन विशल्या भव गर्भिणी"। अर्थात् हिमालय की दाई ओर सुरसानाम की यक्ष स्त्री रहती है। उसके पायजेबों के झनकार से हे गर्भवति! तू गर्भ को निकाल और सुखी हो॥ १३

इमं श्लोकं पठित्वा तु क्षिपेदक्षतपञ्चकम्।
गर्भिण्युपरि सद्यः सा गर्भं मुञ्चति गर्भिणी॥ १४॥

इस श्लोक को पढ़कर पांच अक्षत अर्थात् बिना टूटे हुए चावल लेकर गर्भवती नारी पर फेंक देवे तो उसे तुरन्त प्रसव होजाता है॥ १४॥ इति काले प्रसवविलम्बे चिकित्सा॥

अथ मूढगर्भस्य चिकित्सामाह। वैद्यस्त्रियःप्रसवकर्मणि—

याभिः संकटकाले वैद्यैर्नार्यः प्रसाविताः सम्यक्।
लब्धं यशः समग्रास्ता एवातः क्रियाः कुर्युः॥ १॥

जिन वैद्य स्त्रियों (Lady Doctors) ने संकट के समय अर्थात् मूढगर्भावस्था में या प्रसव के समय अच्छी प्रकार से अनेक स्त्रियों को प्रसव कराया हो, तथा यश प्राप्त किया हो, वे ही सब स्त्रियां प्रसवकर्म करायें॥ १॥

गर्भे जीवति मूढं तु गर्भं यत्नेन निर्हरेत्।
हस्तेन सर्पिषाक्तेन योनेरन्तर्गतेन सा॥
मृते तु गर्भे गर्भिण्या योनौ शस्त्रं प्रवेशयेत्॥ २॥

यदि गर्भ जीता हो परन्तु मूढ हो गया हो तो हाथों में घी (गौ का घी) लगाकर (विषनाशक तथा वातनाशक होने से घी लगाना ही प्रशस्ततम है न कि अन्य कृमिनाशक पदार्थों से हाथ साफ कर लेना मात्र पर्याप्त है जैसे आज कल की लेडी डाक्टर करती हैं) योनि के अन्दर डालकर यत्नपूर्वक मूढगर्भ को धीरे २ सीधा कर के निकालना चाहिये। परन्तु यदि गर्भ अन्दर मर गया हो तो योनि में शस्त्र प्रवेश करने चाहियें॥ २॥

वैद्यस्त्रियःगर्भदारणे—शस्त्रशास्त्रार्थविदुषी लघुहस्ता भयोज्झिता।
सचेतनं तु शस्त्रेण न कथंचन दारयेत्॥ ३॥

जो शस्त्रों के चलाने में खूब विदुषी हो और शास्त्र की भी खूब पंडिता हो, तथा जो लघुहस्ता अर्थात् शीघ्रता तथा सफाई से बिना देर किये सब कार्य करने वाली हो, जो डरपोक न हो प्रत्युत् निडर हो ऐसी चिकित्सका स्त्री शस्त्र से मरे हुए गर्भ को काटकर निकाले। परन्तु यदि गर्भ चेतन अर्थात् जीवित हो तो शस्त्र से कभी न काटे॥ ३॥

स दार्यमाणो जननीमात्मानं चापि मारयेत्।

नोपेक्षेत मृतं गर्भं मुहूर्तमपि पण्डितः ॥
स चाऽऽशु जननीं हन्ति प्रभूतान्नं यथा पशुम् ॥ ४ ॥

यदि उस जीवित गर्भ को शस्त्र से काटा जायेगा तो वह माता को भी मार देगा तथा स्वयं भी मर जायेगा। परन्तु साथ ही मरे हुए गर्भ को एक मुहूर्त भर भी अन्दर न छोड़ना चाहिये। उसे काटकर तुरन्त ही बाहर करना पण्डित वैद्य का काम है (यहां " पण्डित " पुल्लिंग पाठ करने से यह अभिप्राय है कि स्त्री के अतिरिक्त पुरुष वैद्य भी शस्त्रकर्म कर सकते हैं)। वह मरा हुआ गर्भ यदि कुछ देर भी अन्दर रहेगा तो माता को उसी प्रकार मार देगा जैसे बहुत अधिक अन्न पशु खाले तो वह उस पशु को मार डालता है ॥ ४ ॥

अथ च्छेदनप्रकारः—यद्यदङ्गं हि गर्भस्य योनौ सज्जति तद्भिषक्।
सम्यग्विनिर्हरेच्छित्त्वा रक्षेन्नारीं प्रयत्नतः ॥ १ ॥

गर्भ का जो २ अंग योनि में फंसा हो उस २ अंग को काटकर अच्छी प्रकार से वैद्य बाहर निकाल देवे। और माता की प्रयत्न पूर्वक रक्षा करे ॥ १ ॥

एवं निर्हृतशल्यां तां सिञ्चेदुष्णेन वारिणा।
ततोऽभ्यक्तशरीराया योनौ स्नेहं निधापयेत् ॥
एवं मृद्वी भवेद्योनिस्तच्छूलं चोपशाम्यति ॥ २ ॥

इस प्रकार से जब सारा गर्भ निकल जावे तो उस स्त्री पर गरम जल का सिंचन करे। फिर सारे शरीर पर तैल या घी को मले तथा योनि में स्नेह अर्थात् औषधों के बने तैल या घी अथवा साधारण सरसों का तेल वा गौ का घी पिघलाकर गर्म किया हुआ लगा देवे। इस प्रकार से योनि कोमल हो जाती है तथा उसका शूल नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

योनिक्षतचिकित्सा—अथ प्रसूताया योनौ क्षतादेस्तु चिकित्सितम्।
तुम्बीपत्रं तथा लोध्रं समभागं तु पेषयेत्।
तेन लेपो भगे कार्यः शीघ्रं स्याद्योनिरक्षता ॥ १ ॥

यदि प्रसूता स्त्री की योनि में क्षत या व्रणादि हो जावें तो तुम्बी के पत्ते तथा लोध को समान भाग लेकर पीसे। इसका लेप योनि में कर दें तो योनि शीघ्र ही क्षत रहित हो जाती है अर्थात् व्रण भर जाते हैं ॥ १ ॥

योनिगाढीकरणम्—पलाशोदुम्बरफलं तिलतैलसमन्वितम्।
योनौ प्रलिप्तं मधुना गाढीकरणमुत्तमम् ॥ २ ॥

ढाक की फली तथा गूलर के फल दोनों को समभाग पीसकर तिल के तेल से मिलाकर, शहद डालकर योनि में लेप करें तो योनि गाढ़ी अर्थात् संकुचित हो जाती है। इसके लिये यह उत्तम योग है ॥ २ ॥

कुक्षिह्रासोपायः—प्रसूता वनिता वृद्धकुक्षिह्रासाय संपिबेत्।

प्रातर्मथितसंमिश्रां त्रिःसप्ताहात्कृशोदराम् ॥ ३ ॥

प्रसूता स्त्री बढ़े हुए पेट को छोटा करने के लिये प्रातःकाल पिप्पलीमूल को मथित अर्थात् दही के मठे के साथ प्रसव के २१ दिन बाद पीवे॥३ इति भावप्रकाशात्।

अथ वङ्गसेनात्—आसुरीहिङ्गुसिन्धूत्थं काञ्जिकेनावलोडितम्।
गर्भाशये मृतं गर्भं पातयेत्पानयोगतः ॥ १ ॥

राई, हींग, सेंधानमक इनको कांजी में घोलकर मृत गर्भ वाली स्त्री को पिलायें तो पिलाने मात्र से ही यह योग गर्भाशय में मरे हुए गर्भ को बाहर निकाल देता है ॥ १ ॥

विषमागतगर्भोपायः—आलोड्य काञ्जिकैर्घोटीपुरीषं वस्त्रगालितम्।
ससिन्धूग्रासुरीतैलं विषमागतगर्भनुत् ॥ २ ॥

घोड़ी की लीद को कांजी में घोल के वस्त्र से छान लेवे। और इसमें सेंधानमक, बच वा अजवायन, राई तथा तिलों का तेल मिलाकर पिलायें तो टेढ़े मूढगर्भ को स्वयं निकाल देता है ॥ २ ॥

मूढगर्भापकर्षणकःयोगः—परूषकशिफालेपः स्थिरामूलकृतोऽथ वा।
नाभिबस्तिभगाद्येषु मूढगर्भापकर्षणः ॥ ३ ॥

फालसे की जड़ को कूट पीसकर नाभि, बस्ति तथा योनि आदि पर लेप करें। अथवा शालपर्णी की जड़ को पीसकर नाभि, बस्ति आदि में लेप करदें तो मूढ़गर्भ बाहर आ जायेगा ॥ ३ ॥ इति मूढ़गर्भचिकित्सा।

अथ प्रसूताया उदरस्थापरोपद्रवानाह।

प्रसूताया न पतिता जठरादपरा यदि।
तदा सा कुरुते शूलमाध्मानं वह्निमन्दताम् ॥ १ ॥

यदि प्रसूता स्त्री की अपरा या जेर बाहर न निकल जावे तो वह अन्दर रहने से शूल, आध्मान तथा अग्निमांद्य कर देती है ॥ १ ॥

अथ तच्चिकित्सा—केशवेष्टितयाऽङ्गुल्या तस्याः कण्ठं प्रघर्षयेत्।
निर्मोककटुकालाबुकृतवेधनसर्षपैः ॥ १ ॥

उंगली पर बाल लपेटकर (अथवा किसी छोटे से ब्रश से) प्रसूता के कण्ठ को घिसे तो जेर बाहर निकल आती है॥ अथवा सांप की केंचुली, कड़वी तुंबी, श्वेत तोरी तथा सरसों ॥ १॥

चूर्णितैः कटुतैलाक्तैर्धूपयेदभितो भगम्।
लाङ्गलीमूलकल्केन पाणिपादतलानि हि।
प्रलिम्पेत्सूतिका योषिदपरापातनाय वै ॥ २ ॥

इन सब को चूर्ण कर के सरसों के तेल में मिलाकर योनि को अच्छी प्रकार से धूप देवे तो जेर गिर जाती है ॥ अथवा लांगली विष की जड़ के कल्क से

प्रसूता के हाथ तथा पैरों को लीप देवे तो भी अपरा या जेर निश्चित रीति से निकल जाती है ॥ २ ॥

अथापराकर्षणविधिः—**हस्तं छिन्ननखं स्निग्धं सूतीयोनौ शनैः क्षिपेत्।**
अपरां तेन हस्तेन जनयित्री विनिर्हरेत् ॥ ३ ॥

हाथ की उंगलियों के नख कटवा ले फिर घी से हाथों को चिकना कर के सूतिका की योनि में धीरे से हाथ डालकर अपरा या जेर को बच्चा जनानेवाली चिकित्सका वा दाई निकाल लेवे ॥ ३ ॥

अथ सूतिकारोगाधिकारः।

पृथिव्यां पतिते वत्से योनौ पिण्डनमिष्यते।
अप्रवेशो यथा वायोस्तथा संरक्षणक्रिया ॥ १ ॥

बच्चे के गर्भ से बाहर होकर पृथिवी पर गिर पड़ने के बाद योनि को दबावे और संकुचित करे। और ऐसी क्रियायें कर के रक्षा करे जिस से वायु का योनि में प्रवेश न हो सके ॥ १ ॥

अथ मक्कललक्षणम्—**वायुः प्रकुपितः कुर्यात्संरुध्य रुधिरं च्युतम्।**
सूताया हृच्छिरोबस्तिशूलं मक्कलसंज्ञितम् ॥ २ ॥

प्रकुपित हुआ २ वायु गर्भाशय से बहते हुए रुधिर को रोककर प्रसूता स्त्री के हृदय, सिर तथा बस्ति में शूल उत्पन्न कर देता है इस शूल को मक्कलशूल कहते हैं ॥ २ ॥

अथ मक्कलस्य चिकित्सा—**संचूर्णितं यवक्षारं पिबेत्कोष्णेन वारिणा।**
सर्पिषा वा पिबेन्नारी मक्कलस्य निवृत्तये ॥१॥

जौखार को खूब चूर्ण कर के गरम जल से पीवे। अथवा घी से पीवे तो मक्कलशूल का नाश होता है ॥ १ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं गजपिप्पली।
नागरं चित्रकं चव्यं रेणुकेलाजमोदिकाः ॥ २ ॥

पिप्पली, पिप्पलामूल, मिरच, गजपीपल, सोंठ, चीता, चव्य, रेणुका, इलायची, अजमोद अर्थात् अजवायन ॥ २ ॥

सर्षपो हिङ्गु भार्गी च पाठेन्द्रयवजीरकाः।
महानिम्बश्च मूर्वा च विषा तिक्ता विडङ्गकम् ॥ ३ ॥

सरसों, हींग, भार्गी, पाठा, इन्द्रजौ, जीरा, महानीम, मूर्वा, अतीस, कुटकी वायविडंग ॥ ३ ॥

पिप्पल्यादिगणो ह्येष कफमारुतनाशनः।
गुल्मशूलज्वरहरो दीपनश्चाऽऽमपाचनः ॥ ४ ॥

यह पिप्पल्यादिगण कहाता है, इस से कफ तथा वात का नाश होता है। गुल्म, शूल ज्वर का नाश करता है तथा अग्निदीपन तथा आमपाचन है ॥४॥

काथमेषां पिबेन्नारी लवणेन समन्वितम् ।
मक्कल्लशूलगुल्मघ्नं कफानिलहरं परम् ॥ ५ ॥

इस पिप्पल्यादिगण का क्काथ नमक मिलाकर प्रसूता को पिलावें तो मक्कल शूल तथा गुल्म का नाश होता है तथा यह परम कफवातनाशक है ॥ ५ ॥

त्रिकट्वादिचूर्णम्—त्रिकटुकचातुर्जातककुस्तुम्बरुचूर्णसंयुक्तम् ।
खादेद्गुडं पुराणं नित्यं नारी मक्कल्लदलनाय ॥६॥

सोंठ, मिरच, पीपल, दारचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेसर, धनियां इन सब को समभाग लेकर चूर्ण कर के पुराने गुड से मिलाकर खावे तो मक्कल-शूल का नाश होता है ॥ ६ ॥

शोणबोलादिः—शोणं बोलं सघृतं सगुडं गुटकीकृतं गिलितम् ।
मक्कल्लाभिधशूलं हन्ति समूलं सशोणितातङ्कम् ॥ ७ ॥

लाल बोल को घी तथा गुड़ मिलाकर गोली बनाकर निगलें । इस से मक्कलशूल तथा खून के अन्य उपद्रव नष्ट होते हैं ॥ ७ ॥

हिङ्गुयोगः—हिङ्गु शुद्धं ससर्पिष्कं भुक्तं मक्कल्लशूलनुत् ॥ ८ ॥

शुद्ध हींग को घी से मिलाकर पिलावें तो मक्कलशूल का नाश होता है ॥८॥

इति मक्कलचिकित्सा ॥

अथ प्रसूताया हितान्याह—प्रसूता युक्तमाहारं विहारं च समाचरेत् ।
व्यायामं मैथुनं क्रोधं शीतसेवां च वर्जयेत् ॥ १ ॥

प्रसूता स्त्री को चाहिये कि युक्त आहार बिहार करे । व्यायाम, मैथुन, क्रोध तथा शीत सेवन न करे ॥ १ ॥

मिथ्याचरात्सूतिकाया यो व्याधिरुपजायते ।
स कृच्छ्रसाध्योऽसाध्यो वा भवेत्पथ्यं समाचरेत् ॥ २ ॥

सूतिका स्त्री को मिथ्याचार अर्थात् अपथ्य आहार तथा व्यवहार करने से जो रोग उत्पन्न होता है वह कष्टसाध्य होता है अथवा असाध्य होता है । इसलिये पथ्य सेवन करना चाहिये ॥ २ ॥ इति भावप्रकाशात् ॥

इति हरद्वारीयगुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेण लवपुरीय श्रीमद्दयानन्दायुर्वेद महाविद्यालयीय वैद्यकविराजोपाधिधारिणायुर्वेदशास्त्रिणा राज-यक्ष्मचिकित्सकेन जलचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योग-रत्नाकरस्य रत्नगर्भानाम्नि टीकायां स्त्रीगर्भरोगप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ सूतिकारोगनिदानम् ।

मिथ्योपचारात्संक्लेशाद्विषमाजीर्णभोजनात् ।
सूतिकायास्तु ये रोगा जायन्ते दारुणाश्च ते ॥ १ ॥

मिथ्या उपचार से, संक्लेश से अर्थात् (संक्लिश्यतेऽनेनेति दोषजनकमन्नम्)